अध्यात्मरामायणम्

अनुक्रमणिका

| अध्यात्मरामायणमाहात्म्यम् | 1 |
|---------------------------|-----|
| बालकाण्डः | 9 |
| प्रथमः सर्गः | 9 |
| द्वितीयः सर्गः | 20 |
| तृतीयः सर्गः | 25 |
| चतुर्थः सर्गः | 34 |
| पञ्चमः सर्गः | 39 |
| षष्टः सर्गः | 49 |
| सप्तमः सर्गः | 60 |
| अयोध्याकाण्डः | 68 |
| प्रथमः सर्गः | 68 |
| द्वितीयः सर्गः | 74 |
| तृतीयः सर्गः | 85 |
| चतुर्थः सर्गः | 96 |
| पञ्चमः सर्गः | 107 |
| षष्ठः सर्गः | 117 |
| सप्तमः सर्गः | 129 |

ii

| | अष्टमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 145 |
|----|----------------|---------|----|----|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|-----|
| | नवमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 153 |
| अ | रण्यकाण्ड | ۲. • | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 166 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 166 |
| | द्वितीयः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 173 |
| | तृतीयः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 181 |
| | चतुर्थः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 187 |
| | पञ्चमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 195 |
| | षष्टः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 204 |
| | सप्तमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 211 |
| | अष्टमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 220 |
| | नवमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 229 |
| | दशमः सर्गः | | | | | • | • | | | | | | • | • | | | | | | | | | | | | | 236 |
| ਰਿ | , जिकन्धाक | TU | ۷5 | Γ• | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 243 |
| 17 | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| | प्रथमः सर्गः | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | 243 |
| | द्वितीयः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 256 |
| | तृतीयः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 265 |
| | चतुर्थः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 272 |
| | पञ्चमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 280 |

| | षष्ठः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | | | 288 |
|----|----------------|---|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|---|--|--|-----|
| | सप्तमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 299 |
| | अष्टमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 307 |
| | नवमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 314 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| सु | न्दरकाण्ड | : | | | | | | | | | | | | | | | 318 |
| | प्रथमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | • | | | 318 |
| | द्वितीयः सर्गः | | | | | | | | | | | | | • | | | 326 |
| | तृतीयः सर्गः | | | | | | | | | | | | | • | | | 334 |
| | चतुर्थः सर्गः | | | | | | | | | | | | | • | | | 347 |
| | पश्चमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 358 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| यु | द्रकाण्डः | | | | | | | | | | | | | | | | 367 |
| | प्रथमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 367 |
| | द्वितीयः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 374 |
| | तृतीयः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 381 |
| | चतुर्थः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 393 |
| | पश्चमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 401 |
| | षष्ठः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | | | 412 |
| | सप्तमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 420 |
| | अष्टमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | | | 430 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | |

| | नवमः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 439 |
|---|-----------------|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|-----|
| | दशमः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 448 |
| | एकादशः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | 456 |
| | द्वादशः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 467 |
| | त्रयोदशः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | 478 |
| | चतुर्दशः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | 490 |
| | पञ्चदशः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | 503 |
| | षोडशः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 516 |
| | | | | | | | | | | | | | | | |
| 3 | त्तरकाण्डः | | | | | | | | | | | | | | 524 |
| | प्रथमः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 524 |
| | द्वितीयः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | 533 |
| | तृतीयः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 543 |
| | चतुर्थः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 552 |
| | पञ्चमः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 560 |
| | षष्ठः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | 576 |
| | सप्तमः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 583 |
| | अष्टमः सर्गः . | | | | | | | | | | | | | | 594 |
| | नवमः सर्गः | | | | | | | | | | | | | | 604 |

॥ अध्यात्मरामायणमाहात्म्यम्॥

रामं विश्वमयं वन्दे रामं वन्दे रघृद्वहम्। रामं विप्रवरं वन्दे रामं इयामाग्रजं भजे॥ यस्य वागंशुतश्च्युतं रम्यं रामायणामृतम्। शैलजासेवितं वन्दे तं शिवं सोमरूपिणम्॥ सिचदानन्दसन्दोहं भक्तिभूतिविभूषणम्। पूर्णानन्दमहं वन्दे सद्गुरं शङ्करं स्वयम्॥ अज्ञानध्वान्तसंहर्त्रीं ज्ञानलोकविलासिनी। चन्द्रचूडवचश्चन्द्रचन्द्रिकेयं विराजते॥ अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तये नमः॥१॥

सूत उवाच

कदाचिन्नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया। पर्यटन् सकलान् लोकान् सत्यलोकमुपागमत्॥२॥ तत्र दृष्ट्वा मूर्तिमद्भिश्छन्दोभिः परिवेष्टितम्। बालार्कप्रभया सम्यग्भासयन्तं सभागृहम्॥३॥

मार्कण्डेयादिमुनिभिः स्तूयमानं मुहुर्मुहुः। सर्वार्थगोचरज्ञानं सरस्वत्या समन्वितम्॥४॥ चतुर्मुखं जगन्नाथं भक्ताभीष्टफलप्रदम्। प्रणम्य दण्डवद्भक्त्या तृष्टाव मुनिपुङ्गवः॥५॥ सन्तुष्टस्तं मुनिं प्राह स्वयम्भूवैष्णवोत्तमम्। किं प्रष्टुकामस्त्वमिस तद्वदिष्यामि ते मुने॥६॥ इत्याकण्यं वचस्तस्य मुनिर्ब्रह्माणमबवीत्। त्वत्तः श्रुतं मया सर्वं पूर्वमेव शुभाशुभम्॥७॥ इदानीमेकमेवास्ति श्रोतव्यं सुरसत्तम। तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रहो मयि॥८॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः। दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मखाः॥९॥ परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः। परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः॥१०॥ देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिका पशुबुद्धयः। मातापितुकृतद्वेषाः स्त्रीदेवाः कामकिङ्कराः॥११॥

विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविकयजीविनः। धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मद्विमोहिताः॥१२॥ त्यक्तस्वजातिकर्माणः प्रायशः परवश्रकाः। क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः स्वधर्मत्यागशीलिनः॥१३॥ तद्वच्छूदाश्च ये केचिद्वाह्मणाचारतत्पराः। स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञाननिर्भयाः॥१४॥ श्वशुरद्रोहकारिण्यो भविष्यन्ति न संशयः। एतेषां नष्टबुद्धीनां परलोकः कथं भवेत्॥१५॥ इति चिन्ताकुलं चित्तं जायते मम सन्ततम्। लघूपायेन येनैषां परलोकगतिर्भवेत्। तमुपायमुपाख्याहि सर्वं वेत्ति यतो भवान्॥१६॥ इत्यृषेर्वाक्यमाकण्यं प्रत्युवाचाम्बुजासनः। साधु पृष्टं त्वया साधो वक्ष्ये तच्छुणु साद्रम्॥ १७॥ पुरा त्रिपुरहन्तारं पार्वती भक्तवत्सला। श्रीरामतत्त्वं जिज्ञासुः पप्रच्छ विनयान्विता॥१८॥ प्रियायै गिरिशस्तस्यै गूढं व्याख्यातवान् स्वयम्। पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमिति स्मृतम्॥ १९॥ तत्पार्वती जगद्धात्री पूजियत्वा दिवानिशम्। आलोचयन्ती स्वानन्दमग्ना तिष्ठति साम्प्रतम्॥२०॥ प्रचरिष्यति तल्लोके प्राण्यदृष्टवशाद्यदा। तस्याध्ययनमात्रेण जना यास्यन्ति सद्गतिम्॥२१॥

तावद्विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुरःसरम्। यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति॥२२॥

तावत्कलिमहोत्साहो निःशङ्कं सम्प्रवर्तते। यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति॥२३॥

तावद्यमभटाः शूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः। यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति॥२४॥ तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम्॥२५॥

तावत्स्वरूपं रामस्य दुर्बोधं महतामपि। यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति॥२६॥

अध्यात्मरामायणसङ्कीर्तनश्रवणादिजम् । फलं वक्तुं न शकोमि कार्त्स्येन मुनिसत्तम॥२७॥

तथाऽपि तस्य माहात्म्यं वक्ष्ये किञ्चित्तवानघ। शृणु चित्तं समाधाय शिवेनोक्तं पुरा मम॥२८॥ अध्यात्मरामायणतः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा। यः पठेत् भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात्॥ २९॥ यस्त्र प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनन्यधीः। यथाशक्ति वदेद्भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते॥३०॥ यो भक्त्यार्चयतेऽध्यात्मरामायणमतन्द्रितः। दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलं तस्य भवेन्मुने॥३१॥ यदच्छयाऽपि योऽध्यात्मरामायणमनादरात्। अन्यतः शृणुयान्मर्त्यः सोऽपि मुच्येत पातकात्॥३२॥ नमस्करोति योऽध्यात्मरामायणमदूरतः। सर्वदेवार्चनफलं स प्राप्नोति न संशयः॥३३॥ लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः। यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु॥३४॥ अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च। यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य सम्भवेत्॥३५॥

एकादशीदिनेऽध्यात्मरामायणमुपोषितः । यो रामभक्तः सदिस व्याकरोति नरोत्तमः॥३६॥ तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणु वैष्णवसत्तम। प्रत्यक्षरं तु गायत्रीपुरश्चर्याफलं भवेत्॥३७॥ उपवासव्रतं कृत्वा श्रीरामनवमीदिने। रात्रौ जागरितोऽध्यात्मरामायणमनन्यधीः। यः पठेच्छुणुयाद्वाऽपि तस्य पुण्यं वदाम्यहम्॥३८॥ कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकदाः। आत्मतुल्यं धनं सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे॥३९॥ विप्रेभ्यो व्यासतुल्येभ्यो दत्वा यत्फलमश्रुते। तत्फलं सम्भवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः॥४०॥ यो गायते मुदाऽध्यात्मरामायणमहर्निशम्। आज्ञां तस्य प्रतीक्षन्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः॥४१॥ प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनुव्रतः। यद्यत्करोति तत्कर्म ततः कोटिगुणं भवेत्॥४२॥ तत्र श्रीरामहृदयं यः पठेत् सुसमाहितः। स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत्॥४३॥

श्रीरामहृद्यं यस्तु हृनूमत्प्रतिमान्तिके। त्रिः पठेत् प्रत्यहं मौनी स सर्वेप्सितभाग्भवेत्॥४४॥

पठन् श्रीरामहृद्यं तुलस्यश्वत्थयोर्यदि। प्रत्यक्षरं प्रकुर्वीत ब्रह्महृत्यानिवर्तनम्॥४५॥

श्रीरामगीतामाहात्म्यं कृत्स्नं जानाति शङ्करः। तद्र्धं गिरिजा वेत्ति तद्र्धं वेद्यहं मुने॥४६॥

तत्ते किञ्चित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते। यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात्॥४७॥

श्रीरामगीता यत्पापं न नाशयित नारद्। तन्न नश्यित तीर्थादौ लोके कापि कदाचन। तन्न पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोऽपि सर्वदा॥४८॥

रामेणोपनिषत्सिन्धुमुन्मत्थ्योत्पादितं मुदा। लक्ष्मणायार्पितां गीतासुधां पीत्वाऽमरो भवेत्॥४९॥

जमद्ग्निसुतः पुर्वं कार्तवीर्यवधेच्छया। धनुर्विद्यामभ्यसितुं महेशस्यान्तिके वसन्॥५०॥ अधीयमानां पार्वत्या रामगीतां प्रयत्नतः। श्रूत्वा गृहीत्वाऽऽशु पठन्नारायणकलामगात्॥५१॥

ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति। रामगीतां मासमात्रं पठित्वा मुच्यते नरः॥५२॥

दुष्पः,रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम्। पापं यत्तत्कीर्तनेन रामगीता विनाशयेत्॥५३॥

शालग्रामशिलाग्रे च तुलस्यश्वत्थसन्निधौ। यतीनां पुरतस्तद्वत् रामगीतां पठेत्तु यः॥५४॥ स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽपि न गोचरम॥५५॥

रामगीतां पठन् भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद्विजान्। तस्य ते पितरः सर्वे यान्ति विष्णोः परं पदम्॥५६॥

एकाद्श्यां निराहारो नियतो द्वाद्शीदिने। स्थित्वाऽगस्त्यतरोर्मूले रामगीतां पठेत्तु यः। स एव राघवः साक्षात् सर्वदेवैश्च पूज्यते॥५७॥ विना दानां विना ध्यानं विना तीर्थावगाहनम्। बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः। रामगीतां नरोऽधीत्य तदनन्तफलं लभेत्॥५८॥

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमश्चतानि च। अर्हन्ति नाल्पमध्यात्मरामायणकलामपि॥५९॥

अध्यात्मरामचरितस्य मुनीश्वराय माहात्म्यमेतदुदितं कमलासनेन। यः श्रद्धया पठित वा शृणुयात् स मर्त्यः प्राप्नोति विष्णुपदवीं सुरपूज्यमानः॥६०॥

॥ इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे अध्यात्मरामायणमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥

॥ बालकाण्डः॥

॥प्रथमः सर्गः॥

॥राम हृदयम्॥

यः पृथिवीभरवारणाय दिविजैः सम्प्रार्थितश्चिन्मयः सञ्जातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः। निश्चकं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिराम् कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे॥१॥

> विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकम् मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम्। आनन्दसान्द्रममलं निजबोधरूपम् सीतापतिं विदिततत्त्वमहं नमामि॥२॥

> पठन्ति ये नित्यमनन्यचेतसः शृण्वन्ति चाध्यात्मिकसंज्ञितं शुभम्। रामायणं सर्वपुराणसम्मतम् निर्धृतपापा हरिमेव यान्ति ते॥३॥

अध्यात्मरामायणमेव नित्यम् पठेद्यदीच्छेद्भवबन्धमुक्तिम् । गवां सहस्रायुतकोटिदानात् फलं लभेद्यः शृणुयात्स नित्यम्॥४॥ प्रथमः सर्गः

पुरारिगिरिसम्भूता श्रीरामार्णवसङ्गता। अध्यात्मरामगङ्गेयं पुनाति भुवनत्रयम्॥५॥

कैलासाग्रे कदाचिद्रविशतविमले मन्दिरे रत्नपीठे संविष्टं ध्याननिष्ठं त्रिनयनमभयं सेवितं सिद्धसन्धेः। देवी वामाङ्कसंस्था गिरिवरतनया पार्वती भक्तिनम्रा प्राहेदं देवमीशं सकलमलहरं वाक्यमानन्दकन्दम्॥६॥

पार्वत्युवाच

नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्मदृक् त्वं परमेश्वरोऽसि। पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वं च सनातनोऽसि॥७॥

गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यम् वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः। तद्प्यहोऽहं तव देव भक्ता प्रियोऽसि मे त्वं वद् यत्तु पृष्टम्॥८॥ ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्तिवैराग्ययुक्तम् च मितं विभास्वत्। जानाम्यहं योषिद्पि त्वदुक्तम् यथा तथा ब्रूहि तरन्ति येन॥९॥

पृच्छामि चान्यच परं रहस्यम् तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष। श्रीरामचन्द्रेऽखिललोकसारे भक्तिर्दढा नौर्भवति प्रसिद्धा॥ १०॥

भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय नान्यत्ततः साधनमस्ति किञ्चित्। तथाऽपि हृत्संशयबन्धनं मे विभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ॥११॥

वदन्ति रामं परमेकमाद्यम् निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम्। भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः॥१२॥ वदन्ति केचित्परमोऽपि रामः स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम्। जानाति नात्मानमतः परेण सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम्॥१३॥

यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतः परेण। जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरिप जीवजातैः॥१४॥

अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भिः। तद्भृत मे संशयभेदि वाक्यम्॥१५॥

श्रीमहादेव उवाच

धन्यासि भक्तासि परात्मनस्त्वम् यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम्। पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहम् वक्तुं रहस्यं परमं निगृढम्॥१६॥ त्वयाऽद्य भक्त्या परिनोदितोऽहम् वक्ष्ये नमस्कृत्य रघूत्तमं ते। रामः परात्मा प्रकृतेरनादि-रानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि॥१७॥

स्वमायया कृत्स्निमदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः। सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे॥१८॥

जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि। एतन्न जानन्ति विमूढचित्ताः स्वाविद्यया संवृतमानसा ये॥१९॥

स्वाज्ञानमप्यात्मिन शुद्धबुद्धे
स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये।
संसारमेवानुसरन्ति ते वै
पुत्रादिसक्ताः पुरुकर्मयुक्ताः॥२०॥

यथाऽप्रकाशो न तु विद्यते रवौ
ज्योतिःस्वभावे परमेश्वरे तथा।
विशुद्धविज्ञानघने रघूत्तमेऽविद्या
कथं स्यात्परतः परात्मनि॥२१॥

यथा हि चाक्ष्णा भ्रमता गृहादिकम् विनष्टदृष्टेर्भ्रमतीव दृश्यते। तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मनः कृते परेऽध्यस्य जनो विमुह्यति॥२२॥

नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत् प्रकाशरूपाव्यभिचारतः क्वित्। ज्ञानं तथाऽज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्धने॥२३॥

तस्मात्परानन्दमये रघूत्तमे विज्ञानरूपे हि न विद्यते तमः। अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम्॥२४॥ अत्र ते कथिष्यामि रहस्यमि दुर्लभम्। सीताराममरुत्सृनुसंवादं मोक्षसाधनम्॥२५॥

पुरा रामायणे रामे रावणं देवकण्टकम्। हत्वा रणे रणश्लाघी सपुत्रबलवाहनम्॥२६॥

सीतया सह सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः। अयोध्यामगमद्रामो हनूमत्प्रमुखैर्वृतः॥२७॥

अभिषिक्तः परिवृतो वसिष्ठाद्यैर्महात्मभिः। सिंहासने समासीनः कोटिसूर्यसमप्रभः॥२८॥

दृष्ट्वा तदा हनूमन्तं प्राञ्जिलं पुरतः स्थितम्। कृतकार्यं निराकाङ्कं ज्ञानापेक्षं महामतिम्॥२९॥

रामः सीतामुवाचेदं ब्रूहि तत्त्वं हनूमते। निष्कल्मषोऽयं ज्ञानस्य पात्रं नो नित्यभक्तिमान्॥३०॥

तथेति जानकी प्राह तत्त्वं रामस्य निश्चितम्। हनूमते प्रपन्नाय सीता लोकविमोहिनी॥३१॥

सीतोवाच

रामं विद्धि परं ब्रह्म सिचदानन्दमद्वयम्। सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥३२॥ आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्। सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥३३॥ मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्। तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥३४॥ तत्सान्निध्यान्मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः। अयोध्यानगरे जन्म रघुवंशेऽतिनिर्मले॥३५॥ विश्वामित्रसहायत्वं मखसंरक्षणं ततः। अहल्याशापशमनं चापभङ्गो महेशितुः॥३६॥ मत्पाणिग्रहणं पश्चाद्भार्गवस्य मदक्षयः। अयोध्यानगरे वासो मया द्वादशवार्षिकः॥३७॥ दण्डकारण्यगमनं विराधवध एव च। मायामारीचमरणं मायासीताहृतिस्तथा॥३८॥ जटायुषो मोक्षलाभः कबन्धस्य तथैव च। शबर्याः पूजनं पश्चात्सुग्रीवेण समागमः॥३९॥

वालिनश्च वधः पश्चात्सीतान्वेषणमेव च। सेतुबन्धश्च जलधौ लङ्कायाश्च निरोधनम्॥४०॥

रावणस्य वधो युद्धे सपुत्रस्य दुरात्मनः। विभीषणे राज्यदानं पुष्पकेण मया सह॥४१॥

अयोध्यागमनं पश्चाद्राज्ये रामाभिषेचनम्। एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि। आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मिन॥४२॥

रामो न गच्छित न तिष्ठित नानुशोचत्याकाङ्क्षते त्यजित नो न करोति किञ्चित्। आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति॥४३॥

ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम्। शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम्॥४४॥

आकाशस्य यथा भेदिस्त्रिविधो दृश्यते महान्। जलाशये महाकाशस्तद्विच्छन्न एव हि। प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः॥४५॥

बुद्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम्। आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः॥४६॥ साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि। साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथा बुधैः॥४७॥ आभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते। अविच्छिन्नं तु तद्बह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः॥४८॥ अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते। तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा॥४९॥ ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः। तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः॥५०॥ एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते। मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम्। न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि॥५१॥ इदं रहस्यं हृद्यं ममात्मनो मयैव साक्षात्कथितं तवानघ। मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया दातव्यमैन्द्रादिप राज्यतोऽधिकम्॥५२॥

श्रीमहादेव उवाच

एतत्तेऽभिहितं देवि श्रीरामहृदयं मया। अतिगुह्यतमं हृद्यं पवित्रं पापशोधनम्॥५३॥

साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसङ्ग्रहम्। यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तो नात्र संशयः॥५४॥

ब्रह्महत्यादि पापानि बहुजन्मार्जितान्यपि। नश्यन्त्येव न सन्देहो रामस्य वचनं यथा॥५५॥

योऽतिभ्रष्टोऽतिपापी परधनपरदारेषु नित्योद्यतो वा स्तेयी ब्रह्मघ्नमातापितृवधनिरतो योगिवृन्दापकारी। यः सम्पूज्याभिरामं पठति च हृद्यं रामचन्द्रस्य भक्त्या

योगीन्द्रैरप्यलभ्यं पदमिह लभते सर्वदेवैः स पूज्यम्॥५६॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे श्रीरामहृदयं नाम प्रथमः सर्गः॥ १॥

॥ द्वितीयः सर्गः॥

पार्वत्युवाच

धन्यासम्यनुगृहीतास्मि कृतार्थास्मि जगत्प्रभो। विच्छिन्नो मेऽतिसन्देहग्रन्थिर्भवदनुग्रहात्॥१॥ त्वन्मुखाद्गिलतं रामतत्त्वामृतरसायनम्। पिबन्त्या मे मनो देव न तृप्यति भवापहम्॥२॥ श्रीरामस्य कथा त्वत्तः श्रुता सङ्क्षेपतो मया। इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण स्फुटाक्षरम्॥३॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यादुह्यतरं महत्। अध्यात्मरामचरितं रामेणोक्तं पुरा मम॥४॥

तद्य कथिष्यामि शृणु तापत्रयापहम्। यच्छुत्वा मुच्यते जन्तुरज्ञानोत्थमहाभयात्। प्राप्नोति परमामृद्धिम् दीर्घायुः पुत्रसन्ततिम्॥५॥

भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखाशेषरक्षोगणानाम् धृत्वा गोरूपमादौ दिविजमुनिजनैः साकमङ्गासनस्य। गत्वा लोकं रुदन्ती व्यसनमुपगतं ब्रह्मणे प्राह सर्वम् ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकलमपि हृदावेदशेषात्मकत्वात्॥६॥ तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद् ब्रह्माथ देवैर्वृतो देव्या चाखिललोकहृतस्थमजरं सर्वज्ञमीशं हरिम्। अस्तौषीच्छ्रतिसिद्धनिर्मलपदैः स्तोत्रैः पुराणोद्भवैः भक्त्या गद्गदया गिरातिविमलैरानन्दबाष्पैर्वृतः॥७॥ स्फ्ररत्सहस्रांशुसहस्रसदृशप्रभः। ततः आविरासीद्धरिः प्राच्यां दिशां व्यपनयन्स्तमः॥८॥ कथिश्रदृष्टवान् ब्रह्मा दुर्दर्शमकृतात्मनाम्। इन्द्रनीलप्रतीकाशं स्मितास्यं पद्मलोचनम्॥९॥ किरीटहारकेयूरकुण्डलैः कटकादिभिः। विभ्राजमानं श्रीवत्सकौस्तुभप्रभयान्वितम्॥१०॥ स्तुवद्भिः सनकाद्यैश्च पार्षदैः परिवेष्टितम्। शङ्खचकगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥११॥ स्वर्णयज्ञोपवीतेन स्वर्णवर्णाम्बरेण च। श्रिया भूम्या च सहितं गरुडोपरि संस्थितम्॥१२॥ हर्षगद्भदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रमे॥ १३॥ ब्रह्मोवाच

नतोऽस्मि ते पदं देव प्राणबुद्धीन्द्रियात्मभिः। यचिन्त्यते कर्मपाशाद्भृदि नित्यं मुमुक्षुभिः॥१४॥ मायया गुणमय्या त्वं सृजस्यविस लुम्पिस। जगत्तेन न ते लेप आनन्दानुभवात्मनः॥१५॥ तथा शुद्धिनं दुष्टानां दानाध्ययनकर्मभिः। शुद्धात्मता ते यशसि सदा भक्तिमतां यथा॥१६॥ अतस्तवाङ्गिर्मे दृष्टश्चित्तदोषापनुत्तये। सद्योऽन्तर्हृद्ये नित्यं मुनिभिः सात्वतैर्वृतः॥१७॥ ब्रह्माद्यैः स्वार्थिसिष्धर्थमस्माभिः पूर्वसेवितः। अपरोक्षानुभूत्यर्थं ज्ञानिभिर्हृदि भावितः॥१८॥ तवाङ्घिपूजानिर्माल्यतुलसीमालया विभो। स्पर्धते वक्षसि पदं लब्ध्वाऽपि श्रीः सपितवत्॥ १९॥ अतस्त्वत्पादभक्तेषु तव भक्तिः श्रियोऽधिका। भक्तिमेवाभिवाञ्छन्ति त्वद्भक्ताः सारवेदिनः॥२०॥ अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदास्तु मे। संसाराऽऽमयतप्तानां भेषजं भक्तिरेव ते॥२१॥

इति ब्रुवन्तं ब्रह्माणं बभाषे भगवान् हरिः।
किं करोमीति तं वेधाः प्रत्युवाचातिहर्षितः॥२२॥
भगवन् रावणो नाम पौलस्त्यतनयो महान्।
राक्षसानामधिपतिर्मदत्त्तवरदर्पितः॥२३॥
त्रिलोकीं लोकपालान्श्च बाधते विश्वबाधकः।
मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याण कल्पिता॥२४॥
अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जिं देवरिपुं प्रभो॥२५॥
श्रीभगवानुवाच
कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे।

कश्यपस्य वरा दत्तस्तपसा ताषितन म।
याचितः पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृतं मया।
स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले॥२६॥
तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने।
चतुर्घाऽऽत्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक्॥२७॥
योगमायाऽपि सीतेति जनकस्य गृहे तदा।
उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम्।
इत्युक्तवाऽन्तर्द्धे विष्णुर्ब्रह्मा देवानथाब्रवीत्॥२८॥

ब्रह्मोवाच

विष्णुर्मानुषरूपेण भविष्यति रघोः कुले॥२९॥

यूयं सृजध्वं सर्वेऽपि वानरेष्वंशसम्भवान्। विष्णोः सहायं कुरुत यावत्स्थास्यति भूतले॥३०॥

इति देवान् समादिश्य समाश्वास्य च मेदिनीम्। ययौ ब्रह्मा स्वभवनं विज्वरः सुखमास्थितः॥३१॥

देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः

स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः।

महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः

प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम्॥ ३२॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥ २॥

॥ तृतीयः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा दशरथः श्रीमान् सत्यपरायणः। अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्वलोकेषु विश्रुतः॥१॥ सोऽनपत्यत्वदुःखेन पीडितो गुरुमेकदा। वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमभिवाद्येद्मब्रवीत्॥२॥ स्वामिन् पुत्राः कथं मे स्युः सर्वलक्षणलक्षिताः। पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते॥३॥ ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तं भविष्यन्ति सुतास्तव। चत्वारः सत्त्वसम्पन्ना लोकपाला इवापराः॥४॥ शान्ताभर्तारमानीय ऋष्यशृङ्गं तपोधनम्। अस्माभिः सहितः पुत्रकामेष्टिं शीघ्रमाचर॥५॥ तथेति मुनिमानीय मन्त्रिभिः सहितः शुचिः। यज्ञकर्म समारेभे मुनिभिर्वीतकल्मषैः॥६॥ श्रद्धया ह्रयमानेऽग्नौ तप्तजाम्बूनदप्रभः। पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हव्यवाट्॥७॥ गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम्। लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः॥८॥

इत्युक्तवा पायसं दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दघेऽनलः। ववन्दे मुनिशार्दूलौ राजा लब्धमनोरथः॥९॥ वसिष्ठऋष्यशृङ्गाभ्यामनुज्ञातो ददौ हविः। कौसल्यायै सकैकेय्यै अर्घमर्धं प्रयत्नतः॥१०॥ ततः सुमित्रा सम्प्राप्ता जगृध्यः पौत्रिकं चरुम्। कौसल्या तु स्वभागार्धं ददौ तस्यै मुदान्विता॥११॥ कैकेयी च स्वभागार्धं ददौ प्रीतिसमन्विता। उपभुज्य चरं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः॥ १२॥ देवता इव रेजुस्ताः स्वभासा राजमन्दिरे। दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम्॥१३॥ मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे। पुनर्वस्वृक्षसिहते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके॥१४॥ मेषं पूषणि सम्प्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले। आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः॥१५॥ नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः। जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः॥१६॥

सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः।

शङ्खचकगदापद्मवनमालाविराजितः॥१७॥

अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिकः।

करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः ।

श्रीवत्सहारकेयूरनृपुरादिविभूषणः ॥ १८॥

दृष्ट्वा तं परमात्मानं कौसल्या विस्मयाकुला। हर्षाश्रुपूर्णनयना नत्वा प्राञ्जलिरब्रवीत्॥१९॥ कौसल्योवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु शङ्खचकगदाधर। परमात्माच्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः॥२०॥ वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्धादीनामतीन्द्रियम्। त्वां वेदवादिनः सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम्॥२१॥ त्वमेव मायया विश्वं सृजस्यविस हन्सि च। सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्य एवामलः सदा॥२२॥ करोषीव न कर्ता त्वं गच्छसीव न गच्छसि। शृणोषि न शृणोषीव पश्यसीव न पश्यसि॥२३॥ अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध इत्यादि श्रुतिरब्रवीत्। समः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नपि न लक्ष्यसे॥२४॥ अज्ञानध्वान्तचित्तानां व्यक्त एव सुमेधसाम्। जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः॥२५॥

त्वं ममोद्रसम्भूत इति लोकान् विडम्बसे। भक्तेषु पारवश्यं ते दृष्टं मेऽद्य रघूत्तम॥२६॥

संसारसागरे मग्ना पतिपुत्रधनादिषु। भ्रमामि मायया तेऽद्य पादमूलमुपागता॥२७॥

देव त्वद्रूपमेतन्मे सदा तिष्ठतु मानसे। आवृणोतु न मां माया तव विश्वविमोहिनी॥२८॥

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्। दर्शयस्व महानन्दबालभावं सुकोमलम्। ललितालिङ्गनालापैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

यद्यदिष्टं तवास्त्यम्ब तत्तद्भवतु नान्यथा॥३०॥

अहं तु ब्रह्मणा पूर्वं भूमेर्भारापनुत्तये। प्रार्थितो रावणं हन्तुं मानुषत्वमुपागतः॥३१॥

त्वया दशरथेनाहं तपसाराधितः पुरा। मत्पुत्रत्वाभिकाङ्क्षिण्या तथा कृतमनिन्दिते॥३२॥

रूपमेतत्त्वया दृष्टं प्राक्तनं तपसः फलम्। मद्दर्शनं विमोक्षाय कल्पते ह्यन्यदुर्लभम्॥ ३३॥

संवादमावयोर्यस्तु पठेद्वा शृणुयादिप। स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत्॥ ३४॥

इत्युक्तवा मातरं रामो बालो भूत्वा रुरोद ह। बालत्वेऽपीन्द्रनीलाभो विशालाक्षोऽतिसुन्दरः॥३५॥

बालारुणप्रतीकाशो लालिताखिललोकपः। अथ राजा दशरथः श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम्। आनन्दार्णवमग्नोऽसावाययौ गुरुणा सह॥३६॥

रामं राजीवपत्राक्षं दृष्ट्वा हर्षाश्रुसम्स्रुतः। गुरुणा जातकर्माणि कर्तव्यानि चकार सः॥३७॥

केंकेयी चाथ भरतमसूत कमलेक्षणा। सुमित्रायां यमो जातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ॥३८॥ तदा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो मुदा ददौ। सुवर्णानि च रत्नानि वासांसि सुरभीः शुभाः॥३९॥ यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्यया ज्ञानविप्लवे। तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि॥४०॥ भरणाद्भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्। शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत॥४१॥ लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च। द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः॥४२॥ रामस्तु लक्ष्मणेनाथ विचरन् बाललीलया। रमयामास पितरौ चेष्टितैर्मुग्धभाषितैः॥४३॥ भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णमुक्ताफलप्रभम्। कण्ठे रत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखाञ्चितम्॥४४॥ कर्णयोः स्वर्णसम्पन्नरत्नार्जुनसटालुकम्। शिञ्जानमणिमञ्जीरकटिसूत्राङ्गदैर्वृतम् ॥४५॥

स्मितवक्राल्पद्शनमिन्द्रनीलमणिप्रभम्। अङ्गणे रिङ्गमाणं तं तर्णकाननु सर्वतः। दृष्ट्वा दशरथो राजा कौसल्या मुमुद्दे तदा॥४६॥

भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीति चासकृत्। आह्वयत्यतिहर्षेण प्रेम्णा नायाति लीलया॥४७॥

आनयेति च कौसल्यामाह सा सस्मिता सुतम्। धावत्यपि न शक्रोति स्प्रष्टुं योगिमनोगतिम्॥४८॥

प्रहसन् स्वयमायाति कर्दमाङ्कितपाणिना। किञ्चिद्गहीत्वा कवलं पुनरेव पलायते॥४९॥

कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती। वायनानि विचित्राणि समलङ्कत्य राघवम्॥५०॥

अपूपान् मोद्कान् कृत्वा कर्णशष्कुितकास्तथा। कर्णपूरान्श्च विविधान् वर्षवृद्धौ च वायनम्॥५१॥

गृहकृत्यं तया त्यक्तं तस्य चापल्यकारणात्। एकदा रघुनाथोऽसौ गतो मातरमन्तिके॥५२॥

भोजनं देहि मे मातर्न श्रुतं कार्यसक्तया। ततः क्रोधेन भाण्डानि लगुडेनाहनत्तदा॥५३॥ शिक्यस्थं पातयामास गव्यं च नवनीतकम्। लक्ष्मणाय दुदौ रामो भरताय यथाक्रमम्॥५४॥ रात्रुघ्नाय ददौ पश्चाद्दधि दुग्धं तथैव च। सूदेन कथिते मात्रे हास्यं कृत्वा प्रधावति॥५५॥ आगतां तां विलोक्याथ ततः सर्वैः पलायितम्। कौसल्या धावमानाऽपि प्रस्खलन्ती पदे पदे॥५६॥ रघुनाधं करे धृत्वा किञ्चिन्नोवाच भामिनी। बालभावं समाश्रित्य मन्दं मन्दं रुरोद् ह॥५७॥ ते सर्वे लालिता मात्रा गाढमालिङ्ग यत्नतः। एवमानन्दसन्दोहजगदानन्दकारकः 114611

मायाबालवपुर्धृत्वा रमयामास दम्पती। अथ कालेन ते सर्वे कौमारं प्रतिपेदिरे॥५९॥ उपनीता वसिष्ठेन सर्वविद्याविशारदाः। धनुर्वेदे च निरताः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः॥६०॥

बभूवुर्जगतां नाथा लीलया नररूपिणः। लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम्॥६१॥ सेव्यसेवकभावेन शत्रुघ्नो भरतं तथा। रामश्चापधरो नित्यं तूणीबाणान्वितः प्रभुः॥६२॥ अश्वारूढो वनं याति मृगयायै सलक्ष्मणः। हत्वा दृष्टमृगान् सर्वान् पित्रे सर्वं न्यवेद्यत्॥६३॥ प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च। पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः॥ ६४॥ बन्धुभिः सहितो नित्यं भुक्तवा मुनिभिरन्वहम्। धर्मशास्त्ररहस्यानि शृणोति व्याकरोति च॥६५॥ एवं परात्मा मनुजावतारो मनुष्यलोकाननुसृत्य सर्वम्। चक्रेऽविकारी परिणामहीनो विचार्यमाणे न करोति किञ्चित्॥६६॥ ॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे तृतीयः सर्गः॥३॥

> ॥ चतुर्थः सर्गः॥ श्रीमहादेव उवाच

कदाचित्कौशिकोऽभ्यागादयोध्यां ज्वलनप्रभः। द्रष्टुं रामं परात्मानं जातं ज्ञात्वा स्वमायया॥१॥ दृष्ट्रा दशरथो राजा प्रत्युत्थायाचिरेण तु। वसिष्ठेन समागम्य पूजयित्वा यथाविधि॥२॥ अभिवाद्य मुनिं राजा प्राञ्जलिर्भक्तिनम्रधीः। कृतार्थोऽस्मि मुनीन्द्राहं त्वदागमनकारणात्॥३॥ त्वद्विधा यद्गृहम् यान्ति तत्रैवायान्ति सम्पदः। यद्र्थमागतोऽसि त्वं ब्रूहि सत्यं करोमि तत्॥४॥ विश्वामित्रोऽपि तं प्रीतः प्रत्युवाच महीपतिम्। अहं पर्वणि सम्प्राप्ते दृष्ट्वा यष्टुं सुरान् पितृन्॥५॥ यदारभे तदा दैत्या विघ्नं कुर्वन्ति नित्यशः। मारीचश्च सुबाहुश्चापरे चानुचरास्तयोः॥६॥ अतस्तयोर्वधार्थाय ज्येष्ठं रामं प्रयच्छ मे। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा तव श्रेयो भविष्यति॥७॥

वसिष्ठेन सहामन्त्र्य दीयतां यदि रोचते।

पप्रच्छ गुरुमेकान्ते राजा चिन्तापरायणः॥८॥

किं करोमि गुरो रामं त्यक्तुं नोत्सहते मनः। बहुवर्षसहस्रान्ते कप्टेनोत्पादिताः सुताः॥९॥

चत्वारोऽमरतुल्यास्ते तेषां रामोऽतिवल्लभः। रामस्त्वितो गच्छिति चेन्न जीवामि कथञ्चन॥१०॥ प्रत्याख्यातो यदि मुनिः शापं दास्यत्यसंशयः। कथं श्रेयो भवेन्मह्यमसत्यं चापि न स्पृशेत्॥११॥

वसिष्ठ उवाच

शृणु राजन् देवगुद्धं गोपनीयं प्रयत्नतः। रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः॥१२॥

भूमेर्भारावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा। स एव जातो भवने कौसल्यायां तवानघ॥१३॥ त्वं तु प्रजापतिः पूर्वं कश्यपो ब्रह्मणः सुतः।

कौसल्या चादितिर्देवमाता पूर्वं यशस्विनी॥१४॥

भवन्तौ तप उग्रं वै तेपाथे बहुवत्सरम्। अग्राम्यविषयौ विष्णुपूजाध्यानैकतत्परौ। तदा प्रसन्नो भगवान् वरदो भक्तवत्सलः॥१५॥ वृणीष्व वरमित्युक्ते त्वं मे पुत्रो भवामल। इति त्वया याचितोऽसौ भगवान् भूतभावनः॥१६॥

तथेत्युक्तवाऽद्य पुत्रस्ते जातो रामः स एव हि। शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वपद्यत॥१७॥

जातौ भरतशत्रुघ्नौ शङ्खचके गदाभृतः। योगमायाऽपि सीतेति जाता जनकनन्दिनी॥१८॥

विश्वामित्रोऽपि रामाय तां योजयितुमागतः। एतद्गुद्यतमं राजन्न वक्तव्यं कदाचन॥१९॥

अतः प्रीतेन मनसा पूजियत्वाऽथ कौशिकम्। प्रेषयस्व रमानाथं राघवं सहलक्ष्मणम्॥२०॥

विसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा दशरथस्तदा। कृतकृत्यमिवात्मानं मेने प्रमुदितान्तरः॥२१॥

आहूय रामरामेति लक्ष्मणेति च सादरम्। आलिङ्म मूर्घ्यवघ्राय कौशिकाय समर्पयत्॥ २२॥ ततोऽतिहृष्टो भगवान् विश्वामित्रः प्रतापवान्। आशीर्भिरभिनन्द्याथ आगतौ रामलक्ष्मणौ। गृहीत्वा चापतूणीरबाणखङ्गधरौ ययौ॥२३॥ किञ्चिद्देशमतिकम्य राममाह्य भक्तितः। ददौ बलां चातिबलां विद्ये ह्रे देवनिर्मिते॥ २४॥ ययोर्ग्रहणमात्रेण क्षुत्क्षामादि न जायते॥ २५॥ तत उत्तीर्य गङ्गां ते ताटकावनमागमन्। विश्वामित्रस्तदा प्राह रामं सत्यपराक्रमम्॥२६॥ अत्रास्ति ताटका नाम राक्षसी कामरूपिणी। बाधते लोकमखिलं जिह तामविचारयन्॥२७॥ तथेति धनुरादाय सगुणं रघुनन्दनः। टङ्कारमकरोत्तेन शब्देनापूरयद्वनम्॥२८॥ तच्छुत्वाऽसहमाना सा ताटका घोररूपिणी। कोधसम्मूर्च्छिता राममभिदुद्राव मेघवत्॥२९॥ तामेकेन रारेणाशु ताख्यामास वक्षसि। पपात विपिने घोरा वमन्ती रुधिरं बहु॥३०॥

ततोऽतिसुन्दरी यक्षी सर्वाभरणभूषिता। शापात्पिशाचतां प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादतः॥३१॥ नत्वा रामं परिक्रम्य गता रामाज्ञया दिवम्॥३२॥ ततोऽतिहृष्टः परिरभ्य रामम् मूर्धन्यवघ्राय विचिन्त्य किञ्चित्। सर्वास्त्रजालं सरहस्यमन्त्रम् प्रीत्याभिरामाय ददौ मुनीन्द्रः॥३३॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

तत्र कामाश्रमे रम्ये कानने मुनिसङ्कले। उषित्वा रजनीमेकां प्रभाते प्रस्थिताः शनैः॥१॥ सिद्धाश्रमं गताः सर्वे सिद्धचारणसेवितम्। विश्वामित्रेण सन्दिष्टा मुनयस्तन्निवासिनः॥२॥

पूजां च महतीं चक्रू रामलक्ष्मणयोर्द्रतम्। श्रीरामः कौशिकं प्राह मुने दीक्षां प्रविश्यताम्॥३॥ द्र्शयस्व महाभाग कुतस्तौ राक्षसाधमौ। तथेत्युक्तवा मुनिर्यष्ट्रमारेभे मुनिभिः सह॥४॥ मध्याह्ने दृहशाते तौ राक्षसौ कामरूपिणौ। मारीचश्च सुबाहुश्च वर्षन्तौ रुधिरास्थिनी॥५॥ रामोऽपि धनुरादाय द्वौ बाणौ सन्द्धे सुधीः। आकर्णान्तं समाकृष्य विससर्ज तयोः पृथक्॥६॥ तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयञ्छतयोजनम्। पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवत्॥७॥ द्वितीयोऽग्निमयो बाणः सुबाहुमजयत्क्षणात्। अपरे लक्षमणेनाशु हतास्तदनुयायिनः॥८॥ पुष्पौघैराकिरन् देवा राघवं सहलक्ष्मणम्। देवदुन्दुभयो नेदुस्तुष्ट्रवुः सिद्धचारणाः॥९॥ विश्वामित्रस्तु सम्पूज्य पूजाईं रघुनन्दनम्। अङ्के निवेश्य चालिङ्य भक्त्या बाष्पाकुलेक्षणः॥१०॥

भोजयित्वा सह भ्रात्रा रामं पक्वफलादिभिः। पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनाय दिवसत्रयम्॥११॥ चतुर्थेऽहिन सम्प्राप्ते कौशिको राममबवीत्। राम राम महायज्ञं द्रष्टुं गच्छामहे वयम्॥१२॥ विदेहराजनगरे जनकस्य महात्मनः। तत्र माहेश्वरं चापमस्ति न्यस्तं पिनाकिना॥१३॥ द्रक्ष्यिस त्वं महासत्त्वं पूज्यसे जनकेन च। इत्युत्तवा मुनिभिस्ताभ्यां ययौ गङ्गासमीपगम्॥१४॥ गौतमस्याश्रमं पुण्यं यत्राहल्याऽऽस्थिता तपः। दिव्यपुष्पफलोपेतपादपैः परिवेष्टितम्॥१५॥ मृगपक्षिगणैहींनं नानाजन्तुविवर्जितम्। दृष्ट्वोवाच मुनिं श्रीमान् रामो राजीवलोचनः॥१६॥ कस्यैतदाश्रमपदं भाति भास्वच्छुभं महत्। पत्रपुष्पफलैर्युक्तं जन्तुभिः परिवर्जितम्॥१७॥ आह्रादयति मे चेतो भगवन् ब्रूहि तत्त्वतः॥१८॥ विश्वामित्र उवाच

शृणु राम पुरा वृत्तं गौतमो लोकविश्रुतः। सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठस्तपसाराधयन् हरिम्॥१९॥ तस्मै ब्रह्मा ददौ कन्यामहल्यां लोकसुन्दरीम्। ब्रह्मचर्येण सन्तुष्टः शुश्रूषणपरायणाम्॥२०॥ तया सार्धमिहावात्सीद्गौतमस्तपतां वरः। शकस्तु तां धर्षयितुमन्तरं प्रेप्सुरन्वहम्॥२१॥ कदाचिन्मुनिवेषेण गौतमे निर्गते गृहात्। धर्षयित्वाऽथ निरगात्त्वरितं मुनिरप्यगात्॥ २२॥ दृष्ट्वा यान्तं स्वरूपेण मुनिः परमकोपनः। पप्रच्छ कस्त्वं दुष्टात्मन् मम रूपधरोऽधमः॥२३॥ सत्यं बूहि न चेद्भस्म करिष्यामि न संशयः। सोऽब्रवीदेवराजोऽहं पाहि मां कामिकङ्करम्॥२४॥ कृतं जुगुप्सितं कर्म मया कुत्सितचेतसा। गौतमः क्रोधताम्राक्षः शशाप दिविजाधिपम्॥२५॥ योनिलम्पट दुष्टात्मन् सहस्रभगवान् भव। शक्वा तं देवराजानं प्रविश्य स्वाश्रमं द्भुतम्॥ २६॥

दृष्ट्वाऽहल्यां वेपमानां प्राञ्जिलं गौतमोऽब्रवीत्। दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम॥२७॥ निराहारा दिवारात्रं तपः परममास्थिता। आतपानिलवर्षादिसहिष्णुः परमेश्वरम्॥२८॥ ध्यायन्ती राममेकाग्रमनसा हृदि संस्थितम्। नानाजन्तुविहीनोऽयमाश्रमो मे भविष्यति॥२९॥ एवं वर्षसहस्रेषु ह्यनेकेषु गतेषु च। रामो दाशरथिः श्रीमानागमिष्यति सानुजः॥३०॥ यदा त्वदाश्रयशिलां पादाभ्यामाक्रमिष्यति। तदैव धूतपापा त्वं रामं सम्पूज्य भक्तितः॥३१॥ परिक्रम्य नमस्कृत्य स्तुत्वा शापाद्विमोक्ष्यसे। पूर्ववन्मम शुश्रूषां करिष्यसि यथासुखम्॥३२॥ इत्युक्तवा गौतमः प्रागाद्धिमवन्तं नगोत्तमम्। तदाद्यहल्या भूतानामदृश्या स्वाश्रमे शुभे॥३३॥ तव पादरजःस्पर्शं काङ्कते पवनाशना। आस्तेऽद्यापि रघुश्रेष्ठ तपो दुष्करमास्थिता॥३४॥

पावयस्व मुनेर्भार्यामहल्यां ब्रह्मणः सुताम्। इत्युत्तवा राघवं हस्ते गृहीत्वा मुनिपुङ्गवः॥३५॥ द्र्शयामास चाह्त्यामुग्रेण तपसा स्थिताम्। रामः शिलां पदा स्पृष्ट्वा तां चापश्यत्तपोधनाम्॥३६॥ ननाम राघवोऽहल्यां रामोऽहमिति चाब्रवीत। ततो दृष्ट्वा रघुश्रेष्ठं पीतकौशेयवाससम्॥३७॥ चतुर्भुजं राङ्खचकगदापङ्कजधारिणम्। धनुर्बाणधरं रामं लक्ष्मणेन समन्वितम्॥३८॥ स्मितवऋं पद्मनेत्रं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्। नीलमाणिक्यसङ्काशं द्योतयन्तं दिशो दश॥३९॥ दृष्ट्वा रामं रमानाथं हर्षविस्फारितेक्षणा। गौतमस्य वचः स्मृत्वा ज्ञात्वा नारायणं वरम्॥४०॥ सम्पूज्य विधिवद्राममर्घ्यादिभिरनिन्दिता। हर्षाश्रुजलनेत्रान्ता दण्डवत्प्रणिपत्य सा॥४१॥ उत्थाय च पुनर्दष्ट्वा रामं राजीवलोचनम्। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गा गिरा गद्भदयैडत॥४२॥

अहल्योवाच अहो कृतार्थास्मि जगन्निवास ते पादाङ्मसंलग्नरजःकणादहम् । स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभिर् विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा॥४३॥ अहो विचित्रं तव राम चेष्टितम् मनुष्यभावेन विमोहितं जगत्। चलस्यजस्रं चरणादिवर्जितः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽतिमायिकः॥४४॥ यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा भागीरथी भवविरिश्चिमुखान् पुनाति। साक्षात्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते किं वर्ण्यते मम पुराकृतभागधेयम्॥४५॥ मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिम् रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम्। धनुधरं पद्मविशाललोचनम् भजामि नित्यं न परान् भजिष्ये॥४६॥

यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यम् यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च। यन्नामसाररसिको भगवान् पुरारिः तं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि॥४७॥

यस्यावतारचरितानि विरिश्चिलोके गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्याः। आनन्दजाश्रुपरिषिक्तकुचाग्रसीमा वागीश्वरी च तमहं शरणं प्रपद्ये॥४८॥

सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण एकः स्वयञ्ज्योतिरनन्त आद्यः। मायातनुं लोकविमोहनीयाम् धत्ते परानुग्रह एष रामः॥४९॥

अयं हि विश्वोद्भवसंयमानाम् एकः स्वमायागुणबिम्बितो यः। विरिञ्चिविष्ण्वीश्वरनामभेदान् धत्ते स्वतन्त्रः परिपूर्ण आत्मा॥५०॥

नमोऽस्तु ते राम तवाङ्घिपङ्कजम् श्रिया धृतं वक्षसि लालितं प्रियात्। आक्रान्तमेकेन जगत्त्रयं पुरा ध्येयं मुनीन्द्रैरभिमानवर्जितैः॥५१॥ जगतामादिभूतस्त्वं जगत्त्वं जगदाश्रयः। सर्वभूतेष्वसंयुक्त एको भाति भवान् परः॥५२॥ ओङ्कारवाच्यस्त्वं राम वाचामविषयः पुमान्। वाच्यवाचकभेदेन भवानेव जगन्मयः॥५३॥ कार्यकारणकर्तृत्वफलसाधनभेदतः एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया॥५४॥ त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः। मानुषं त्वाऽभिमन्यन्ते मायिनं परमेश्वरम्॥५५॥ आकाशवत्त्वं सर्वत्र बहिरन्तर्गतोऽमलः। असङ्गो ह्यचलो नित्यः शुद्धो बुद्धः सद्व्ययः॥५६॥ योषिन्मूढाहमज्ञा ते तत्त्वं जाने कथं विभो। तस्मात्ते शतशो राम नमस्कुर्यामनन्यधीः॥५७॥

देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा। त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे॥५८॥

नमस्ते पुरुषाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल। नमस्तेऽस्तु हृषीकेश नारायण नमोऽस्तुते॥५९॥

भवभयहरमेकं भानुकोटिप्रकाशम् करधृतशरचापं कालमेघावभासम्। कनकरुचिरवस्त्रं रत्नवत्कुण्डलाढ्यम् कमलविशदनेत्रं सानुजं राममीडे॥६०॥

स्तुत्वैवं पुरुषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितम्। परिकम्य प्रणम्याऽऽञ्ज साऽनुज्ञाता ययौ पतिम्॥६१॥

अहल्यया कृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः। स मुच्यतेऽखिलैः पापैः परं ब्रह्माधिगच्छति॥६२॥

पुत्राद्यर्थे पठेद्भक्त्या रामं हृदि निधाय च। संवत्सरेण लभते वन्ध्या अपि सुपुत्रकम्॥६३॥ सर्वान् कामानवाप्नोति रामचन्द्रप्रसादतः॥६४॥ ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगोऽपि पुरुषः स्तेयी सुरापोऽपि वा मातृभ्रातृविहिंसकोऽपि सततं भोगैकबद्धातुरः। नित्यं स्तोत्रमिदं जपन् रघुपतिं भक्त्या हृदिस्थं स्मरन् ध्यायन्मुक्तिमुपैति किं पुनरसौ स्वाचारयुक्तो नरः॥६५॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे अहल्योद्धरणं नाम पञ्चमः सर्गः॥५॥

॥षष्ठः सर्गः॥

विश्वामित्रोऽथ तं प्राह राघवं सहलक्ष्मणम्। गच्छामो वत्स मिथिलां जनकेनाभिपालिताम्॥१॥

दृष्ट्वा क्रतुवरं पश्चादयोध्यां गन्तुमर्हेसि। इत्युक्तवा प्रययौ गङ्गामुत्तर्तुं सहराघवः। तस्मिन् काले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दनः॥२॥

नाविक उवाच

क्षालयामि तव पादपङ्कजम् नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम्। मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी॥३॥ पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि। नो चेत्तरी सद्युवती मलेन स्याचेद्विभो विद्वि कुटुम्बहानिः॥४॥

इत्युक्तवा क्षालितौ पादौ परं तीरं ततो गताः। कौशिको रघुनाथेन सिहतो मिथिलां ययौ॥५॥ विदेहस्य पुरं प्रातर्ऋषिवाटं समाविशत्। प्राप्तं कौशिकमाकण्यं जनकोऽतिमुदान्वितः॥६॥ पूजाद्रव्याणि सङ्गृद्ध सोपाध्यायः समाययौ। दण्डवत्प्रणिपत्याथ पूजयामास कौशिकम्॥७॥ पप्रच्छ राघवौ दृष्ट्वा सर्वलक्षणसंयुतौ। द्योतयन्तौ दिशः सर्वाश्चन्द्रसूर्याविवापरौ॥८॥ कस्यैतौ नरशार्दूलौ पुत्रौ देवसुतोपमौ। मनःप्रीतिकरौ मेऽद्य नरनारायणाविव॥९॥

प्रत्युवाच मुनिः प्रीतो हर्षयन् जनकं तदा। पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥१०॥

मखसंरक्षणार्थाय मयाऽऽनीतौ पितुः पुरात्। आगच्छन् राघवो मार्गे ताटकां विश्वघातिनीम्॥११॥

शरेणैकेन हतवान्नोदितो मेऽतिविक्रमः। ततो ममाश्रमं गत्वा मम यज्ञविहिंसकान्॥१२॥

सुबाहुप्रमुखान् हत्वा मारीचं सागरेऽक्षिपत्। ततो गङ्गातटे पुण्ये गौतमस्याश्रमं शुभम्॥१३॥

गत्वा तत्र शिलारूपा गौतमस्य वधूः स्थिता। पादपङ्कजसंस्पर्शात्कृता मानुषरूपिणी॥१४॥

दृष्ट्वाऽहल्यां नमस्कृत्य तया सम्यक्प्रपूजितः। इदानीं द्रष्टुकामस्ते गृहे माहेश्वरं धनुः॥१५॥ पूजितं राजिभः सवैर्देष्टिमित्यनुशुश्रुवे।
अतो दर्शय राजेन्द्र शैवं चापमनुत्तमम्।
दृष्ट्वाऽयोध्यां जिगिमषुः पितरं द्रष्टुमिच्छिति॥१६॥
इत्युक्तो मुनिना राजा पूजार्हाविति पूजया।
पूजयामास धर्मज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा।
ततः सम्प्रेषयामास मित्रणं बुद्धिमत्तरम्॥१७॥
जनक उवाच

शीघ्रमानय विश्वेशचापं रामाय दर्शय॥१८॥ ततो गते मित्रवरे राजा कौशिकमब्रवीत्। यदि रामो धनुर्धृत्वा कोट्यामारोपयेद्गुणम्॥१९॥ तदा मयाऽऽत्मजा सीता दीयते राघवाय हि। तथेति कौशिकोऽप्याह रामं संवीक्ष्य सिस्मितम्॥२०॥ शीघ्रं दर्शय चापाय्यं रामायामिततेजसे। एवं ब्रुवित मौनीशे आगताश्चापवाहकाः॥२१॥ चापं गृहीत्वा बिलनः पञ्चसाहस्रसङ्ख्यकाः। घण्टाशतसमायुक्तं मणिवज्रादिभूषितम्॥२२॥

द्र्शयामास रामाय मन्त्री मन्त्रयतां वरः। दृष्ट्वा रामः प्रहृष्टात्मा बद्धा परिकरं दृढम्॥२३॥ गृहीत्वा वामहस्तेन लीलया तोलयन् धनुः। आरोपयामास गुणं पश्यत्स्विखलराजसु॥२४॥ ईषदाकर्षयामास पाणिना दक्षिणेन सः। बभञ्जाखिलहृत्सारो दिशः शब्देन पूरयन्॥२५॥ दिशश्च विदिशश्चैव स्वर्गं मर्त्यं रसातलम्। तद्द्भतमभूत्तत्र देवानां दिवि पश्यताम्॥२६॥ आच्छादयन्तः कुसुमैर्देवाः स्तुतिभिरीडिरे। देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥२७॥ द्विधा भग्नं धनुर्देष्ट्वा राजालिङ्य रघूद्वहम्। विस्मयं लेभिरे सीतामातरोऽन्तःपुराजिरे॥२८॥ सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे। स्मितवञ्चा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता॥२९॥ मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः कणचरणनूपुरा। दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी॥३०॥

रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ। ततो मुमुदिरे सर्वे राजदाराः स्वलङ्कतम्॥३१॥ गवाक्षजालरन्ध्रेभ्यो दृष्ट्वा लोकविमोहनम्। ततोऽब्रवीन्मुनिं राजा सर्वशास्त्रविशारदः॥३२॥ भो कौशिक मुनिश्रेष्ठ पत्रं प्रेषय सत्वरम्। राजा दशरथः शीघ्रमागच्छतु सपुत्रकः॥३३॥ विवाहार्थं कुमाराणां सदारः सहमन्त्रिभिः। तथेति प्रेषयामास दूतान्स्त्वरितविक्रमान्॥ ३४॥ ते गत्वा राजशार्दूलं रामश्रेयो न्यवेदयन्। श्रुत्वा रामकृतं राजा हर्षेण महताऽऽस्रुतः॥३५॥ मिथिलागमनार्थाय त्वरयामास मन्त्रिभिः। गच्छन्तु मिथिलां सर्वे गजाश्वरथपत्तयः॥३६॥ रथमानय मे शीघ्रं गच्छाम्यद्यैव मा चिरम। वसिष्ठस्त्वयतो यातु सदारः सहितोऽग्निभिः॥३७॥ राममातृः समादाय मुनिर्मे भगवान् गुरुः। एवं प्रस्थाप्य सकलं राजिंविंपुलं रथम्॥३८॥

महत्या सेनया सार्धमारुह्य त्वरितो ययौ। आगतं राघवं श्रुत्वा राजा हर्षसमाकुलः॥३९॥ प्रत्युज्जगाम जनकः शतानन्दपुरोधसा। यथोक्तपूजया पूज्यं पूजयामास सत्कृतम्॥४०॥ रामस्तु लक्ष्मणेनाशु ववन्दे चरणौ पितुः। ततो हृष्टो दशरथो रामं वचनमब्रवीत्॥४१॥ दिष्ट्या परयामि ते राम मुखं फुल्लाम्बुजोपमम्। मुनेरनुग्रहात्सर्वं सम्पन्नं मम शोभनम्॥४२॥ इत्युक्तवाऽऽघ्राय मूर्घानमालिज्ञा च पुनः पुनः। हर्षेण महताऽऽविष्टो ब्रह्मानन्दं गतो यथा॥४३॥ ततो जनकराजेन मन्दिरे सन्निवेशितः। शोभने सर्वभोगाढ्ये सदारः ससुतः सुखी॥४४॥ ततः शुभे दिने लग्ने सुमुहूर्ते रघूत्तमम्। आनयामास धर्मज्ञो रामं सभ्रातृकं तदा॥४५॥ रत्नस्तम्भसुविस्तारे सुविताने सुतोरणे। मण्डपे सर्वशोभाढ्ये मुक्तापुष्पफलान्विते॥४६॥

वेदविद्भिः सुसम्बाधे ब्राह्मणैः स्वर्णभूषितैः। सुवासिनीभिः परितो निष्ककण्ठीभिरावृते॥४७॥ भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतनृत्यैः समाकुले। दिव्यरताञ्चिते स्वर्णपीठे रामं न्यवेशयत्॥४८॥ वसिष्ठं कौशिकं चैव शतानन्दः पुरोहितः। यथाक्रमं पूजियत्वा रामस्योभयपार्श्वयोः॥४९॥ स्थापयित्वा स तत्राग्निं ज्वालयित्वा यथाविधि। सीतामानीय शोभाढ्यां नानारत्नविभूषिताम्॥५०॥ सभार्यो जनकः प्रायाद्रामं राजीवलोचनम्। पादौ प्रक्षाल्य विधिवत्तद्पो मूर्घ्यधारयत्॥५१॥ या धृता मूर्घि शर्वेण ब्रह्मणा मुनिभिः सदा। ततः सीतां करे धृत्वा साक्षतोदकपूर्वकम्॥५२॥ रामाय प्रददौ प्रीत्या पाणिग्रहविधानतः। सीता कमलपत्राक्षी स्वर्णमुक्तादिभूषिता॥५३॥ दीयते मे सुता तुभ्यं प्रीतो भव रघूत्तम। इति प्रीतेन मनसा सीतां रामकरेऽर्पयन्॥५४॥

मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिव विष्णवे। उर्मिलां चौरसीं कन्यां लक्ष्मणाय ददौ मुदा॥५५॥ तथैव श्रुतिकीर्तिं च माण्डवीं भ्रातकन्यके। भरताय ददावेकां शत्रुघ्नायापरां ददौ॥५६॥ चत्वारो दारसम्पन्ना भ्रातरः शुभलक्षणाः। विरेजुः प्रजया सर्वे लोकपाला इवापरे॥५७॥ ततोऽब्रवीद्वसिष्ठाय विश्वामित्राय मैथिलः। जनकः स्वसुतोदन्तं नारदेनाभिभाषितम्॥५८॥ यज्ञभूमिविशुर्ख्यर्थं कर्षतो लाङ्गलेन मे। सीतामुखात्समृत्पन्ना कन्यका शुभलक्षणा॥५९॥ तामद्राक्षमहं प्रीत्या पुत्रिकाभावभाविताम्। अर्पिता प्रियभार्यायै शरचन्द्रनिभानना॥६०॥ एकदा नारदोऽभ्यागाद्विविक्ते मिय संस्थिते। रणयन्महतीम् वीणां गायन्नारायणं विभुम्॥६१॥ पूजितः सुखमासीनो मामुवाच सुखान्वितः। शृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम्॥६२॥

परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया। देवकार्यार्थसिद्धर्थं रावणस्य वधाय च॥६३॥ जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक्। आस्ते दाशरिथर्भूत्वा चतुर्घा परमेश्वरः॥६४॥ योगमायाऽपि सीतेति जाता वै तव वेश्मिन। अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः॥६५॥ नान्येभ्यः पूर्वभार्येषा रामस्य परमात्मनः। इत्युत्तवा प्रययौ देवगतिं देवमुनिस्तदा॥६६॥ तदारभ्य मया सीता विष्णोर्रुक्ष्मीर्विभाव्यते। कथं मया राघवाय दीयते जानकी शुभा॥६७॥ इति चिन्तासमाविष्टः कार्यमेकमचिन्तयम्। मित्पतामहगेहे तु न्यासभूतिमदं धनुः॥६८॥ ईश्वरेण पुरा क्षिप्तं पुरदाहादनन्तरम्। धनुरेतत्पणं कार्यमिति चिन्त्य कृतं तथा॥६९॥ सीतापाणिग्रहार्थाय सर्वेषां माननाशनम्। त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ रामो राजीवलोचनः॥७०॥

आगतोऽत्र धनुर्द्रष्टुं फिलितो मे मनोरथः। अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया॥७१॥ एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रिवं यथा॥७२॥ त्वत्पादाम्बुधरो ब्रह्मा सृष्टिचक्रप्रवर्तकः। बलिस्त्वत्पादसलिलं घृत्वाऽभूद्दिविजाधिपः॥७३॥

त्वत्पादपांसुसंस्पर्शादहल्या भर्तृशापतः। सद्य एव विनिर्मुक्ता कोऽन्यस्त्वत्तोऽधिरक्षिता॥७४॥

यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगि-वृन्दैर्जितम्भवभयं जितकालचकैः। यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये॥७५॥

इति स्तुत्वा नृपः प्रादाद्राघवाय महात्मने। दीनाराणां कोटिशतं रथानामयुतं तदा॥७६॥

अश्वानां नियुतं प्रादाद्गजानां षङ्गतं तथा। पत्तीनां लक्षमेकं तु दासीनां त्रिशतं ददौ॥७७॥ दिव्याम्बराणि हारानश्च मुक्तारत्नमयोज्ज्वलान्। सीतायै जनकः प्रादात्प्रीत्या दुहितृवत्सलः॥७८॥ विसष्ठादीन् सुसम्पूज्य भरतं लक्ष्मणं तथा। पूजियत्वा यथान्यायं तथा दशरथं नृपम्॥७९॥ प्रस्थापयामास नृपो राजानं रघुसत्तमम्। सीतामालिज्ञ्च रुदतीं मातरः साश्रुलोचनाः॥८०॥ श्वश्रूशुश्रूषणपरा नित्यं राममनुव्रता। पातिव्रत्यमुपालम्ब्य तिष्ठ वत्से यथा सुखम्॥८१॥

प्रयाणकाले रघुनन्दनस्य भेरीमृदङ्गानकतूर्यघोषः। स्वर्वासिभेरीघनतूर्यशब्दैः सम्मूर्च्छितो भूतभयङ्करोऽभूत्॥८२॥ ॥इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे षष्टः सर्गः॥६॥

॥ सप्तमः सर्गः॥

अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्योजनत्रयम्। निमित्तान्यतिघोराणि ददर्श नृपसत्तमः॥१॥

नत्वा वसिष्ठं पप्रच्छ किमिदं मुनिपुङ्गव। निमित्तानीह दृश्यन्ते विषमाणि समन्ततः॥२॥ वसिष्ठस्तमथ प्राह भयमागामि सूच्यते। पुनरप्यभयं तेऽद्य शीघ्रमेव भविष्यति॥३॥ मृगाः प्रदक्षिणं यान्ति पश्य त्वां शुभसूचकाः। इत्येवं वदतस्तस्य ववौ घोरतरोऽनिलः॥४॥ मुष्णनश्रक्षंषि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिरर्दयन्। ततो व्रजन् ददर्शांग्रे तेजोराशिमुपस्थितम्॥५॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम्। तेजोराशिं ददर्शाथ जामदृश्यं प्रतापवान्॥६॥ नीलमेघनिभं प्रांशुं जटामण्डलमण्डितम्। घनुः परशुपाणिं च साक्षात्कालमिवान्तकम्॥७॥ कार्तवीर्यान्तकं रामं दप्तक्षत्रियमर्दनम्। प्राप्तं दशरथस्याग्रे कालमृत्युमिवापरम्॥८॥ तं दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तो राजा दशरथस्तदा। अर्घ्यादिपूजां विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाब्रवीत्॥९॥

दण्डवत्प्रणिपत्याह पुत्रप्राणं प्रयच्छ मे। इति ब्रुवन्तं राजानमनादृत्य रघूत्तमम्॥१०॥ उवाच निष्टुरं वाक्यं क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः। त्वं राम इति नाम्ना मे चरिस क्षत्रियाधम॥११॥ द्वन्द्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि वै। पुराणं जर्जरं चापं भङ्का त्वं कत्थसे मुधा॥१२॥ अस्मिन्स्तु वैष्णवे चापे आरोपयसि चेद्गुणम्। तदा युद्धं त्वया सार्धं करोमि रघुवंशज॥१३॥ नो चेत्सर्वान् हनिष्यामि क्षत्रियान्तकरो ह्यहम्। इति ब्रुवति वै तस्मिन्श्चचाल वसुधा भृशम्॥१४॥ अन्धकारो बभूवाथ सर्वेषामपि चक्षुषाम्। रामो दाशरथिवीरो वीक्ष्य तं भार्गवं रुषा॥१५॥ धनुराच्छिद्य तद्धस्तादारोप्य गुणमञ्जसा। तूणीराद्वाणमादाय सन्धायाकृष्य वीर्यवान्॥१६॥ उवाच भार्गवं रामं शृणु ब्रह्मन् वचो मम। लक्ष्यं दर्शय बाणस्य ह्यमोघो मम सायकः॥१७॥

लोकान् पादयुगं वाऽपि वद शीघ्रं ममाऽऽज्ञया। अयं लोकः परो वाथ त्वया गन्तुं न शक्यते॥१८॥

एवं त्वं हि प्रकर्तव्यं वद शीघ्रं ममऽऽज्ञया। एवं वदति श्रीरामे भार्गवो विकृताननः॥१९॥

संस्मरन् पूर्ववृत्तान्तिमदं वचनमब्रवीत्। राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम्॥२०॥

पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलयोद्भवम्। बाल्येऽहं तपसा विष्णुमाराधयितुमञ्जसा॥२१॥

चक्रतीर्थं शुभं गत्वा तपसा विष्णुमन्वहम्। अतोषयं महात्मानं नारायणमनन्यधीः॥२२॥

ततः प्रसन्नो देवेशः शङ्खचकगदाधरः। उवाच मां रघुश्रेष्ठ प्रसन्नमुखपङ्कजः॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन् फिलतं ते तपो महत्। मिचदंशेन युक्तस्त्वं जिह हैहयपुङ्गवम्॥२४॥

कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसः श्रमः। ततस्त्रिःसप्तकृत्वस्त्वं हत्वा क्षत्रियमण्डलम्॥२५॥ कृत्स्नां भूमिं कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमुपावह। त्रेतामुखे दाशरिथर्भूत्वा रामोऽहमव्ययः॥२६॥ उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यिस मां ततः। मत्तेजः पुनरादास्ये त्विय दत्तं मया पुरा॥२७॥ तदा तपश्चरन्ल्लोके तिष्ठ त्वं ब्रह्मणो दिनम्। इत्युत्तवाऽन्तर्द्धे देवस्तथा सर्वं कृतं मया॥२८॥ स एव विष्णुस्त्वं राम जातोऽसि ब्रह्मणार्थितः। मिय स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम्॥२९॥ अद्य में सफलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो। ब्रह्मादिभिरलभ्यस्त्वं प्रकृतेः पारगो मतः॥३०॥ त्विय जन्मादिषङ्गावा न सन्त्यज्ञानसम्भवाः। निर्विकारोऽसि पूर्णस्त्वं गमनादिविवर्जितः॥३१॥ यथा जले फेनजालं धूमो वह्नौ तथा त्विय। त्वदाधारा त्वद्विषया माया कार्यं सृजत्यहो॥३२॥

यावन्मायावृता लोकास्तावत्त्वां न विजानते। अविचारितसिद्धैषाऽविद्या विद्याविरोधिनी॥३३॥ अविद्याकृतदेहादिसङ्घाते प्रतिबिम्बिता। चिच्छक्तिर्जीवलोकेऽस्मिन् जीव इत्यभिधीयते॥३४॥ यावदेहमनःप्राणबुद्धादिष्वभिमानवान् । तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिभाग्भवेत्॥३५॥ आत्मनःसंसृतिर्नास्ति बुद्धेर्ज्ञानं न जात्विति। अविवेकाद्वयं युङ्का संसारीति प्रवर्तते॥३६॥ जडस्य चित्समायोगाचित्त्वं भूयाचितेस्तथा। जडसङ्गाजाडत्वं हि जलास्योर्मेलनं यथा॥३७॥ यावत्त्वत्पाद्भक्तानां सङ्गसौख्यं न विन्दति। तावत्संसारदुःखौघान्न निवर्तेन्नरः सदा॥३८॥ तत्सङ्गलब्धया भक्त्या यदा त्वां समुपासते। तदा माया शनैर्याति तानवं प्रतिपद्यते॥३९॥ ततस्त्वज्ज्ञानसम्पन्नः सद्गुरुस्तेन लभ्यते। वाक्यज्ञानं गुरोर्लब्या त्वत्प्रसादाद्विमुच्यते॥४०॥

तस्मात्त्वद्भक्तिहीनानां कल्पकोटिशतैरपि। न मुक्तिराङ्का विज्ञानराङ्का नैव सुखं तथा॥४१॥ अतस्त्वत्पादयुगले भक्तिर्मे जन्मजन्मनि। स्यात्त्वद्भक्तिमतां सङ्गोऽविद्या याभ्यां विनश्यति॥४२॥ लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वद्धर्मामृतवर्षिणः। पुनन्ति लोकमखिलं किं पुनः स्वकुलोद्भवान्॥४३॥ नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्ते भक्तिभावन। नमः कारुणिकानन्त रामचन्द्र नमोऽस्तु ते॥४४॥ देव यद्यत्कृतं पुण्यं मया लोकजिगीषया। तत्सर्वं तव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते॥४५॥ ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः। प्रसन्नोऽस्मि तव ब्रह्मन् यत्ते मनसि वर्तते॥४६॥ दास्ये तद्खिलं कामं मा कुरुष्वात्र संशयम्। ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत्॥४७॥ यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन। त्वद्भक्तसङ्गस्त्वत्पादे दृढा भक्तिः सदास्तु मे॥४८॥

स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु भक्तिहीनोऽपि सर्वदा। त्वद्भक्तिस्तस्य विज्ञानं भूयादन्ते स्मृतिस्तव॥४९॥

तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम्। पूजितस्तदनुज्ञातो महेन्द्राचलमन्वगात्॥५०॥

राजा दशरथो हृष्टो रामं मृतमिवागतम्। आलिङ्यालिङ्य हर्षेण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजत्॥५१॥

ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुरं ययौ। रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसम्मिताः॥५२॥

स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्वस्वमन्दिरे। मातापितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः। रेमे वैकुण्ठभवने श्रिया सह यथा हरिः॥५३॥

युधाजिन्नाम कैकेयीभ्राता भरतमातुलः। भरतं नेतुमागच्छत्स्वराज्यं प्रीतिसंयुतः॥५४॥

प्रेषयामास भरतं राजा स्नेहसमन्वितः। शत्रुघ्नं चापि सम्पूज्य युधाजितमरिन्दमः॥५५॥ कौसल्या शुशुभे देवी रामेण सह सीतया। देवमातेव पौलोम्या शच्या शकेण शोभना॥५६॥ साकेते लोकनाथप्रथितगुणगणो लोकसङ्गीतकीर्तिः श्रीरामः सीतयास्तेऽखिलजनिकरानन्दसन्दोहमूर्तिः। नित्यश्रीनिर्विकारो निरविधिविभवो नित्यमायानिरासो मायाकार्यानुसारी मनुज इव सदा भाति देवोऽखिलेशः॥५७॥ ॥इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे सप्तमः सर्गः॥७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे बालकाण्डः समाप्तः॥

॥ अयोध्याकाण्डः ॥

॥प्रथमः सर्गः॥

एकदा सुखमासीनं रामं स्वान्तःपुराजिरे। सर्वाभरणसम्पन्नं रत्नसिंहासने स्थितम्॥१॥ नीलोत्पलदलश्यामं कौस्तुभामुक्तकन्धरम्। सीतया रत्नदण्डेन चामरेणाथ वीजितम्॥२॥ विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणादिभिरादरात्। नारदोऽवतरद्रष्ट्रमम्बराद्यत्र राघवः॥३॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शरचन्द्र इवामलः। अतर्कितमुपायातो नारदो दिव्यदर्शनः॥४॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रामः प्रीत्या कृताञ्जलिः। ननाम शिरसा भूमौ सीतया सह भक्तिमान्॥५॥

उवाच नारदं रामः प्रीत्या परमया युतः। संसारिणां मुनिश्रेष्ठ दुर्लभं तव दर्शनम्। अस्माकं विषयासक्तचेतसां नितरां मुने॥६॥

अवाप्तं मे पूर्वजन्मकृतपुण्यमहोद्यैः। संसारिणाऽपि हि मुने लभ्यते सत्समागमः॥७॥

अतस्त्वद्दर्शनादेव कृतार्थोऽस्मि मुनीश्वर। किं कार्यं ते मया कार्यं ब्रूहि तत्करवाणि भोः॥८॥

अथ तं नारदोऽप्याह राघवं भक्तवत्सलम्। किं मोहयसि मां राम वाक्येर्लोकानुसारिभिः॥९॥

संसार्यहमिति प्रोक्तं सत्यमेतत्त्वया विभो। जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव॥१०॥ त्वत्सन्निकर्षाज्ञायन्ते तस्यां ब्रह्माद्यः प्रजाः। त्वदाश्रया सदा भाति माया या त्रिगुणात्मिका॥११॥ सूतेऽजस्रं शुक्ककृष्णलोहिताः सर्वदा प्रजाः। लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृतः॥१२॥ त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा। ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा॥१३॥ भवान् शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा। शकस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहानलो भवान्॥१४॥ यमस्त्वं कालरूपश्च सीता संयमिनी प्रभो। निर्ऋतिस्त्वं जगन्नाथ तामसी जानकी शुभा॥१५॥ राम त्वमेव वरुणो भार्गवी जानकी शुभा। वायुस्त्वं राम सीता तु सदागतिरितीरिता॥१६॥ कुबेरस्त्वं राम सीता सर्वसम्पत्प्रकीर्तिता। रुद्राणी जानकी प्रोक्ता रुद्रस्त्वं लोकनाशकृत्॥१७॥

लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकी शुभा। पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव॥१८॥ तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन॥१९॥ त्वदाभासोदिताज्ञानमव्याकतमितीर्यते तस्मान्महान्स्ततः सूत्रं लिङ्गं सर्वात्मकं ततः॥२०॥ अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पञ्चप्राणेन्द्रियाणि च। लिङ्गमित्युच्यते प्राज्ञैर्जन्ममृत्युसुखादिमत्॥ २१॥ स एव जीवसंज्ञश्च लोके भाति जगन्मयः। अवाच्यानाद्यविद्यैव कारणोपाधिरुच्यते॥२२॥ स्थूलं सूक्ष्मं कारणाख्यमुपाधित्रितयं चितेः। एतैर्विशिष्टो जीवः स्याद्वियुक्तः परमेश्वरः॥२३॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या संसृतिर्या प्रवर्तते। तस्या विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रस्त्वं रघूत्तम॥२४॥ त्वत्त एव जगज्जातं त्विय सर्वं प्रतिष्ठितम्। त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम्॥२५॥

रजावहिमिवात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत्। परात्माहमिति ज्ञात्वा भयदुःखैर्विमुच्यते॥२६॥ चिन्मात्रज्योतिषा सर्वाः सर्वदेहेषु बुद्धयः। त्वया यस्मात्प्रकाइयन्ते सर्वस्यात्मा ततो भवान्॥२७॥ अज्ञानान्न्यस्यते सर्वं त्विय रज्जौ भुजङ्गवत्॥ २८॥ त्वत्पाद्भक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात्। तस्मात्त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि॥ २९॥ अहं त्वद्धक्तभक्तानां तद्धक्तानां च किङ्करः। अतो मामनुगृह्णीष्व मोहयस्व न मां प्रभो॥३०॥ त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो। अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव॥३१॥ इत्युक्तवा बहुशो नत्वा स्वानन्दाश्रुपरिप्नुतः। उवाच वचनं राम ब्रह्मणा नोदितोऽस्म्यहम्॥३२॥ रावणस्य वधार्थाय जातोऽसि रघुसत्तम। इदानीं राज्यरक्षार्थं पिता त्वामभिषेक्ष्यति॥३३॥ यदि राज्याभिसंसक्तो रावणं न हनिष्यसि। प्रतिज्ञा ते कृता राम भूभारहरणाय वै॥३४॥

तत्सत्यं कुरु राजेन्द्र सत्यसन्धस्त्वमेव हि। श्रुत्वैतद्गदितं रामो नारदं प्राह सस्मितम्॥३५॥ शृणु नारद मे किञ्चिद्विद्यतेऽविदितं कचित्। प्रतिज्ञातं च यत्पूर्वं करिष्ये तन्न संशयः॥३६॥ किन्तु कालानुरोधेन तत्तत्प्रारब्धसङ्खयात्। हरिष्ये सर्वभूभारं क्रमेणासुरमण्डलम्॥३७॥ रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम्। चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक्॥३८॥ सीतामिषेण तं दुष्टं सकुलं नाशयाम्यहम्। एवं रामे प्रतिज्ञाते नारदः प्रमुमोद ह॥३९॥ प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य तम्। अनुज्ञातश्च रामेण ययौ देवगतिं मुनिः॥४०॥ संवादं पठति शृणोति संस्मरेहा यो नित्यं मुनिवररामयोः सभक्त्या। सम्प्राप्तोत्यमरसुदुर्लभं विमोक्षम् कैवल्यं विरतिपुरःसरं क्रमेण॥४१॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे प्रथमः सर्गः॥ १॥

॥ द्वितीयः सर्गः॥

अथ राजा दशरथः कदाचिद्रहसि स्थितः। वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमाहूयेदमभाषत॥१॥

भगवन् राममिखलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः। पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषतः॥२॥

ततः सर्वगुणोपेतं रामं राजीवलोचनम्। ज्येष्ठं राज्येऽभिषेक्ष्यामि वृद्धोऽहं मुनिपुङ्गव॥३॥

भरतो मातुलं द्रष्टुं गतः शत्रुघ्नसंयुतः। अभिषेक्ष्येश्व एवाशु भवान्स्तचानुमोदताम्॥४॥

सम्भाराः सिम्प्रियन्तां च गच्छ मन्त्रय राघवम्। उच्छीयन्तां पताकाश्च नानावर्णाः समन्ततः॥५॥

तोरणानि विचित्राणि स्वर्णमुक्तामयानि वै। आहूय मन्त्रिणं राजा सुमन्त्रम्॥६॥

आज्ञापयति यद्यत्त्वां मुनिस्तत्तत्समानय। यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामि श्वोभूते रघुनन्दनम्॥७॥ तथेति हर्षात्स मुनिं किं करोमीत्यभाषत। तमुवाच महातेजा वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः॥८॥ श्वः प्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः। तिष्ठन्तु षोडश गजाः स्वर्णरत्नादि भूषिताः॥९॥ चतुर्दन्तः समायातु ऐरावतकुलोद्भवः। नानातीर्थोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः॥१०॥ स्थाप्यन्तां नववैयाघ्रचर्माणि त्रीणि चानय। श्वेतच्छत्रं रत्नदण्डं मुक्तामणिविराजितम्॥११॥ दिव्यमाल्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च। मुनयः सत्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशपाणयः॥१२॥ नर्तक्यो वारमुख्याश्च गायका वेणुकास्तथा। नानावादित्रकुराला वादयन्तु नृपाङ्गणे॥१३॥ हस्त्यश्वरथपादाता बहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः। नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च॥१४॥

तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाबलिभिरावृता। राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः॥१५॥ इत्यादिश्य मुनिः श्रीमान् सुमन्त्रं नृपमन्त्रिणम्। स्वयं जगाम भवनं राघवस्यातिशोभनम्॥१६॥ रथमारुह्य भगवान् वसिष्ठो मुनिसत्तमः। त्रीणि कक्षाण्यतिकम्य रथात्क्षितिमवातरत्॥ १७॥ अन्तः प्रविश्य भवनं स्वाचार्यत्वादवारितः। गुरुमागतमाज्ञाय रामस्तूर्णः कृताञ्जलिः॥१८॥ प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य दण्डवद्भक्तिसंयुतः। स्वर्णपात्रेण पानीयमानिनायाऽऽशु जानकी॥१९॥ रत्नासने समावेश्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः। तद्पः शिरसा धृत्वा सीताया सह राघवः॥२०॥ धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्रामस्तव पादाम्बुधारणात्। श्रीरामेणैवमुक्तस्तु प्रहसन् मुनिरब्रवीत्॥२१॥ त्वत्पादसिललं धृत्वा धन्योऽभूद्गिरिजापितः। ब्रह्माऽपि मित्पता ते हि पादतीर्थहताशुभः॥२२॥

इदानीं भाषसे यत्त्वं लोकानामुपदेशकृत्। जानामि त्वां परात्मानं लक्ष्म्या सञ्जातमीश्वरम्॥२३॥ देवकार्यार्थसिद्धर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये। रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव॥२४॥ तथाऽपि देवकार्यार्थं गृह्यं नोद्घाटयाम्यहम्। तथा त्वं मायया सर्वं करोषि रघुनन्दन॥२५॥ तथैवानुविधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम्। गुरुर्गुरूणां त्वं देव पितृणां त्वं पितामहः॥२६॥ अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः। शुद्धसत्त्वमयं देहं धृत्वा स्वाधीनसम्भवम्॥२७॥ मनुष्य इव लोकेऽस्मिन् भासि त्वं योगमायया। पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम्॥२८॥ इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते। इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा॥२९॥ ततोऽहमाशया राम तव सम्बन्धकाङ्खया। अकार्षं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये॥३०॥

ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन। त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी॥३१॥ मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह। गुरुनिष्कृतिकामस्त्वं यदि देह्येतदेव मे॥ ३२॥ प्रसङ्गात्सर्वमप्युक्तं न वाच्यं कुत्रचिन्मया। राज्ञा दशरथेनाहं प्रेषितोऽस्मि रघृद्वह॥३३॥ त्वामामन्त्रयितुं राज्ये श्वोऽभिषेक्ष्यति राघव। अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि॥३४॥ कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रियः। गच्छामि राजसान्निध्यं त्वं तु प्रातर्गमिष्यसि॥३५॥ इत्युक्तवा रथमारुह्य ययौ राजगुरुर्द्रुतम्। रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रहसन्निद्मबवीत्॥३६॥ सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति। निमित्तमात्रमेवाहं कर्ता भोक्ता त्वमेव हि॥३७॥ मम त्वं हि बहिःप्राणो नात्र कार्यो विचारणा। ततो वसिष्ठेन यथा भाषितं तत्त्रथाऽकरोत्॥३८॥

वसिष्ठोऽपि नृपं गत्वा कृतं सर्वं न्यवेदयत्। वसिष्ठस्य पुरो राज्ञा ह्युक्तं रामाभिषेचनम्॥३९॥ यदा तदैव नगरे श्रुत्वा कश्चित्पुमान् जगौ। कौसल्यायै राममात्रे सुमित्रायै तथैव च॥४०॥ श्रुत्वा ते हर्षसम्पूर्णे ददतुर्हारमुत्तमम्। तस्मै ततः प्रीतमनाः कौसल्या पुत्रवत्सला॥४१॥ लक्ष्मीं पर्यचरद्देवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये। सत्यवादी दशरथः करोत्येव प्रतिश्रुतम्॥४२॥ कैकेयीवशगः किन्तु कामुकः किं करिष्यति। इति व्याकुलचित्ता सा दुर्गां देवीमपूजयत्॥४३॥ एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन्। गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः॥४४॥ रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः। मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम्॥४५॥ ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे। तथेत्युक्तवा तथा चके प्रविवेशाथ मन्थराम्॥४६॥

साऽपि कुड़ा त्रिवका तु प्रासादाग्रमथारुहत्। नगरं परितो दृष्ट्वा सर्वतः समलङ्कृतम्॥४७॥ नानातोरणसम्बाधं पताकाभिरलङ्कतम्। दानोत्सवसमायुक्ता कौसल्या चातिहर्षिता॥४८॥ धात्रीं पप्रच्छ मातः किं नगरं समलङ्कतम्। दानोत्सवसमायुक्ता कौसल्या चातिहर्षिता॥४९॥ द्दाति विप्रमुख्येभ्यो वस्त्राणि विविधानि च। तामुवाच तदा धात्री रामचन्द्राभिषेचनम्॥५०॥ श्वो भविष्यति तेनाद्य सर्वतोऽलङ्कतं पुरम्। तच्छुत्वा त्वरितं गत्वा कैकेयीं वाक्यमब्वीत्॥५१॥ पर्यङ्कस्थां विशालाक्षीमेकान्ते पर्यवस्थिताम्। किं शेषे दुर्भगे मूढे महद्भयमुपस्थितम्॥५२॥ न जानीषेऽतिसौन्दर्यमानिनी मत्तगामिनी॥५३॥ रामस्यानुग्रहाद्राज्ञः श्वोऽभिषेको भविष्यति। तच्छुत्वा सहसोत्थाय कैकेयी प्रियवादिनी॥५४॥

तस्यै दिव्यं ददौ स्वर्णनूपुरं रत्नभूषितम्। हर्षस्थाने किमिति मे कथ्यते भयमागतम्॥५५॥ भरतादधिको रामः प्रियकुन्मे प्रियंवदः। कौसल्यां मां समं पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम्॥५६॥ रामाद्भयं किमापन्नं तव मूढे वदस्व मे। तच्छुत्वा विषसादाथ कुजाऽकारणवैरिणी॥५७॥ शृणु मद्वचनं देवि यथार्थं ते महद्भयम्। त्वां तोषयन् सदा राजा प्रियवाक्यानि भाषते॥५८॥ कामुकोऽतथ्यवादी च त्वां वाचा परितोषयन्। कार्यं करोति तस्या वै राममातुः सुपुष्कलम्॥५९॥ मनस्येतन्निधायैव प्रेषयामास ते सुतम्। भरतं मातुलकुले प्रेषयामास सानुजम्॥६०॥ सुमित्रायाः समीचीनं भविष्यति न संशयः। लक्ष्मणो राममन्वेति राज्यं सोऽनुभविष्यति॥६१॥ भरतो राघवस्याग्रे किङ्करो वा भविष्यति। विवास्यते वा नगरात्प्राणैर्वा हायतेऽचिरात्॥६२॥

त्वं तु दासीव कौसल्यां नित्यं परिचरिष्यसि। ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपल्याः पराभवः॥६३॥ अतः शीघ्रं यतस्वाद्य भरतस्याभिषेचने। रामस्य वनवासार्थं वर्षाणि नव पञ्च च॥६४॥ ततो रूढोऽभये पुत्रस्तव राज्ञि भविष्यति। उपायं ते प्रवक्ष्यामि पूर्वमेव सुनिश्चितम्॥६५॥ पुरा देवासुरे युद्धे राजा दशरथः स्वयम्। इन्द्रेण याचितो धन्वी सहायार्थं महारथः॥६६॥ जगाम सेनया साधैं त्वया सह शुभानने। युद्धं प्रकुर्वतस्तस्य राक्षसैः सह धन्विनः॥६७॥ तदाऽक्षकीलो न्यपतच्छिन्नस्तस्य न वेद सः। त्वं तु हस्तं समावेश्य कीलरन्ध्रेऽतिधैर्यतः॥६८॥ स्थितवत्यसितापाङ्गि पतिप्राणपरीप्सया। ततो हत्वाऽसुरान् सर्वान् ददर्श त्वामरिन्दमः॥६९॥ आश्चर्यं परमं लेभे त्वामालिङ्य मुदान्वितः। वृणीष्व यत्ते मनसि वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम्॥७०॥

वरद्वयं वणीष्व त्वमेवं राजावदत्स्वयम्। त्वयोक्तो वरदो राजन् यदि दत्तं वरद्वयम्॥७१॥ त्वय्येव तिष्ठतु चिरं न्यासभूतं ममानघ। यदा मेऽवसरो भूयात्तदा देहि वरद्वयम्॥७२॥ तथेत्युक्तवा स्वयं राजा मन्दिरं व्रज सुव्रते। त्वत्तः श्रुतं मया पूर्वमिदानीं स्मृतिमागतम्॥७३॥ अतः शीघ्रं प्रविश्याद्य क्रोधागारं रुषान्विता। विमुच्य सर्वाभरणं सर्वतो विनिकीर्य च॥७४॥ भूमावेव रायाना त्वं तूष्णीमातिष्ठ भामिनि। यावत्सत्यं प्रतिज्ञाय राजाभीष्टं करोति ते॥ ७५॥ श्रत्वा त्रिवक्रयोक्तं तत्तदा केकयनन्दिनी। तथ्यमेवाखिलं मेने दुःसङ्गाहितविभ्रमा॥७६॥ तामाह कैकेयी दुष्टा कुतस्ते बुद्धिरीहशी। एवं त्वां बुद्धिसम्पन्नां न जाने वक्रसुन्दरि॥७७॥ भरतो यदि राजा में भविष्यति सुतः प्रियः। ग्रामान् शतं प्रदास्यामि मम त्वं प्राणवल्लभा॥७८॥

इत्युक्तवा कोपभवनं प्रविश्य सहसा रुषा। विमुच्य सर्वाभरणं परिकीर्य समन्ततः॥७९॥

भूमौ शयाना मलिना मलिनाम्बरधारिणी। प्रोवाच शृणु मे कुड़ो यावद्रामो वनं व्रजेत्॥८०॥

प्राणान्स्त्यक्ष्येऽथ वा वके शियघ्ये तावदेव हि। निश्चयं कुरु कल्याणि कल्याणं ते भविष्यति॥८१॥

इत्युक्तवा प्रययौ कुज्जा गृहं साऽपि तथाऽकरोत्॥८२॥

धीरोऽत्यन्तद्यान्वितोऽपि सगुणाचारान्वितो वाथवा नीतिज्ञो विधिवाददेशिकपरो विद्याविवेकोऽथवा। दुष्टानामतिपापभावितिधयां सङ्गं सदा चेद्भजेत् तद्बुद्या परिभावितो व्रजित तत्साम्यं क्रमेण॥८३॥

अतः सङ्गः परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैव हि। दुःसङ्गी च्यवते स्वार्थाद्यथेयं राजकन्यका॥८४॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥ २॥

॥ तृतीयः सर्गः॥

ततो दशरथो राजा रामाभ्युदयकारणात्। आदिश्य मन्त्रिप्रकृतीः सानन्दो गृहमाविशत्॥१॥ तत्रादृष्ट्वा प्रियां राजा किमेतदिति विह्वलः। या पुरा मन्दिरं तस्याः प्रविष्टे मिय शोभना॥२॥ हसन्ती मामुपायाति सा किं नैवाद्य दृश्यते। इत्यात्मन्येव सञ्चिन्त्य मनसातिविदूयता॥३॥ पप्रच्छ दासीनिकरं कुतो वः स्वामिनी शुभा। नायाति मां यथापूर्वं मित्रया प्रियदर्शना॥४॥ ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विद्महे। कारणं तत्र देव त्वं गच्छ निश्चेतुमहिसि॥५॥ इत्युक्तो भयसन्त्रस्तो राजा तस्याः समीपगः। उपविश्य शनैर्देहं स्पृशन्वे पाणिनाब्रवीत्॥६॥ किं शेषे वसुधापृष्ठे पर्यङ्कादीन् विहाय च। मां त्वं खेद्यसे भीरु यतो मां नावभाषसे॥७॥

अलङ्कारं परित्यज्य भूमौ मलिनवाससा। किमर्थं ब्रुहि सकलं विधास्ये तव वाञ्छितम्॥८॥ को वा तवाहितं कर्ता नारी वा पुरुषोऽपि वा। स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः॥९॥ ब्रूहि देवि यथा प्रीतिस्तद्वश्यं ममाग्रतः। तदिदानीं साधियध्ये सुदुर्लभमपि क्षणात्॥ १०॥ जानासि त्वं मम स्वान्तं प्रियं मां स्ववशे स्थितम। तथाऽपि मां खेदयसे वृथा तव परिश्रमः॥११॥ ब्रुहि किं धनिनं कुर्यां द्रिद्रं ते प्रियङ्करम्। धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम्॥१२॥ ब्रूहि कं वा वधिष्यामि वधार्हों वा विमोक्ष्यते। किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान् दास्यामि ते प्रिये॥ १३॥ मम प्राणात्प्रियतरो रामो राजीवलोचनः। तस्योपरि शपे बृहि त्वद्धितं तत्करोम्यहम्॥१४॥ इति ब्रुवाणं राजानं शपन्तं राघवोपरि। शनैर्विमृज्य नेत्रे सा राजानं प्रत्यभाषत॥१५॥

यदि सत्यप्रतिज्ञोऽसि शपथं कुरुषे यदि। याञ्जां में सफलां कर्तुं शीघ्रमेव त्वमर्हिस॥१६॥ पूर्वं देवासुरे युद्धे मया त्वं परिरक्षितः। तदा वरद्वयं दत्तं त्वया मे तुष्टचेतसा॥१७॥ तद्वयं न्यासभूतं मे स्थापितं त्विय सुव्रत। तत्रैकेन वरेणाशु भरतं मे प्रियं सुतम्॥१८॥ एभिः सम्भृतसम्भारैयौवराज्येऽभिषेचय। अपरेण वरेणाशु रामो गच्छतु दण्डकान्॥ १९॥ मुनिवेषधरः श्रीमान् जटावल्कलभूषणः। चतुर्दश समास्तत्र कन्दमूलफलाशनः॥२०॥ पुनरायातु तस्यान्ते वने वा तिष्ठतु स्वयम्। प्रभाते गच्छतु वनं रामो राजीवलोचनः॥२१॥ यदि किञ्चिद्विलम्बेत प्राणान्स्त्यक्ष्ये तवाग्रतः। भव सत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेव मम प्रियम॥२२॥ श्रुत्वैतद्दारुणं वाक्यं कैकेय्या रोमहर्षणम्। निपपात महीपालो वज्राहत इवाचलः॥२३॥

शनैरुन्मील्य नयने विमृज्य परया भिया। दुःस्वप्नो वा मया दृष्टो ह्यथवा चित्तविभ्रमः॥२४॥

इत्यालोक्य पुरः पत्नीं व्याघ्रीमिव पुरः स्थिताम्। किमिदं भाषसे भद्रे मम प्राणहरं वचः॥२५॥

रामः कमपराधं ते कृतवान् कमलेक्षणः। ममाग्रे राघवगुणान् वर्णयस्यनिशं शुभान्॥२६॥

कौसत्त्यां मां समं पश्यन् शुश्रूषा कुरुते सदा। इति ब्रुवन्ती त्वं पूर्विमिदानीं भाषसेऽन्यथा॥२०॥

राज्यं गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे। अनुगृह्णीष्व मां वामे रामान्नास्ति भयं तव॥२८॥

इत्युक्तवाऽश्रुपरीताक्षः पादयोर्निपपात ह। कैकेयी प्रत्युवाचेदं साऽपि रक्तान्तलोचना॥२९॥

राजेन्द्र किं त्वं भ्रान्तोऽसि उक्तं तद्भाषसेऽन्यथा। मिथ्या करोषि चेत्स्वीयं भाषितं नरको भवेत्॥३०॥ वनं न गच्छेद्यदि रामचन्द्रः प्रभातकालेऽजिनचीरयुक्तः । उद्बन्धनं वा विषभक्षणं वा कृत्वा मरिष्ये पुरतस्तवाहम्॥३१॥

सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीह लोके विडम्बसे सर्वसभान्तरेषु। रामोपरि त्वं शपथं च कृत्वा मिथ्याप्रतिज्ञो नरकं प्रयाहि॥३२॥

इत्युक्तः प्रियया दीनो मग्नो दुःखार्णवे नृपः। मूर्च्छितः पतितो भूमौ विसंज्ञो मृतको यथा॥३३॥

एवं रात्रिर्गता तस्य दुःखात्संवत्सरोपमा। अरुणोदयकाले तु वन्दिनो गायका जगुः॥३४॥

निवारियत्वा तान् सर्वान् कैकेयी रोषमास्थिता। ततः प्रभातसमये मध्यकक्षमुपस्थिताः॥३५॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषयः कन्यकास्तथा। छत्रं च चामरं दिव्यं गजो वाजी तथैव च॥३६॥

अन्याश्च वारमुख्या याः पौरजानपदास्तथा। वसिष्ठेन यथाज्ञप्तं तत्सर्वं तत्र संस्थितम्॥३७॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रात्रौ निद्रां न लेभिरे। कदा द्रक्ष्यामहे रामं पीतकौशेयवाससम्॥३८॥ सर्वाभरणसम्पन्नं किरीटकटकोज्ज्वलम्। कौस्तुभाभरणं इयामं कन्दर्पशतसुन्दरम्॥३९॥ अभिषिक्तं समायातं गजारूढं स्मिताननम्। श्वेतच्छत्रधरं तत्र लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्॥४०॥ रामं कदा वा द्रक्ष्यामः प्रभातं वा कदा भवेत्। इत्युत्सुकिधयः सर्वे बभूवः पुरवासिनः॥४१॥ नेदानीमुत्थितो राजा किमर्थं चेति चिन्तयन्। सुमन्त्रः शनकैः प्रायाद्यत्र राजाऽवतिष्ठते॥४२॥ वर्धयन् जयशब्देन प्रणमन् शिरसा नृपम्। अतिखिन्नं नृपं दृष्ट्वा कैकेयीं समपृच्छत॥४३॥ देवि कैकेयि वर्धस्व किं राजा दृश्यतेऽन्यथा। तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान्॥४४॥

राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन्। प्रजागरेण वै राजा ह्यस्वस्थ इव लक्ष्यते। राममानय शीघ्रं त्वं राजा द्रष्ट्रमिहेच्छति॥४५॥

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि। तच्छुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत्॥४६॥

सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्। इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा सुमन्त्रो राममन्दिरम्॥४७॥

अवारितः प्रविष्टोऽयं त्वरितं राममब्रवीत्। शीघ्रमागच्छ भद्रं ते राम राजीवलोचन॥४८॥

पितुर्गेहं मया सार्धं राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति। इत्युक्तो रथमारुह्य सम्ब्रमात्त्वरितो ययो॥४९॥

रामः सारथिना सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः। मध्यकक्षे वसिष्ठादीन् पश्यन्नेव त्वरान्वितः॥५०॥

पितुः समीपं सङ्गम्य ननाम चरणौ पितुः। राममालिङ्गितुं राजा समुत्थाय ससम्भ्रमः॥५१॥

बाह्र प्रसार्य रामेति दुःखान्मध्ये पपात ह। हा हेति रामस्तं शीघ्रमालिङ्गाङ्के न्यवेशयत्॥५२॥ राजानं मूर्च्छितं दृष्ट्वा चुकुद्युः सर्वयोषितः। किमर्थं रोदनमिति वसिष्ठोऽपि समाविशत्॥५३॥ रामः पप्रच्छ किमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम्। एवं पुच्छति रामे सा कैकेयी राममब्रवीत्॥५४॥ त्वमेव कारणं ह्यत्र राज्ञो दुःखोपशान्तये। किञ्चित्कार्यं त्वया राम कर्तव्यं नृपतेर्हितम्॥५५॥ कुरु सत्यप्रतिज्ञस्त्वं राजानं सत्यवादिनम्। राज्ञा वरद्वयं दत्तं मम सन्तुष्टचेतसा॥५६॥ त्वदधीनं तु तत्सर्वं वक्तुं त्वां लज्जते नृपः। सत्यपादोन सम्बद्धं पितरं त्रातुमर्हसि॥५७॥ पुत्रशब्देन चैतिद्धि नरकात्त्रायते पिता। रामस्तयोदितं श्रुत्वा शूलेनाभिहतो यथा॥५८॥ व्यथितः कैकेयीं प्राह किं मामेवं प्रभाषसे। पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्बणम्॥५९॥

सीतां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम्। अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः॥६०॥

उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः। उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते॥६१॥

अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम। सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विनीभिभाषते॥६२॥ इति रामप्रतिज्ञां सा श्रुत्वा वक्तुं प्रचक्रमे। राम त्वद्भिषेकार्थं सम्भाराः सम्भृताश्च ये॥६३॥

तैरेव भरतोऽवश्यमभिषेच्यः प्रियो मम। अपरेण वरेणाशु चीरवासा जटाधरः॥६४॥

वनं प्रयाहि शीघ्रं त्वमद्यैव पितुराज्ञया। चतुर्दश समास्तत्र वस मुन्यन्नभोजनः॥६५॥

एतदेव पितुस्तेऽद्य कार्यं त्वं कर्तुमर्हसि। राजा तु लज्जते वक्तुं त्वामेवं रघुनन्दन॥६६॥

श्रीराम उवाच

भरतस्यैव राज्यं स्यादृहं गच्छामि दण्डकान्। किन्तु राजा न वक्तीह मां न जानेऽत्र कारणम्॥६७॥

श्रुत्वैतद्रामवचनं दृष्ट्वा रामं पुरः स्थितम्। प्राह राजा द्शरथो दुःखितो दुःखितं वचः॥६८॥ स्त्रीजितं भ्रान्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम्। निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पापं न तद्भवेत्॥६९॥ एवं चेदनृतं नैव मां स्पृशेद्रघुनन्द्न। इत्युत्तवा दुःखसन्तप्तो विललाप नुपस्तदा॥७०॥ हा राम हा जगन्नाथ हा मम प्राणवल्लभ। मां विसृज्य कथं घोरं विपिनं गन्तुमर्हसि॥७१॥ इति रामं समालिञ्च मुक्तकण्ठो रुरोद् ह। विमुज्य नयने रामः पितुः सजलपाणिना॥७२॥ आश्वासयामास नृपं शनैः स नयकोविदः। किमत्र दुःखेन विभो राज्यं शासतु मेऽनुजः॥७३॥ अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्य पुनर्यास्यामि ते पुरम्। राज्यात्कोटिगुणं सौख्यं मम राजन् वने सतः॥७४॥ त्वत्सत्यपालनं देव कार्यं चापि भविष्यति। कैकेय्याश्च प्रियो राजन् वनवासो महागुणः॥७५॥

इदानीं गन्तुमिच्छामि व्येतु मातुश्च हुज्ज्वरः। सम्भारश्चोपहीयन्तामभिषेकार्थमाहृताः॥७६॥

मातरं समनुश्वास्य अनुनीय च जानकीम्। आगत्य पादौ वन्दित्वा तव यास्ये सुखं वनम्॥७७॥

इत्युक्तवा तु परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ। कौसल्याऽपि हरेः पूजां कुरुते रामकारणात्॥७८॥

होमं च कारयामास ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्। ध्यायते विष्णुमेकाग्रमनसा मौनमास्थिता॥७९॥

अन्तःस्थमेकं घनचित्प्रकाशम् निरस्तसर्वातिशयस्वरूपम् । विष्णुं सदानन्दमयं हृद्बे सा भावयन्ती न ददर्श रामम्॥८०॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे तृतीयः सर्गः॥ ३॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

ततः सुमित्रा दृष्ट्वेनं रामं राज्ञीं ससम्भ्रमा। कौसल्यां बोधयामास रामोऽयं समुपस्थितः॥१॥ श्रत्वैव रामनामेषा बहिर्दृष्टिप्रवाहिता। रामं दृष्ट्वा विशालाक्षमालिङ्याङ्के न्यवेशयत्॥२॥ मूर्ध्यवघ्राय पस्पर्श गात्रं नीलोत्पलच्छवि। भुङ्ख पुत्रेति च प्राह मिष्टमन्नं क्षुधार्दितः॥३॥ रामः प्राह न मे मातर्भोजनावसरः कुतः। दण्डकागमने शीघ्रं मम कालोऽद्य निश्चितः॥४॥ कैकेयीवरदानेन सत्यसन्धः पिता मम। भरताय ददौ राज्यं ममाप्यारण्यमुत्तमम्॥५॥ चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक्। आगमिष्ये पुनः शीघ्रं न चिन्तां कर्तुमर्हसि॥६॥ तच्छुत्वा सहसोद्विया मूर्च्छिता पुनरुत्थिता। आह रामं सुदुःखार्ता दुःखसागरसम्प्रता॥७॥

यदि राम वनं सत्यं यासि चेन्नय मामपि। त्वद्विहीना क्षणार्धं वा जीवितं धारये कथम्॥८॥ यथा गौर्बालकं वत्सं त्यक्तवा तिष्ठेन्न कुत्रचित्। तथैव त्वां न शकोमि त्यक्तुं प्राणात्प्रियं सुतम्॥९॥ भरताय प्रसन्नश्चेद्राज्यं राजा प्रयच्छतु। किमर्थं वनवासाय त्वामाज्ञापयति प्रियम्॥ १०॥ कैकेय्या वरदो राजा सर्वस्वं वा प्रयच्छत्। त्वया किमपराद्धं हि कैकेय्या वा नृपस्य वा॥११॥ पिता गुरुर्यथा राम तवाहमधिका ततः। पित्राऽऽज्ञप्तो वनं गन्तुं वारयेयमहं सुतम्॥१२॥ यदि गच्छिस मद्वाक्यमुल्लङ्ख नृपवाक्यतः। तदा प्राणान् परित्यज्य गच्छामि यमसादनम्॥१३॥ लक्ष्मणोऽपि ततः श्रुत्वा कौसल्यावचनं रुषा। उवाच राघवं वीक्ष्य दहन्निव जगत्त्रयम्॥१४॥ उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम्। बद्धा निहन्मि भरतं तद्बन्धून्मातुलानपि॥१५॥

अद्य पश्यन्तु मे शौर्यं लोकान् प्रदहतः पुरा। राम त्वमभिषेकाय कुरु यत्नमरिन्दम॥१६॥ धनुष्पाणिरहं तत्र निहन्यां विघ्नकारिणः। इति ब्रुवन्तं सौमित्रिमालिज्ञ्च रघुनन्दनः॥१७॥ शूरोऽसि रघुशार्तूल ममात्यन्तहिते रतः।

यदिदं दृश्यते सर्वं राज्यं देहादिकं च यत्। यदि सत्यं भवेत्तत्र आयासः सफलश्च ते॥१९॥ भोगा मेघवितानस्थिवद्युल्लेखेव चञ्चलाः। आयुरप्यग्निसन्तप्तलोहस्थजलबिन्दुवत् ॥२०॥

जानामि सर्वं ते सत्यं किन्तु तत्समयो न हि॥१८॥

यथा व्यालगलस्थोऽपि भेको दंशानपेक्षते। तथा कालाहिना ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान्॥२१॥

> करोति दुःखेन हि कर्मतन्त्रम् शरीरभोगार्थमहर्निशं नरः। देहस्तु भिन्नः पुरुषात्समीक्ष्यते को वात्र भोगः पुरुषेण भुज्यते॥२२॥

पितृमातृसुतभ्रातृदारबन्ध्वादिसङ्गमः । प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः॥२३॥

छायेव लक्ष्मीश्चपला प्रतीता तारुण्यमम्बूर्मिवद्ध्रुवं च। स्वप्नोपमं स्त्रीसुखमायुरल्पम् तथाऽपि जन्तोरभिमान एषः॥२४॥

संसृतिः स्वप्नसदृशी सदा रोगादिसङ्कला। गन्धर्वनगरप्रख्या मूढस्तामनुवर्तते॥२५॥

आयुष्यं क्षीयते यस्मादादित्यस्य गतागतैः। दृष्ट्वाऽन्येषां जरामृत्यू कथञ्चिन्नेव बुध्यते॥२६॥

स एव दिवसः सैव रात्रिरित्येव मृढधीः। भोगाननुपतत्येव कालवेगं न पश्यति॥२७॥ प्रतिक्षणं क्षरत्येतदायुरामघटाम्बुवत्। सपत्ना इव रोगौघाः शरीरं प्रहरन्त्यहो॥२८॥ जरा व्याघ्रीव पुरतस्तर्जयन्त्यवतिष्ठते। मृत्युः सहैव यात्येष समयं सम्प्रतीक्षते॥२९॥ देहेऽहम्भावमापन्नो राजाहं लोकविश्रुतः। इत्यस्मिन्मनुते जन्तुः कृमिविङ्गस्मसंज्ञिते॥३०॥

त्वगस्थिमान्सविण्मूत्ररेतोरक्तादिसंयुतः । विकारी परिणामी च देह आत्मा कथं वद॥३१॥

यमास्थाय भवान्छोकं दग्धुमिच्छति लक्ष्मण। देहाभिमानिनः सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति हि॥३२॥

देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता। नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते॥३३॥

अविद्या संसृतेर्हेतुर्विद्या तस्या निवर्तिका। तस्माद्यतः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः। कामकोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदन॥३४॥

तत्रापि क्रोध एवालं मोक्षविघ्नाय सर्वदा। येनाविष्टः पुमान् हन्ति पितृभ्रातृसुहृत्सखीन्॥३५॥

कोधमूलो मनस्तापः कोधः संसारबन्धनम्। धर्मक्षयकरः कोधस्तस्मात्कोधं परित्यज॥३६॥

क्रोध एष महान् रात्रुस्तुष्णा वैतरणी नदी। सन्तोषो नन्दनवनं शान्तिरेव हि कामधुक्॥३७॥ तस्माच्छान्तिं भजस्वाद्य शत्रुरेवं भवेन्न ते। देहेन्द्रियमनःप्राणबुद्यादिभ्यो विलक्षणः॥३८॥ आत्मा शुद्धः स्वयञ्चोतिरविकारी निराकृतिः। यावदेहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्वं नात्मनो विदुः॥३९॥ तावत्संसारदःखोघैः पीड्यन्ते मृत्युसंयुताः। तस्मात्त्वं सर्वदा भिन्नमात्मानं हृदि भावय॥४०॥ बुद्यादिभ्यो बहिः सर्वमनुवर्तस्व मा खिदः। भुञ्जन् प्रारब्धमखिलं सुखं वा दुःखमेव वा॥४१॥ प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वन्नपि न लिप्यसे। बाह्ये सर्वत्र कर्तृत्वमावहन्नपि राघव॥४२॥ अन्तःशुद्धस्वभावस्त्वं लिप्यसे न च कर्मभिः। एतन्मयोदितं कृत्स्रं हृदि भावय सर्वदा॥४३॥ संसारदः खैरिक्ठिर्बाध्यसे न कदाचन। त्वमप्यम्ब ममाऽऽदिष्टं हृदि भावय नित्यदा॥४४॥

समागमं प्रतीक्षस्व न दुःखैः पीड्यसे चिरम्। न सदैकत्र संवासः कर्ममार्गानुवर्तिनाम्॥४५॥ यथा प्रवाहपतितप्लवानां सरितां तथा। चतुर्दशसमा सङ्खा क्षणार्द्धमिव जायते॥४६॥ अनुमन्यस्व मामम्ब दुःखं सन्त्यज्य दूरतः। एवं चेत्सुखसंवासो भविष्यति वने मम॥४७॥ इत्युत्तवा दण्डवन्मातुः पादयोरपतचिरम्। उत्थाप्याङ्के समावेश्य आशीर्भिरभ्यनन्द्यत्॥४८॥ सर्वे देवाः सगन्धर्वा ब्रह्मविष्णुशिवादयः। रक्षन्तु त्वां सदा यान्तं तिष्ठन्तं निद्रया युतम्॥४९॥ इति प्रस्थापयामास समालिङ्य पुनः पुनः। लक्ष्मणोऽपि तदा रामं नत्वा हर्षाश्रुगद्भदः॥५०॥ आह राम ममान्तःस्थः संशयोऽयं त्वया हृतः। यास्यामि पृष्ठतो राम सेवां कर्तुं तदादिश॥५१॥ अनुगृह्णीष्व मां राम नोचेत्प्राणान्स्त्यजाम्यहम्। तथेति राघवोऽप्याह लक्ष्मणं याहि मा चिरम्॥५२॥

प्रतस्थे तां समाधातुं गतः सीतापतिर्विभुः। आगतं पतिमालोक्य सीता सुस्मितभाषिणी॥५३॥ स्वर्णपात्रस्थसिललैः पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः। पप्रच्छ पतिमालोक्य देव किं सेनया विना॥५४॥ आगतोऽसि गतः कुत्र श्वेतच्छत्रं च ते कुतः। वादित्राणि न वाद्यन्ते किरीटादिविवर्जितः॥५५॥ सामन्तराजसहितः सम्भ्रमान्नागतोऽसि किम्। इति स्म सीतया पृष्टो रामः सिस्मितमब्रवीत्॥५६॥ राज्ञा मे दण्डकारण्ये राज्यं दत्तं शुभेऽखिलम्। अतस्तत्पालनार्थाय शीघ्रं यास्यामि भामिनि॥५७॥ अद्यैव यास्यामि वनं त्वं तु श्वश्रूसमीपगा। शुश्रूषां कुरु मे मातुर्न मिथ्यावादिनो वयम्॥५८॥ इति ब्रुवन्तं श्रीरामं सीता भीताब्रवीद्वचः। किमर्थं वनराज्यं ते पित्रा दत्तं महात्मना॥५९॥ तामाह रामः कैकेय्यै राजा प्रीतो वरं ददौ। भरताय ददौ राज्यं वनवासं ममानघे॥६०॥

चतुर्दश समास्तत्र वासो मे किल याचितः। तया देव्या ददौ राजा सत्यवादी दयापरः॥६१॥ अतः शीघ्रं गमिष्यामि मा विघ्नं कुरु भामिनि। श्रुत्वा तद्रामवचनं जानकी प्रीतिसंयुता॥६२॥ अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात्त्वमेष्यसि। इत्याह मां विना गन्तुं तव राघव नोचितम्॥६३॥ तामाह राघवः प्रीतः स्वप्रियां प्रियवादिनीम्। कथं वनं त्वां नेष्येऽहं बहुव्याघ्रमृगाकुलम्॥६४॥ राक्षसा घोररूपाश्च सन्ति मानुषभोजिनः। सिंहव्याघ्रवराहाश्च सञ्चरन्ति समन्ततः॥६५॥ कद्वस्रफलमूलानि भोजनार्थं सुमध्यमे। अपूपान्नव्यञ्जनानि विद्यन्ते न कदाचन॥६६॥ काले काले फलं वाऽपि विद्यते कुत्र सुन्दरि। मार्गो न दृश्यते कापि शर्कराकण्टकान्वितः॥६७॥ गुहागहरसम्बाधं झिल्लीदंशादिभिर्युतम्। एवं बहुविधं दोषं वनं दण्डकसंज्ञितम्॥६८॥

पादचारेण गन्तव्यं शीतवातातपादिमत। राक्षसादीन् वने दृष्ट्वा जीवितं हास्यसेऽचिरात्॥६९॥ तस्माद्भद्रे गृहे तिष्ठ शीघ्रं द्रक्ष्यसि मां पुनः। रामस्य वचनं श्रुत्वा सीता दुःखसमन्विता॥७०॥ प्रत्युवाच स्फुरद्वऋा किञ्चित्कोपसमन्विता। कथं मामिच्छसे त्यक्तं धर्मपत्नीं पतिव्रताम्॥७१॥ त्वदनन्यामदोषां मां धर्मज्ञोऽसि दयापरः। त्वत्समीपे स्थितां राम को वा मां धर्षयेद्वने॥७२॥ फलमूलादिकं यद्यत्तव भुक्तावशेषितम्। तदेवामृततुल्यं मे तेन तुष्टा रमाम्यहम्॥७३॥ त्वया सह चरन्त्या में कुशाः काशाश्च कण्टकाः। पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यन्ति न संशयः॥७४॥ अहं त्वां क्रेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी। बाल्ये मां वीक्ष्य कश्चिन्मां ज्योतिःशास्त्रविशारदः॥७५॥ प्राह ते विपिने वासः पत्या सह भविष्यति। सत्यवादी द्विजो भूयाद्गमिष्यामि त्वया सह॥७६॥

अन्यत्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मां नय काननम्। रामायणानि बहुशः श्रुतानि बहुभिर्द्विजैः॥७७॥ सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रचिद्वद्। अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी॥७८॥ यदि गच्छिस मां त्यक्त्वा प्राणान्स्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः। इति तं निश्चयं ज्ञात्वा सीताया रघुनन्दनः॥७९॥

अब्रवीदेवि गच्छ त्वं वनं शीघ्रं मया सह। अरुन्धत्यै प्रयच्छाशु हारानाभरणानि च॥८०॥

ब्राह्मणेभ्यो धनं सर्वं दत्त्वा गच्छामहे वनम्। इत्युक्तवा लक्ष्मणेनाशु द्विजानाहूय भक्तितः॥८१॥

ददौ गवां वृन्दशतं धनानि वस्त्राणि दिव्यानि विभूषणानि। कुटुम्बवद्धः श्रुतशीलवद्धो मुदा द्विजेभ्यो रघुवंशकेतुः॥८२॥ अरुन्धत्यै ददौ सीता मुख्यान्याभरणानि च। रामो मातुः सेवकेभ्यो ददौ धनमनेकधा॥८३॥ स्वकान्तःपुरवासिभ्यः सेवकेभ्यस्तथैव च। पौरजानपदेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः॥८४॥

लक्ष्मणोऽपि सुमित्रां तु कौसल्यायै समर्पयत्। धनुष्पाणिः समागत्य रामस्याग्रे व्यवस्थितः॥८५॥

रामः सीता लक्ष्मणश्च जग्मुः सर्वे नृपालयम्॥८६॥

श्रीरामः सह सीतया नृपपथे गच्छन् शनैः सानुजः पौरान् जानपदान् कुतूहलदृशः सानन्दमुद्वीक्षयन् श्यामः कामसहस्रसुन्दरवपुः कान्त्या दिशो भासयन् पादन्यासपवित्रिताऽखिलजगत् प्रापालयं तिपतुः

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥ ४॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

आयान्तं नागरा दृष्ट्वा मार्गे रामं सजानकीम्। लक्ष्मणेन समं वीक्ष्य ऊचुः सर्वे परस्परम्॥१॥

कैकेय्या वरदानादि श्रुत्वा दुःखसमावृताः। बत राजा दशरथः सत्यसन्धं प्रियं सुतम्॥२॥ स्त्रीहेतोरत्यजत्कामी तस्य सत्यवता कृतः। कैकेयी वा कथं दुष्टा रामं सत्यं प्रियङ्करम्॥३॥ विवासयामास कथं क्रूरकर्माऽतिमृढधीः। हे जना नात्र वस्तव्यं गच्छामोऽद्यैव काननम्॥४॥ यत्र रामः सभार्यश्च सानुजो गन्तुमिच्छति। पश्यन्तु जानकीं सर्वे पादचारेण गच्छतीम्॥५॥ पुम्भिः कदाचिदृष्ट्वा वा जानकी लोकसुन्दरी। साऽपि पादेन गच्छन्ती जनसङ्घेष्वनावृता॥६॥ रामोऽपि पादचारेण गजाश्वादिविवर्जितः। गच्छति द्रक्ष्यथ विभुं सर्वलोकैकसुन्दरम्॥७॥ राक्षसी कैकेयीनाम्नी जाता सर्वविनाशिनी। रामस्यापि भवेदुःखं सीतायाः पादयानतः॥८॥ बलवान् विधिरेवात्र पुम्प्रयत्नो हि दुर्बलः। इति दुःखाकुले वृन्दे साधूनां मुनिपुङ्गवः॥९॥

अब्रवीद्वामदेवोऽथ साधूनां सङ्घमध्यगः। मानुशोचथ रामं वा सीतां वा विच्म तत्त्वतः॥१०॥ एष रमः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः। एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता॥११॥ असौ शेषस्तमन्वेति लक्ष्मणाख्यश्च साम्प्रतम्। मायागुणैर्युक्तस्तत्तदाकारवानिव॥१२॥ एष एव रजोयुक्तो ब्रह्माभूद्विश्वभावनः। सत्त्वाविष्टस्तथा विष्णुस्त्रिजगत्प्रतिपालकः॥१३॥ एष रुद्रस्तामसोऽन्ते जगत्प्रलयकारणम्। एष मत्स्यः पुरा भूत्वा भक्तं वैवस्वतं मनुम्॥१४॥ नाव्यारोप्य लयस्यान्ते पालयामास राघवः। समुद्रमथने पूर्वं मन्दरे सुतलं गते॥१५॥ अधारयत्स्वपृष्ठेऽद्रिं कूर्मरूपी रघूत्तमः। मही रसातलं याता प्रलये सूकरोऽभवत्॥१६॥ तोलयामास दंष्ट्राग्रे तां क्षोणीं रघुनन्दनः। नारसिंहं वपुः कृत्वा प्रह्लाद्वरदः पुरा॥१७॥

त्रेलोक्यकण्टकं रक्षः पाटयामास तन्नखेः। पुत्रराज्यं हृतं दृष्ट्वा ह्यदित्या याचितः पुरा॥१८॥ वामनत्वमुपागम्य याञ्जया चाहरत्पुनः। दुष्टक्षत्रियभूभारनिवृत्त्यै भार्गवोऽभवत्॥१९॥ स एव जगतां नाथ इदानीं रामतां गतः। रावणादीनि रक्षांसि कोटिशो निहनिष्यति॥२०॥ मानुषेणैव मरणं तस्य दृष्टं दुरात्मनः। राज्ञा दुशरथेनापि तपसाराधितो हरिः॥२१॥ पुत्रत्वाकाङ्क्षया विष्णोस्तदा पुत्रोऽभवद्धरिः। स एव विष्णुः श्रीरामो रावणादिवधाय हि॥२२॥ गन्ताद्यैव वनं रामो लक्ष्मणेन सहायवान्। एषा सीता हरेर्माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी॥२३॥ राजा वा कैकेयी वाऽपि नात्र कारणमण्वपि। पूर्वेद्यूर्नारदः प्राह भूभारहरणाय च॥२४॥ रामोऽप्याह स्वयं साक्षाच्छ्वो गमिष्याम्यहं वनम्। अतो रामं समुद्दिश्य चिन्तां त्यजत बालिशाः॥२५॥ रामरामेति ये नित्यं जपन्ति मनुजा भुवि। तेषां मृत्युभयादीनि न भवन्ति कदाचन॥२६॥ का पुनस्तस्य रामस्य दुःखशङ्का महात्मनः। रामनाम्नेव मुक्तिः स्यात्कलौ नान्येन केनचित्॥२७॥

मायामानुषरूपेण विडम्बयति लोककृत्। भक्तानां भजनार्थाय रावणस्य वधाय च॥२८॥ राज्ञश्चाभीष्टसिष्धर्थं मानुषं वपुराश्रितः। इत्युक्तवा विररामाथ वामदेवो माहामुनिः॥२९॥

श्रुत्वा तेऽपि द्विजाः सर्वे रामं ज्ञात्वा हरि विभुम्। जहुर्हृत्संशयग्रन्थिं राममेवान्वचिन्तयन्॥३०॥

य इदं चिन्तयेन्नित्यं रहस्यं रामसीतयोः। तस्य रामे दृढा भक्तिभवद्विज्ञानपूर्विका॥३१॥

रहस्यं गोपनीयं वो यूयं वै राघवप्रियाः। इत्युक्तवा प्रययौ विप्रस्तेऽपि रामं परं विदुः॥३२॥

ततो रामः समाविश्य पितृगेहमवारितः। सानुजः सीतया गत्वा कैकेयीमिद्मब्रवीत्॥३३॥ आगताः स्मो वयं मातस्त्रयस्ते सम्मतं वनम्। गन्तुं कृतिधयः शीघ्रमाज्ञापयतु नः पिता॥३४॥ इत्युक्ता सहसोत्थाय चीराणि प्रददौ स्वयम्। रामाय लक्ष्मणायाथ सीतायै च पृथक् पृथक्॥ ३५॥ रामस्तु वस्त्राण्युत्सुज्य वन्यचीराणि पर्यधात्। लक्ष्मणोऽपि तथा चके सीता तन्न विजानती॥३६॥ हस्ते गृहीत्वा रामस्य लज्जया मुखमैक्षत। रामो गृहीत्वा तचीरमंशुके पर्यवेष्टयत्॥३७॥ तदु दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे राजदाराः समन्ततः। वसिष्ठस्तु तदाकण्यं रुदितं भर्त्सयन् रुषा॥३८॥ कैकेयीं प्राह दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृतः। वनवासाय दुष्टे त्वं सीतायै किं प्रयच्छिस॥ ३९॥ यदि रामं समन्वेति सीता भक्त्या पतिव्रता। दिव्याम्बरधरा नित्यं सर्वाभरणभूषिता॥४०॥ रमयत्वनिशं रामं वनदःखनिवारिणी। राजा दशरथोऽप्याह सुमन्त्रं रथमानय॥४१॥

गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः। रथमारुह्य इत्युक्तवा राममालोक्य सीतां चैव सलक्ष्मणम्॥४२॥ दुःखान्निपतितो भूमौ रुरोदाश्रुपरिष्ठुतः। आरुरोह रथं सीता शीघ्रं रामस्य पश्यतः॥४३॥ रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरं रथमारुहत्। लक्ष्मणः खङ्गयुगलं धनुस्तूणीयुगं तथा॥४४॥ गृहीत्वा रथमारुद्य नोदयामास सारथिम्। तिष्ठ तिष्ठ सुमन्त्रेति राजा दशरथोऽब्रवीत्॥४५॥ गच्छ गच्छेति रामेण नोदितोऽचोद्यद्रथम्। रामे दूरं गते राजा मूर्च्छितः प्रापतद्भवि॥४६॥ पौरास्तु बालवृद्धाश्च वृद्धा ब्राह्मणसत्तमाः। तिष्ठ तिष्ठेति रामेति कोशन्तो रथमन्वयुः॥४७॥ राजा रुदित्वा सुचिरं मां नयन्तु गृहं प्रति। कौसल्याया राममातुरित्याह परिचारकान्॥४८॥ किञ्चित्कालं भवेत्तत्र जीवनं दुःखितस्य मे। अत ऊर्ध्वं न जीवामि चिरं रामं विना कृतः॥४९॥

ततो गृहं प्रविश्यैव कौसल्यायाः पपात ह। मूर्च्छितश्च चिराद्भुद्धा तूष्णीमेवावतस्थिवान्॥५०॥ रामस्तु तमसातीरं गत्वा तत्रावसत्सुखी। जलं प्रारय निराहारो वृक्षमूलेऽस्वपद्विभुः॥५१॥ सीतया सह धर्मात्मा धनुष्पाणिस्तु लक्ष्मणः। पालयामास धर्मज्ञः सुमन्त्रेण समन्वितः॥५२॥ पौराः सर्वे समागत्य स्थितास्तस्याविदूरतः। शक्ता रामं पुरं नेतुं नो चेद्गच्छामहे वनम्॥५३॥ इति निश्चयमाज्ञाय तेषां रामोऽतिविस्मितः। नाहं गच्छामि नगरमेते वै क्लेशभागिनः॥५४॥ भविष्यन्तीति निश्चित्य सुमन्त्रमिद्मबवीत्। इदानीमेव गच्छामः सुमन्त्र रथमानय॥५५॥ इत्याज्ञप्तः सुमन्त्रोऽपि रथं वाहैरयोजयत्। आरुह्य रामः सीता च लक्ष्मणोऽपि ययुर्द्रतम्॥५६॥ अयोध्याभिमुखं गत्वा किञ्चिद्दरं ततो ययुः। तेऽपि राममदृष्ट्वैव प्रातरुत्थाय दुःखिताः॥५७॥

रथनेमिगतं मार्गं पश्यन्तस्ते पुरं ययुः। हृदि रामं ससीतं ते ध्यायन्तस्तस्थुरन्वहम्॥५८॥ सुमन्त्रोऽपि रथं शीघ्रं नोदयामास साद्रम्। स्फीतान् जनपदान् पश्यन् रामः सीतासमन्वितः॥५९॥ गङ्गातीरं समागच्छच्छङ्गवेराविदूरतः। गङ्गां दृष्ट्वा नमस्कृत्य स्नात्वा सानन्द्मानसः॥६०॥ शिंशपावृक्षमूले स निषसाद रघूत्तमः। ततो गुहो जनैः श्रुत्वा रामागममहोत्सवम्॥६१॥ सखायं स्वामिनं द्रष्टुं हर्षात्तूर्णं समापतत्। फलानि मधुपुष्पादि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः॥६२॥ रामस्याग्रे विनिक्षिप्य दण्डवत्प्रापतद्भुवि। गृहमुत्थाप्य तं तूर्णं राघवः परिषस्वजे॥६३॥ सम्पृष्टकुशलो रामं गुहः प्राञ्जलिरब्रवीत्। धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन॥६४॥ बभूव परमानन्दः स्पृष्ट्वा तेऽङ्गं रघूत्तम। नैषादराज्यमेतत्ते किङ्करस्य रघूत्तम॥६५॥

त्वद्धीनं वसन्नत्र पालयास्मान् रघूद्वह। आगच्छ यामो नगरं पावनं कुरु मे गृहम्॥६६॥

गृहाण फलमूलानि त्वदर्थं सञ्चितानि मे। अनुगृह्णीष्व भगवन् दासस्तेऽहं सुरोत्तम॥६७॥

रामस्तमाह सुप्रीतो वचनं शृणु मे सखे। न वेक्ष्यामि गृहं ग्रामं नव वर्षाणि पञ्च च॥६८॥

दत्तमन्येन नो भुञ्जे फलमूलादि किञ्चन। राज्यं ममैतत्ते सर्वं त्वं सखा मेऽतिवल्लभः॥६९॥

वटक्षीरं समानाय्य जटामुकुटमाद्रात्। बबन्ध लक्ष्मणेनाथ सहितो रघुनन्दनः॥७०॥

जलमात्रं तु सम्प्राश्य सीतया सह राघवः। आस्तृतं कुशपर्णाद्यैः शयनं लक्ष्मणेन हि॥७१॥

उवास तत्र नगरप्रासादाग्रे यथा पुरा। सुष्वाप तत्र वैदेह्या पर्यङ्क इव संस्कृते॥७२॥ ततोऽविदूरे परिगृह्य चापम् सबाणतूणीरधनुः स लक्ष्मणः। ररक्ष रामं परितो विपश्यनः गुहेन सार्धं सशरासनेन॥७३॥ ॥इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥५॥

॥षष्ठः सर्गः॥

सुप्तं रामं समालोक्य गृहः सोऽश्रुपरिष्ठुतः। लक्ष्मणं प्राह विनयाद् भ्रातः पश्यिस राघवम्॥१॥ शयानं कुशपत्रौघसंस्तरे सीतया सह। यः शेते स्वर्णपर्यङ्के स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे॥२॥ कैकेयी रामदुःखस्य कारणं विधिना कृता। मन्थराबुद्धिमास्थाय कैकेयी पापमाचरत्॥३॥ तच्छुत्वा लक्ष्मणः प्राह सखे शृणु वचो मम। कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य च॥४॥ स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः॥५॥ सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा। अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥६॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनद्वेष्यमध्यस्थबान्धवाः। स्वयमेवाचरन् कर्म तथा तत्र विभाव्यते॥७॥ सुखं वा यदि वा दुःखं स्वकर्मवशगो नरः। यद्यद्यथागतं तत्तदु भुक्तवा स्वस्थमना भवेत्॥८॥

न मे भोगागमे वाञ्छा न मे भोगविवर्जने। आगच्छत्वथ मागच्छत्वभोगवशगो भवेत्॥९॥ स्वस्मिन् देशे च काले च यस्माद्वा येन केन वा।

कृतं शुभाशुभं कर्म भोज्यं तत्तत्र नान्यथा॥१०॥

अलं हर्षविषादाभ्यां शुभाशुभफलोदये। विधात्रा विहितं यद्यत्तदलङ्कां सुरासुरैः॥११॥ सर्वदा सुखदुःखाभ्यां नरः प्रत्यवरुध्यते। शरीरं पुण्यपापाभ्यामृत्पन्नं सुखदुःखवत्॥१२॥

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्। द्वयमेतिद्ध जन्तूनामलङ्घां दिनरात्रिवत्॥१३॥ सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम्। द्वयमन्योन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपङ्कवत्॥१४॥ तस्माद्धैर्येण विद्वांस इष्टानिष्टोपपत्तिषु। न हृष्यन्ति न मुह्यन्ति समं मायेति भावनात्॥१५॥ गुहलक्ष्मणयोरेवं भाषतोर्विमलं नभः। बभूव रामः सलिलं स्पृष्ट्वा प्रातः समाहितः॥१६॥ उवाच शीघ्रं सुदृढं नावमानय मे सखे। श्रुत्वा रामस्य वचनं निषादाधिपतिर्गृहः॥ १७॥ स्वयमेव दृढं नावमानिनाय सुलक्षणाम्। स्वामिन्नारुह्यतां नौकां सीतया लक्ष्मणेन च॥१८॥ वाहये ज्ञातिभिः सार्धमहमेव समाहितः। तथेति राघवः सीतामारोप्य शुभलक्षणाम्॥१९॥ गुहस्य हस्तावालम्ब्य स्वयं चारोहदच्युतः। आयुधादीन् समारोप्य लक्ष्मणोऽप्यारुरोह च॥२०॥

गुहस्तान् वाहयामास ज्ञातिभिः सहितः स्वयम्। गङ्गामध्ये गतां गङ्गां प्रार्थयामास जानकी॥२१॥

देवि गङ्गे नमस्तुभ्यं निवृत्ता वनवासतः। रामेण सहिताहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये॥२२॥

सुरामान्सोपहारैश्च नानाबलिभिरादृता। इत्युक्त्वा परकूलं तौ शनैरुत्तीर्य जग्मतुः॥२३॥

गुहोऽपि राघवं प्राह गमिष्यामि त्वया सह। अनुज्ञां देहि राजेन्द्र नो चेत्प्राणान्स्त्यजाम्यहम्॥२४॥

श्रुत्वा नैषादिवचनं श्रीरामस्तमथाब्रवीत्। चतुर्दश समाः स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम्॥२५॥

आयास्याम्युदितं सत्यं नासत्यं रामभाषितम्। इत्युक्तवाऽऽलिङ्म्य तं भक्तं समाश्वास्य पुनः पुनः॥२६॥

निवर्तयामास गुहं सोऽपि कृच्छाद्ययौ गृहम्॥२७॥

तत्र मेध्यं मृगं हत्वा पक्तवा हुत्वा च ते त्रयः। भुक्तवा वृक्षतले सुर्वा सुखमासत तां निशाम्॥२८॥

ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन समन्वितः। भरद्वाजाश्रमपदं गत्वा बहिरुपस्थितः। तत्रैकं वटुकं दृष्ट्वा रामः प्राह च हे वटो॥२९॥ रामो दाशरथिः सीतालक्ष्मणाभ्यां समन्वितः। आस्ते बहिर्वनस्येति ह्युच्यतां मुनिसन्निधौ॥३०॥ तच्छुत्वा सहसा गत्वा पादयोः पतितो मुनेः। स्वामिन् रामः समागत्य वनाद्वहिरवस्थितः॥३१॥ सभार्यः सानुजः श्रीमानाह मां देवसन्निभः। भरद्वाजाय मुनये ज्ञापयस्व यथोचितम्॥३२॥ तच्छुत्वा सहसोत्थाय भरद्वाजो मुनीश्वरः। गृहीत्वाऽर्घ्यं च पाद्यं च रामसामीप्यमाययौ॥३३॥ दृष्ट्वा रामं यथान्यायं पूजियत्वा सलक्ष्मणम्। आह मे पर्णशालां भो राम राजीवलोचन॥३४॥ आगच्छ पादरजसा पुनीहि रघुनन्दन। इत्युक्तवोटजमानीय सीतया सह रघावौ॥३५॥ भक्त्या पुनः पूजियत्वा चकारातिथ्यमुत्तमम्। अद्याहं तपसः पारं गतोऽस्मि तव सङ्गमात्॥३६॥

ज्ञातं राम तवोदन्तं भूतं चागामिकं च यत्। जानामि त्वां परात्मानं मायया कार्यमानुषम्॥३७॥ यद्रथमवतीणींऽसि प्रार्थितो ब्रह्मणा पुरा। यदर्थं वनवासस्ते यत्करिष्यसि वै पुरः॥३८॥ जानामि ज्ञानदृष्ट्याहं जातया त्वद्रपासनात्। इतः परं त्वां किं वक्ष्ये कृतार्थोऽहं रघूत्तम॥३९॥ यस्त्वां पश्यामि काकुत्स्थं पुरुषं प्रकृतेः परम्। रामस्तमभिवाद्याह सीतालक्ष्मणसंयुतः॥४०॥ अनुग्राह्यास्त्वया ब्रह्मन्वयं क्षत्रियबान्धवाः। इति सम्भाष्य तेऽन्योन्यमुषित्वा मुनिसन्निधौ॥४१॥ प्रातरुत्थाय यमुनामुत्तीर्य मुनिवारकैः। कृताष्ठवेन मुनिना दृष्टमार्गेण राघवः॥४२॥ प्रययौ चित्रकूटाद्विं वाल्मीकेर्यत्र चाश्रमः। गत्वा रामोऽथ वाल्मीकेराश्रमं ऋषिसङ्कलम्॥४३॥ नानामृगद्विजाकीर्णं नित्यपुष्पफलाकुलम्। तत्र दृष्ट्वा समासीनं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम्॥४४॥

ननाम शिरसा रामो लक्ष्मणेन च सीतया। दृष्ट्वा रामं रमानाथं वाल्मीकिर्लोकसुन्द्रम्॥४५॥ जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम्। कन्दर्पसदृशाकारं कमनीयाम्बुजेक्षणम्॥४६॥ दृष्ट्वेव सहसोत्तस्थौ विस्मयानिमिषेक्षणः। आलिङ्य परमानन्दं रामं हर्षाश्रुलोचनः॥४७॥ पूजियत्वा जगत्पूज्यं भक्त्यार्घ्यादिभिरादृतः। फलमूलैः स मधुरैर्भोजयित्वा च लालितः॥४८॥ राघवः प्राञ्जलिः प्राह वाल्मीकिं विनयान्वितः। पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकानागता वयम्॥४९॥ भवन्तो यदि जानन्ति किं वक्ष्यामोऽत्र कारणम्। यत्र मे सुखवासाय भवेत्स्थानं वदस्व तत्॥५०॥ सीतया सहितः कालं किञ्चित्तत्र नयाम्यहम्। इत्युक्तो राघवेणासौ मुनिः सस्मितमबवीत्॥५१॥ त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम्। तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि॥५२॥

एवं साधारणं स्थानमुक्तं ते रघुनन्दन। सीतया सहितस्येति विशेषं पृच्छतस्तव। तद्वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ यत्ते नियतमन्दिरम्॥५३॥

शान्तानां समदृष्टीनामद्वेष्टृणां च जन्तुषु। त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम्॥५४॥

धर्माधर्मान् परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिश्चम्। सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमन्दिरम्॥५५॥

त्वन्मन्त्रजापको यस्तु त्वामेव शरणं गतः। निर्द्वन्द्वो निःस्पृहस्तस्य हृद्यं ते सुमन्दिरम्॥५६॥

निरहङ्कारिणः शान्ता ये रागद्वेषवर्जिताः। समलोष्टाश्मकनकास्तेषां ते हृद्यं गृहम्॥५७॥

त्विय दत्तमनोबुद्धिर्यः सन्तुष्टः सदा भवेत्। त्विय सन्त्यक्तकर्मा यस्तन्मनस्ते शुभं गृहम्॥५८॥

यो न द्वेष्ट्यप्रियं प्राप्य प्रियं प्राप्य न हृष्यति। सर्वं मायेति निश्चित्य त्वां भजेत्तन्मनो गृहम्॥५९॥ षङ्मावादिविकारान् यो देहे पश्यति नात्मिन। क्षुत्तृट् सुखं भयं दुःखं प्राणबुद्योर्निरीक्षते॥६०॥ संसारधर्मैर्निर्मुक्तस्तस्य ते मानसं गृहम्॥६१॥

पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थम् त्वां चिद्धनं सत्यमनन्तमेकम्। अलेपकं सर्वगतं वरेण्यम् तेषां हृदुङो सह सीतया वस॥६२॥

निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मनाम् त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम्। त्वन्नामकीर्त्या हतकत्मषाणाम् सीतासमेतस्य गृहं हृदुङ्गे॥६३॥

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम्। यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान्॥६४॥

अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः। जन्ममात्रद्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा॥६५॥

शूद्रायां बहवः पुत्रा उत्पन्ना मेऽजितात्मनः। ततश्चोरैश्च सङ्गम्य चौरोऽहमभवं पुरा॥६६॥ धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामन्तकोपमः। एकदा मुनयः सप्त दृष्टा महित कानने॥६७॥ साक्षान्मया प्रकाशन्तो ज्वलनार्कसमप्रभाः। तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान्॥६८॥ ग्रहीतुकामस्तत्राहं तिष्ठ तिष्ठेति चाबवम्। दृष्ट्वा मां मुनयोऽपृच्छन् किमायासि द्विजाधम॥६९॥ अहं तानब्रवं किश्चिदादातुं मुनिसत्तमाः। पुत्रदारादयः सन्ति बहवो मे बुभुक्षिताः॥७०॥ तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने। ततो मामूचुरव्यग्राः पृच्छ गत्वा कुटुम्बकम्॥७१॥ यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसञ्चयः। यूयं तद्भागिनः किं वा नेति वेतिपृथक्पृथक्॥७२॥ वयं स्थास्यामहे तावदागमिष्यसि निश्चयः। तथेत्युक्तवा गृहं गत्वा मुनिभिर्यदुदीरितम्॥७३॥

अपृच्छं पुत्रदारादीन्स्तैरुक्तोऽहं रघूत्तम। पापं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः॥७४॥

तच्छुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागमम्। मुनयो यत्र तिष्ठन्ति करुणापूर्णमानसाः॥७५॥

मुनीनां दर्शनादेव शुद्धान्तःकरणोऽभवम्। धनुरादीन् परित्यज्य दण्डवत्पतितोऽसम्यहम्॥७६॥

रक्षध्वं मां मुनिश्रेष्ठा गच्छन्तं निरयार्णवम्। इत्यग्रे पतितं दृष्ट्वा मामूचुर्मुनिसत्तमाः॥७७॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः। उपदेक्ष्यामहे तुभ्यं किञ्चित्तेनैव मोक्ष्यसे॥७८॥

परस्परं समालोच्य दुर्वृत्तोयं द्विजाधमः। उपेक्ष्य एव सद्वृत्तैस्तथाऽपि शरणं गतः। रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः॥७९॥

इत्युक्तवा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम्। एकाग्रमनसात्रैव मरेति जप सर्वदा॥८०॥

आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप। इत्युत्तवा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः॥८१॥ अहं यथोपदिष्टं तैस्तथाऽकरवमञ्जसा। जपन्नेकाग्रमनसा बाह्यं विस्मृतवानहम्॥८२॥ एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः। सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि॥८३॥ ततो युगसहस्रान्ते ऋषयः पुनरागमन्। मामूचुर्निष्क्रमस्वेति तच्छुत्वा तूर्णमुत्थितः॥८४॥ वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः। मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर॥८५॥ वल्मीकात्सम्भवो यस्मादु द्वितीयं जन्म तेऽभवत्। ययुर्दिव्यगतिं रघुकुलोत्तम॥८६॥ ते इत्युक्तवा अहं ते राम नाम्नश्च प्रभावादीहशोऽभवम्। अद्य साक्षात्प्रपश्यामि ससीतं लक्ष्मणेन च॥८७॥ रामं राजीवपत्राक्षं त्वां मुक्तो नात्र संशयः। आगच्छ राम भद्रं ते स्थलं वै दर्शयाम्यहम्॥८८॥

सप्तमः सर्गः 129

एवमुत्तवा मुनिः श्रीमान्ल्रक्ष्मणेन समन्वितः।

शिष्यैः परिवृतो गत्वा मध्ये पर्वतगङ्गयोः॥८९॥

तत्र शालां सुविस्तीर्णां कारयामास वासभूः। प्राक्पश्चिमं दक्षिणोदक् शोभनं मन्दिरद्वयम्॥९०॥

जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः। तत्र ते देवसदृशा ह्यवसन् भवनोत्तमे॥९१॥

वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽयम्

रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन।

देवैर्मुनीद्रैः सहितो मुदास्ते

स्वर्गे यथा देवपितः सशच्या॥९२॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे षष्ठः सर्गः॥ ६॥

॥सप्तमः सर्गः॥

सुमन्त्रोऽपि तदाऽयोध्यां दिनान्ते प्रविवेश ह। वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य बाष्पाकुलितलोचनः॥१॥

बहिरेव रथं स्थाप्य राजानं द्रष्टुमाययौ। जयशब्देन राजानं स्तुत्वा तं प्रणनाम ह॥२॥ ततो राजा नमन्तं तं सुमन्त्रं विह्वलोऽब्रवीत्। सुमन्त्र रामः कुत्रास्ते सीतया लक्ष्मणेन च॥३॥ कुत्र त्यक्तस्त्वया रामः किं मां पापिनमब्रवीत्। सीता वा लक्ष्मणो वाऽपि निर्दयं मां किमब्रवीत्॥४॥ हा राम हा गुणनिधे हा सीते प्रियवादिनि। दुःखार्णवे निमग्नं मां म्रियमाणं न पश्यसि॥५॥ विलप्यैवं चिरं राजा निमग्नो दुःखसागरे। एवं मन्त्री रुदन्तं तं प्राञ्जलिर्वाक्यमबवीत्॥६॥ रामः सीता च सौमित्रिर्मया नीता रथेन ते। शृङ्गवेरपुराभ्याशे गङ्गाकूले व्यवस्थिताः॥७॥ गुहेन किञ्चिदानीतं फलमूलादिकं च यत्। स्पृष्ट्वा हस्तेन सम्प्रीत्या नाग्रहीद्विससर्ज तत्॥८॥ वटक्षीरं समानाय्य गुहेन रघुनन्दनः। जटामुकुटमाबद्ध मामाह नृपते स्वयम्॥९॥

सुमन्त्र ब्रुहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते। साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति॥१०॥ मातुर्मे वन्दनं ब्रहि शोकं त्यजतु मत्कृते। आश्वासयतु राजानं वृद्धं शोकपरिष्ठुतम्॥११॥ सीता चाश्रुपरीताक्षी मामाह नृपसत्तम। दुःखगद्गदया वाचा रामं किञ्चिदवेक्षती॥१२॥ साष्टाङ्गं प्रणिपातं मे ब्रहि श्रश्वोः पदाम्बुजे। इति प्ररुद्ती सीता गता किञ्चिद्वाङ्मुखी॥१३॥ ततस्तेऽश्रुपरीताक्षा नावमारुरुहुस्तदा। यावद्गङ्गां समुत्तीर्य गतास्तावद्दं स्थितः॥१४॥ ततो दुःखेन महता पुनरेवाहमागतः। ततो रुदन्ती कौसल्या राजानमिदमब्रवीत्॥१५॥ कैकेय्यै प्रियभार्यायै प्रसन्नो दत्तवान् वरम्। त्वं राज्यं देहि तस्यैव मत्पुत्रः किं विवासितः॥१६॥ कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किं नु रोदिषि। कौसल्यावचनं श्रुत्वा क्षते स्पृष्ट इवाग्निना॥१७॥

पुनः शोकाश्रुपूर्णाक्षः कौसल्यामिदमबवीत्। दुःखेन म्रियमाणं मां किं पुनर्दुःखयस्यलम्॥१८॥

इदानीमेव मे प्राणा उत्क्रमिष्यन्ति निश्चयः। शप्तोऽहं बाल्यभावेन केनचिन्मुनिना पुरा॥१९॥

पुराहं यौवने दप्तश्चापबाणधरो निशि। अचरं मृगयासक्तो नद्यास्तीरे महावने॥२०॥

तत्रार्घरात्रसमये मुनिः कश्चित्तृषार्दितः। पिपासार्दितयोः पित्रोर्जलमानेतुमुद्यतः। अपूरयज्जले कुम्मं तदा शब्दोऽभवन्महान्॥२१॥

गजः पिबति पानीयमिति मत्वा महानिशि। बाणं धनुषि सन्धाय शब्दवेधिनमक्षिपम्॥२२॥

हा हतोऽस्मीति तत्राभूच्छब्दो मानुषसूचकः। कस्यापि न कृतो दोषो मया केन हतो विधे॥२३॥

प्रतीक्षते मां माता च पिता च जलकाङ्क्षया। तच्छुत्वा भयसन्त्रस्तस्ततोऽहं पौरुषं वचः॥२४॥ रानैर्गत्वाऽथ तत्पार्श्वं स्वामिन् दुरारथोऽसम्यहम्। अजानता मया विद्धस्त्रातुमर्हिस मां मुने॥२५॥ इत्युत्तवा पादयोस्तस्य पतितो गद्भदाक्षरः। तदा मामाह स मुनिर्मा भैषीर्नृपसत्तम॥२६॥ ब्रह्महत्या स्पृशेन्न त्वां वैश्योऽहं तपिस स्थितः। पितरौ मां प्रतीक्षेते क्षुत्तृङ्खां परिपीडितौ॥२७॥ तयोस्त्वमुद्कं देहि शीघ्रमेवाविचारयन्। न चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यात्पिता मे यदि कुप्यति॥ २८॥ जलं दत्वा तु तौ नत्वा कृतं सर्वं निवेदय। श्चल्यमुद्धर मे देहात्प्राणान्स्त्यक्ष्यामि पीडितः॥ २९॥ इत्युक्तो मुनिना शीघ्रं बाणमुत्पाट्य देहतः। सजलं कलशं धृत्वा गतोऽहं यत्र दम्पती॥३०॥ अतिवृद्धावन्धदृशौ क्षुत्पिपासार्दितौ निशि। नायाति सलिलं गृह्य पुत्रः किं वात्र कारणम्॥३१॥ अनन्यगतिकौ वृद्धौ शोच्यौ तृद्वरिपीडितौ। आवामुपेक्षते किं वा भक्तिमानावयोः सुतः॥३२॥

इति चिन्ताव्याकुलौ तौ मत्पादन्यासजं ध्वनिम्। श्रुत्वा प्राह पिता पुत्र किं विलम्बः कृतस्त्वया॥३३॥ देह्यावयोः सुपानीयं पिब त्वमपि पुत्रक। इत्येवं लपतोर्भीत्या सकाशमगमं शनैः॥३४॥ प्रणिपत्याहमब्रवं विनयान्वितः। नाहं पुत्रस्त्वयोध्याया राजा दशरथोऽस्म्यहम्॥३५॥ पापोऽहं मृगयासक्तो रात्रौ मृगविहिंसकः। जलावताराद्र्रेऽहं स्थित्वा जलगतं ध्वनिम्॥३६॥ श्रुत्वाऽहं राब्दवेधित्वादेकं बाणमथात्यजम्। हतोऽस्मीति ध्वनिं श्रुत्वा भयात्तत्राहमागतः॥३७॥ जटां विकीर्य पतितं दृष्ट्वाऽहं मुनिदारकम्। भीतो गृहीत्वा तत्पादौ रक्ष रक्षेति चाब्रवम्॥३८॥ मा भैषीरिति मां प्राह ब्रह्महत्याभयं न ते। मित्पत्रोः सिललं दत्त्वा नत्वा प्रार्थय जीवितम्॥३९॥ इत्युक्तो मुनिना तेन ह्यागतो मुनिहिंसकः। रक्षेतां मां द्यायुक्तौ युवां हि शरणागतम्॥४०॥

इति श्रुत्वा तु दुःखार्तौ विलप्य बहु शोच्य तम्। पतितो नौ सुतो यत्र नय तत्राविलम्बयन्॥४१॥

ततो नीतौ सुतो यत्र मया तौ वृद्धदम्पती। स्पृष्ट्वा सुतं तौ हस्ताभ्यां बहुशोऽथ विलेपतुः॥४२॥

हाहेति कन्दमानौ तौ पुत्र पुत्रेत्यवोचताम्। जलं देहीति पुत्रेति किमर्थं न ददास्यलम्॥४३॥

ततो मामूचतुः शीघ्रं चितिं रचय भूपते। मया तदैव रचिता चितिस्तत्र निवेशिताः। त्रयस्तत्राग्निरुत्सृष्टो दुग्धास्ते त्रिदिवं ययुः॥४४॥

तत्र वृद्धः पिता प्राह त्वमप्येवं भविष्यसि। पुत्रशोकेन मरणं प्राप्स्यसे वचनान्मम॥४५॥

स इदानीं मम प्राप्तः शापकालोऽनिवारितः। इत्युक्तवा विललापाथ राजा शोकसमाकुलः॥४६॥

हा राम पुत्र हा सीते हा लक्ष्मण गुणाकर। त्वद्वियोगादहं प्राप्तो मृत्युं कैकेयिसम्भवम्॥४७॥ वदन्नेवं दशरथः प्राणान्स्त्यक्तवा दिवं गतः। कौसल्या च सुमित्रा च तथाऽन्या राजयोषितः॥४८॥

चुकुशुश्च विलेपुश्च उरस्ताडनपूर्वकम्। वसिष्ठः प्रययौ तत्र प्रातर्मन्त्रिभरावृतः॥४९॥ तैलद्रोण्यां दशरथं क्षिप्त्वा दूतानथाब्रवीत्। गच्छत त्वरितं साश्वा युधाजिन्नगरं प्रति॥५०॥ तत्रास्ते भरतः श्रीमाञ्छत्रुघ्नसहितः प्रभुः। उच्यतां भरतः शीघ्रमागच्छेति ममाऽऽज्ञया॥५१॥ अयोध्यां प्रति राजानं कैकेयीं चापि पश्यतु। इत्युक्तास्त्वरितं दूता गत्वा भरतमातुलम्॥५२॥ युधाजितं प्रणम्योचुर्भरतं सानुजं प्रति। वसिष्ठस्त्वब्रवीद्राजन् भरतः सानुजः प्रभुः॥५३॥ शीघ्रमागच्छतु पुरीमयोध्यामविचारयन्। इत्याज्ञप्तोऽथ भरतस्त्वरितं भयविह्वलः॥५४॥ आययौ गुरुणादिष्टः सह दूतैस्तु सानुजः। राज्ञो वा राघवस्यापि दुःखं किञ्चिदुपस्थितम्॥५५॥

इति चिन्तापरो मार्गे चिन्तयन्नगरं ययौ। नगरं भ्रष्टलक्ष्मीकं जनसम्बाधवर्जितम्॥५६॥ उत्सवैश्च परित्यक्तं दृष्ट्वा चिन्तापरोऽभवत्। प्रविश्य राजभवनं राजलक्ष्मीविवर्जितम्॥५७॥ अपश्यत्कैकेयीं तत्र एकामेवासने स्थिताम्। ननाम शिरसा पादौ मातुर्भक्तिसमन्वितः॥५८॥ आगतं भरतं दृष्ट्वा कैकेयी प्रेमसम्भ्रमात्। उत्थायालिङ्म रभसा स्वाङ्कमारोप्य संस्थिता॥५९॥ मूर्ध्यवघ्राय पप्रच्छ कुशलं स्वकुलस्य सा। पिता में कुशलों भ्राता माता च शुभलक्षणा॥६०॥ दिष्ट्या त्वमद्य कुशली मया दृष्टोऽसि पुत्रक। इति पृष्टः स भरतो मात्रा चिन्ताकुलेन्द्रियः॥६१॥ दूयमानेन मनसा मातरं समपृच्छत। मातः पिता मे कुत्रास्ते एका त्विमह संस्थिता॥६२॥ त्वया विना न मे तातः कदाचिद्रहसि स्थितः। इदानीं दृश्यते नैव कुत्र तिष्ठति मे वद्॥६३॥

अदृष्ट्वा पितरं मेऽद्य भयं दुःखं च जायते। अथाह कैकेयी पुत्र किं दुःखेन तवानघ॥६४॥ या गतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम्। तां गतिं गतवानद्य पिता ते पितवत्सल॥६५॥ तच्छुत्वा निपपातोर्व्यां भरतः शोकविह्नलः। हा तात क गतोऽसि त्वं त्यक्तवा मां वृजिनार्णवे॥६६॥ असमप्यैंव रामाय राज्ञे मां क गतोऽसि भोः। इति विलिपतं पुत्रं पतितं मुक्तमूर्धजम्॥६७॥ उत्थाप्यामृज्य नयने कैकेयी पुत्रमब्रवीत्। समाश्वसिहि भद्रं ते सर्वं सम्पादितं मया॥६८॥ तामाह भरतस्तातो म्रियमाणः किमब्रवीत्। तमाह कैकेयी देवी भरतं भयवर्जिता॥६९॥ हा राम राम सीतेति लक्ष्मणेति पुनः पुनः। विलपन्नेव सुचिरं देहं त्यक्तवा दिवं ययौ॥७०॥ तामाह भरतो हेऽम्ब रामः सन्निहितो न किम्। तदानीं लक्ष्मणो वाऽपि सीता वा कुत्र ते गताः॥७१॥

रामस्य यौवराज्यार्थं पित्रा ते सम्भ्रमः कृतः। तव राज्यप्रदानाय तदाऽहं विघ्नमाचरम्॥७२॥ राज्ञा दत्तं हि मे पूर्वं वरदेन वरद्वयम्। याचितं तदिदानीं मे तयोरेकेन तेऽखिलम्॥७३॥ राज्यं रामस्य चैकेन वनवासो मुनिव्रतम्। ततः सत्यपरो राजा राज्यं दत्त्वा तवैव हि॥७४॥ रामं सम्प्रेषयामास वनमेव पिता तव। सीताप्यनुगता रामं पातिव्रत्यमुपाश्रिता॥७५॥ सौभ्रात्रं दर्शयन् राममनुयातोऽपि लक्ष्मणः। वनं गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन्॥७६॥ प्रलपन् रामरामेति ममार नृपसत्तमः। इति मातुर्वेचः श्रुत्वा वज्राहत इव द्रुमः॥७७॥ पपात भूमौ निःसंज्ञस्तं दृष्ट्वा दुःखिता तदा। कैकेयी पुनरप्याह वत्स शोकेन किं तव॥७८॥ राज्ये महति सम्प्राप्ते दुःखस्यावसरः कुतः। इति ब्रुवन्तीमालोक्य मातरं प्रदहन्निव॥७९॥

असम्भाष्यासि पापे मे घोरे त्वं भर्तृघातिनी। पापे त्वद्गर्भजातोऽहं पापवानस्मि साम्प्रतम्। अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि विषं वा भक्षयाम्यहम्॥८०॥ खङ्गेन वाथ चात्मानं हत्वा यामि यमक्षयम्। भर्तघातिनि दुष्टे त्वं कुम्भीपाकं गमिष्यसि॥८१॥ इति निर्भर्त्स्य कैकेयीं कौसल्याभवनं ययौ। साऽपि तं भरतं दृष्ट्वा मुक्तकण्ठा रुरोद् ह॥८२॥ पादयोः पतितस्तस्या भरतोऽपि तदाऽरुदत्। आलिञ्च भरतं साध्वी राममाता यशस्विनी। कुशाऽतिदीनवदना साश्रुनेत्रेदमब्रवीत्॥८३॥ पुत्र त्विय गते दूरमेवं सर्वमभूदिदम्। उक्तं मात्रा श्रुतं सर्वं त्वया ते मातृचेष्टितम्॥८४॥

पुत्रः सभार्यो वनमेव यातः सलक्ष्मणो मे रघुरामचन्द्रः। चीराम्बरो बद्धजटाकलापः सन्त्यज्य मां दुःखसमुद्रमग्नाम्॥८५॥

हा राम हा मे रघुवंशनाथ जातोऽसि मे त्वं परतः परात्मा। तथाऽपि दुःखं न जहाति मां वै विधिर्बलीयानिति मे मनीषा॥८६॥ स एवं भरतो वीक्ष्य विलपन्तीं भुशं शुचा। पादौ गृहीत्वा प्राहेदं शृणु मातर्वचो मम॥८७॥ कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने। अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि॥८८॥ पापं मेऽस्तु तदा मातर्बह्महत्याशतोद्भवम्। हत्वा वसिष्ठं खङ्गेन अरुन्धत्या समन्वितम्॥८९॥ भूयात्तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम्। इत्येवं शपथं कृत्वा रुरोद् भरतस्तदा॥९०॥ कौसल्या तमथालिङ्य पुत्र जानामि मा शुचः। एतरिमन्नन्तरे श्रुत्वा भरतस्य समागमम्॥९१॥ वसिष्ठो मन्त्रिभिः सार्धं प्रययौ राजमन्दिरम्। रुदन्तं भरतं दृष्ट्वा वसिष्ठः प्राह सादरम्॥९२॥

वृद्धो राजा दशरथो ज्ञानी सत्यपराक्रमः। भुक्तवा मर्त्यसुखं सर्वमिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः॥९३॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्लब्या रामं सुतं हरिम्। अन्ते जगाम त्रिदिवं देवेन्द्रार्द्धासनं प्रभुः॥९४॥ तं शोचिस वृथैव त्वमशोच्यं मोक्षभाजनम्। आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः॥९५॥ शरीरं जडमत्यर्थमपवित्रं विनश्वरम्। विचार्यमाणे शोकस्य नावकाशः कथञ्चन॥९६॥ पिता वा तनयो वाऽपि यदि मृत्युवशं गतः। मूढास्तमनुशोचन्ति स्वात्मताडनपूर्वकम्॥९७॥ निःसारे खलु संसारे वियोगो ज्ञानिनां यदा। भवेद्वैराग्यहेतुः स शान्तिसौख्यं तनोति च॥९८॥ जन्मवान् यदि लोकेऽस्मिन्स्तर्हि तं मृत्युरन्वगात्। तस्मादपरिहार्योऽयं मृत्युर्जन्मवतां सदा॥९९॥ स्वकर्मवशतः सर्वजन्तुनां प्रभवाप्ययौ।

विजानन्नप्यविद्वान् यः कथं शोचित बान्धवान्॥१००॥

ब्रह्माण्डकोटयो नष्टाः सृष्टयो बहुशो गताः। शुष्यन्ति सागराः सर्वे कैवास्था क्षणजीविते॥ १०१॥ चलपत्रान्तलग्नाम्बुबिन्दुवत्क्षणभङ्गुरम् । आयुस्त्यजत्यवेलायां कस्तत्र प्रत्ययस्तव॥१०२॥ देही प्राक्तनदेहोत्थकर्मणा देहवान् पुनः। तदेहोत्थेन च पुनरेवं देहः सदात्मनः॥१०३॥ यथा त्यजित वै जीर्णं वासो गृह्णाति नूतनम्। तथा जीर्णं परित्यज्य देही देहं पुनर्नवम्॥१०४॥ भजत्येव सदा तत्र शोकस्यावसरः कुतः। आत्मा न म्रियते जातु जायते न च वर्धते॥ १०५॥ षङ्गावरहितोऽनन्तः सत्यप्रज्ञानविग्रहः। आनन्दरूपो बुद्यादिसाक्षी लयविवर्जितः॥१०६॥ एक एव परो ह्यात्मा ह्यद्वितीयः समः स्थितः। इत्यात्मानं दृढं ज्ञात्वा त्यक्तवा शोकं कुरु कियाम्॥१०७॥ तैलद्रोण्याः पितुर्देहमुद्भृत्य सचिवैः सह।

कृत्यं कुरु यथान्यायमस्माभिः कुलनन्दन॥१०८॥

इति सम्बोधितः साक्षाद्गुरुणा भरतस्तदा। विसृज्याज्ञानजं शोकं चक्रे सविधिवत्क्रियाम्॥१०९॥

गुरुणोक्तप्रकारेण आहिताम्नेर्यथाविधि। संस्कृत्य स पितुर्देहं विधिदृष्टेन कर्मणा॥११०॥

एकादशेऽहिन प्राप्ते ब्राह्मणान् वेदपारगान्। भोजयामास विधिवच्छतशोऽथ सहस्रशः॥१११॥ उद्दिश्य पितरं तत्र ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु। ददौ गवां सहस्राणि ग्रामान् रत्नाम्बराणि च॥११२॥

अवसत्स्वगृहे यत्र राममेवानुचिन्तयन्। वसिष्ठेन सह भ्रात्रा मन्त्रिभिः परिवारितः॥११३॥

रामेऽरण्यं प्रयाते सह जनकसुतालक्ष्मणाभ्यां सुघोरम् माता मे राक्षसीव प्रदहित हृदयं दर्शनादेव सद्यः। गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमितरिष्वलं दूरतोऽपास्य राज्यम् रामं सीतासमेतं स्मितरुचिरमुखं नित्यमेवानुसेवे॥११४॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे सप्तमः सर्गः॥ ७॥

॥ अष्टमः सर्गः॥

वसिष्ठो मुनिभिः सार्धं मन्त्रिभिः परिवारितः। राज्ञः सभां देवसभासन्त्रिभामविद्यद्विभुः॥१॥

तत्रासने समासीनश्चतुर्मुख इवापरः। आनीय भरतं तत्र उपवेश्य सहानुजम्॥२॥

अब्रवीद्वचनं देशकालोचितमरिन्दमम्। वत्स राज्येऽभिषेक्ष्यामस्त्वामद्य पितृशासनात्॥३॥

कैकेय्या याचितं राज्यं त्वदर्थे पुरुषर्षभ। सत्यसन्धो दशरथः प्रतिज्ञाय ददौ किल॥४॥

अभिषेको भवत्वद्य मुनिभिर्मन्त्रपूर्वकम्। तच्छुत्वा भरतोऽप्याह मम राज्येन किं मुने॥५॥

रामो राजाधिराजश्च वयं तस्यैव किङ्कराः। श्वः प्रभाते गमिष्यामो राममानेतुमञ्जसा॥६॥ अहं यूयं मातरश्च कैकेयीं राक्षसीं विना।

हिनष्याम्यधुनैवाहं कैकेयीं मातृगन्धिनीम्॥७॥

किन्तु मां नो रघुश्रेष्टः स्त्रीहन्तारं सहिष्यते। तच्छ्रोभूते गमिष्यामि पादचारेण दण्डकान्॥८॥ शत्रुघ्नसहितस्तूर्णं यूयमायात वा न वा। रामो यथा वने यातस्तथाऽहं वल्कलाम्बरः॥९॥ फलमूलकृताहारः शत्रुघ्नसहितो मुने। भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते॥१०॥ इति निश्चित्य भरतस्तुष्णीमेवावतस्थिवान्। साधुसाध्विति तं सर्वे प्रशशंसुर्मुदान्विताः॥११॥ ततः प्रभाते भरतं गच्छन्तं सर्वसैनिकाः। अनुजग्मुः सुमन्त्रेण नोदिताः साश्वकुञ्जराः॥१२॥ कौसल्याद्या राजदारा वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः। छादयन्तो भुवं सर्वे पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः॥१३॥ श्रङ्गवेरपुरं गत्वा गङ्गाकूले समन्ततः। उवास महती सेना रात्रुघ्नपरिचोदिता॥१४॥ आगतं भरतं श्रुत्वा गुहः शङ्कितमानसः। महत्या सेनया सार्धमागतो भरतः किल॥१५॥

पापं कर्तुं न वा याति रामस्याविदितात्मनः। गत्वा तद्भद्यं ज्ञेयं यदि शुद्धस्तरिष्यति॥१६॥ गङ्गा नो चेत्समाकृष्य नावस्तिष्ठन्तु सायुधाः। ज्ञातयो मे समायत्ताः पश्यन्तः सर्वतोदिशम्॥१७॥ इति सर्वान् समादिश्य गुहो भरतमागतः। उपायनानि सङ्गह्य विविधानि बहून्यपि॥१८॥ प्रययौ ज्ञातिभिः सार्धं बहुभिर्विविधायुधैः। निवेद्योपायनान्यग्रे भरतस्य समन्ततः॥१९॥ दृष्ट्वा भरतमासीनं सानुजं सह मन्त्रिभिः। चीराम्बरं घनश्यामं जटामुकुटधारिणम्॥२०॥ राममेवानुशोचन्तं रामरामेति वादिनम्। ननाम शिरसा भूमौ गुहोऽहमिति चाबवीत्॥२१॥ शीघ्रमुत्थाप्य भरतो गाढमालिङ्य साद्रम्। पृष्ट्वाऽनामयमव्ययः सखायमिद्मब्रवीत्॥२२॥ भ्रातस्त्वं राघवेणात्र समेतः समवस्थितः। रामेणालिङ्गितः सार्द्रनयनेनामलात्मना॥२३॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यत्त्वया परिभाषितः। रामो राजीवपत्राक्षो लक्ष्मणेन च सीतया॥२४॥ यत्र रामस्त्वया दृष्टस्तत्र मां नय सुव्रत। सीतया सहितो यत्र सुप्तस्तद्दर्शयस्व मे॥२५॥ त्वं रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान्। इति संस्मृत्य संस्मृत्य रामं साश्रुविलोचनः॥२६॥ गृहेन सहितस्तत्र यत्र रामः स्थितो निशि। ययौ ददर्श शयनस्थलं कुशसमास्तृतम्॥२७॥ सीताऽऽभरणसंलग्नस्वर्णबिन्दुभिरर्चितम्। दुःखसन्तप्तहृदयो भरतः पर्यदेवयत्॥ २८॥ अहोऽतिसुकुमारी या सीता जनकनन्दिनी। प्रासादे रत्नपर्यङ्के कोमलास्तरणे शुभे॥२९॥ रामेण सहिता शेते सा कथं कुशविष्टरे। सीता रामेण सहिता दुःखेन मम दोषतः॥३०॥

धिङ्मां जातोऽस्मि कैकेय्या पापराशिसमानतः। मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः॥३१॥

अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः। राममेव सदान्वेति वनस्थमपि हृष्टधीः॥३२॥ अहं रामस्य दासा ये तेषां दासस्य किङ्करः। यदि स्यां सफलं जन्म मम भूयान्न संशयः॥३३॥ भ्रातर्जानासि यदि तत्कथयस्व ममाखिलम्। यत्र तिष्ठति तत्राहं गच्छाम्यानेतुमञ्जसा॥३४॥ गुहस्तं शुद्धहृद्यं ज्ञात्वा सस्नेहमब्रवीत्। देव त्वमेव धन्योऽसि यस्य ते भक्तिरीदृशी॥३५॥ रामे राजीवपत्राक्षे सीतायां लक्ष्मणे तथा। चित्रकूटाद्रिनिकटे मन्दाकिन्यविदूरतः॥३६॥ मुनीनामाश्रमपदे रामस्तिष्ठति सानुजः। जानक्या सहितो नन्दात्सुखमास्ते किल प्रभुः॥३७॥ तत्र गच्छामहे शीघ्रं गङ्गां तर्तुमिहार्हसि। इत्युक्तवा त्वरितं गत्वा नावः पञ्चशतानि ह॥ ३८॥ समानयत्ससैन्यस्य तर्तुं गङ्गां महानदीम्। स्वयमेवानिनायैकां राजनावं गुहस्तदा॥३९॥

आरोप्य भरतं तत्र शत्रुघ्नं राममातरम्। वसिष्ठं च तथाऽन्यत्र कैकेयीं चान्ययोषितः॥४०॥ तीर्त्वा गङ्गां ययौ शीघ्रं भरद्वाजाश्रमं प्रति। दूरे स्थाप्य महासैन्यं भरतः सानुजो ययौ॥४१॥ आश्रमे मुनिमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम्। दृष्ट्वा ननाम भरतः साष्टाङ्गमतिभक्तितः॥४२॥ ज्ञात्वा दाशर्थिं प्रीत्या पूजयामास मौनिराट। पप्रच्छ कुशलं दृष्ट्वा जटावल्कलधारिणम्॥४३॥ राज्यं प्रशासतस्तेऽद्य किमेतद्वल्कलादिकम्। आगतोऽसि किमर्थं त्वं विपिनं मुनिसेवितम्॥४४॥ भरद्वाजवचः श्रुत्वा भरतः साश्रुलोचनः। सर्वं जानासि भगवन् सर्वभूताशयस्थितः॥४५॥ तथाऽपि पृच्छसे किञ्चित्तदनुग्रह एव मे। कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्यविघातनम्॥४६॥ वनवासादिकं वाऽपि न हि जानामि किञ्चन। भवत्पाद्युगं मेऽद्य प्रमाणं मुनिसत्तम॥४७॥

इत्युक्तवा पादयुगलं मुनेः स्पृष्ट्वाऽर्त्तमानसः। ज्ञातुमहिसि मां देव शुद्धो वाऽशुद्ध एव वा॥४८॥ मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि। किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शाश्वतः॥४९॥ अतो गत्वा मुनिश्रेष्ठ रामस्य चरणान्तिके। पतित्वा राज्यसम्भारान् समर्प्यात्रैव राघवम्॥५०॥ अभिषेक्ष्ये वसिष्ठाद्यैः पौरजानपदैः सह। नेष्येऽयोध्यां रमानाथं दासः सेवेऽतिनीचवत्॥५१॥ इत्यदीरितमाकर्ण्य भरतस्य वचो मुनिः। आलिङ्म मूर्ध्यवघ्राय प्रशशंस सविस्मयः॥५२॥ वत्स ज्ञातं पुरैवैतद्भविष्यं ज्ञानचक्षुषा। मा शुचस्त्वं परो भक्तः श्रीरामे लक्ष्मणाद्पि॥५३॥ आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि ससैन्यस्य तवानघ। अद्य भुक्तवा ससैन्यस्त्वं श्वो गन्ता रामसन्निधिम्॥५४॥ यथाऽऽज्ञापयति भवान्स्तथेति भरतोऽब्रवीत। भरद्वाजस्त्वपः स्पृष्ट्वा मौनी होमगृहे स्थितः॥५५॥

दध्यौ कामदुघां कामवर्षिणीं कामदो मुनिः। असृजत्कामधुक् सर्वं यथाकाममलौकिकम्॥५६॥

भरतस्य ससैन्यस्य यथेष्टं च मनोरथम्। यथा ववर्ष सकलं तृप्तास्ते सर्वसैनिकाः॥५७॥

विसष्ठं पूजियत्वाऽग्रे शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। पश्चात्ससैन्यं भरतं तर्पयामास योगिराट्॥५८॥

उषित्वा दिनमेकं तु आश्रमे स्वर्गसन्निभे। अभिवाद्य पुनः प्रातर्भरद्वाजं सहानुजः॥५९॥

भरतस्तु कृतानुज्ञः प्रययौ रामसन्निधिम्। चित्रकूटमनुप्राप्य दूरे संस्थाप्य सौनिकान्। रामसन्दर्शनाकाङ्की प्रययौ भरतः स्वयम्॥६०॥

शत्रुघ्नेन सुमन्त्रेण गुहेन च परन्तपः। तपस्विमण्डलं सर्वं विचिन्वानो न्यवर्तत॥६१॥ अदृष्ट्वा रामभवनमपृच्छदृषिमण्डलम्। कुत्रास्ते सीतया सार्धं लक्ष्मणेन रघूत्तमः॥६२॥ ऊचुरग्रे गिरेः पश्चाद्गङ्गाया उत्तरे तटे। विविक्तं रामसदनं रम्यं काननमण्डितम्॥६३॥

सफलैराम्रपनसैः कदलीखण्डसंवृतम्। चम्पकैः कोविदारैश्च पुन्नागैर्विपुलैस्तथा॥६४॥

एवं दर्शितमालोक्य मुनिभिर्भरतोऽग्रतः। हर्षाद्ययौ रघुश्रेष्ठभवनं मन्त्रिणा सह॥६५॥

ददर्श दूरादितभासुरं शुभम् रामस्य गेहं मुनिवृन्दसेवितम्। वृक्षाग्रसंलग्नसुवल्कलाजिनम् रामाभिरामं भरतः सहानुजः॥६६॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे अष्टमः सर्गः॥८॥

॥नवमः सर्गः॥

अथ गत्वाऽऽश्रमपदसमीपं भरतो मुदा। सीतारामपदैर्युक्तं पवित्रमतिशोभनम्॥१॥ स तत्र वज्राङ्कशवारिजाश्चित-ध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः। ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गलानि अचेष्टयत्पादरजःसु सानुजः॥२॥

अहो सुधन्योऽहममूनि रामपादारविन्दाङ्कितभूतलानि। पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यम् ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम्॥३॥

इत्यद्भुतप्रेमरसास्रुताशयो विगाढचेता रघुनाथभावने। आनन्दजाश्रस्नपितस्तनान्तरः शनैरवापाश्रमसन्निधिं हरेः॥४॥

स तत्र दृष्ट्वा रघुनाथमास्थितम् दूर्वादलश्यामलमायतेक्षणम्। जटाकिरीटं नववल्कलाम्बरम् प्रसन्नवक्रं तरुणारुणद्युतिम्॥५॥ विलोकयन्तं जनकात्मजां शुभाम् सौमित्रिणा सेवितपादपङ्कजम्। तदाऽभिदुद्राव रघूत्तमं शुचा हर्षाच तत्पादयुगं त्वराग्रहीत्॥६॥

रामस्तमाकृष्य सुदीर्घबाहुर्दीर्म्याम् परिष्वज्य सिषिञ्च नेत्रजैः। जलैरथाङ्कोपरि सन्न्यवेशयत् पुनः पुनः सम्परिषस्वजे विभुः॥७॥

अथ ता मातरः सर्वाः समाजग्मुस्त्वरान्विताः। राघवं द्रष्टुकामास्तास्तृषार्ता गौर्यथा जलम्॥८॥

रामः स्वमातरं वीक्ष्य द्रुतमुत्थाय पादयोः। ववन्दे साश्रु सा पुत्रमालिज्ञातीव दुःखिता॥९॥

इतराश्च तथा नत्वा जननी रघुनन्दनः। ततः समागतं दृष्ट्वा वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम्॥१०॥

साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुनः पुनः। यथार्हमुपवेश्याह सर्वानेव रघृद्वहः॥११॥

पिता मे कुशली किं वा मां किमाहातिदुःखितः। वसिष्ठस्तमुवाचेदं पिता ते रघुनन्दन॥१२॥ त्वद्वियोगाभितप्तात्मा त्वामेव परिचिन्तयन। रामरामेति सीतेति लक्ष्मणेति ममार ह॥१३॥ श्रुत्वा तत्कर्णशूलामं गुरोर्वचनमञ्जसा। हा हतोऽस्मीति पतितो रुद्न् रामः सलक्ष्मणः॥१४॥ ततोऽनुरुरुदः सर्वा मातरश्च तथाऽपरे। हा तात मां परित्यज्य क गतोऽसि घृणाकर॥१५॥ अनाथोऽस्मि महाबाहो मां को वा लालयेदितः। सीता च लक्ष्मणश्चैव विलेपतुरतो भृशम्॥१६॥ वसिष्ठः शान्तवचनैः शमयामास तां शुचम्। ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः॥ १७॥ राज्ञे दुदुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे। पिण्डान्निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः॥१८॥ इङ्गदीफलपिण्याकरचितान्मधुसम्स्रुतान् । वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः॥१९॥

इति दुखाश्रुपूर्णाक्षः पुनः स्नात्वा गृहं ययौ। सर्वे रुदित्वा सुचिरं स्नात्वा जग्मुस्तदाश्रमम्॥२०॥ तिस्मन्स्तु दिवसे सर्वे उपवासं प्रचिकरे। ततः परेद्युर्विमले स्नात्वा मन्दाकिनीजले॥२१॥ उपविष्टं समागम्य भरतो राममब्रवीत। राम राम महाभाग स्वात्मानमभिषेचय॥२२॥ राज्यं पालय पित्र्यं ते ज्येष्ठस्त्वं मे पिता तथा। क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्॥२३॥ इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधेः पुत्रानुत्पाद्य तन्तवे। राज्ये पुत्रं समारोप्य गमिष्यसि ततो वनम्॥२४॥ इदानीं वनवासस्य कालो नैव प्रसीद मे। मातुर्मे दुष्कृतं किञ्चित्स्मर्तुं नार्हिस पाहि नः॥२५॥ इत्युक्तवा चरणौ भ्रातुः शिरस्याधाय भक्तितः। रामस्य पुरतः साक्षाद्दण्डवत्पतितो भुवि॥२६॥ उत्थाप्य राघवः शीघ्रमारोप्याङ्केऽतिभक्तितः। उवाच भरतं रामः स्नेहार्द्रनयनः शनैः॥२७॥

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि त्वयोक्तं यत्तथेव तत्। किन्तु मामब्रवीत्तातो नव वर्षाणि पञ्च च॥२८॥ उषित्वा दण्डकारण्ये पुरं पश्चात्समाविदा। इदानीं भरतायेदं राज्यं दत्तं मयाऽखिलम्॥२९॥ ततः पित्रैव सुव्यक्तं राज्यं दत्तं तवैव हि। दण्डकारण्यराज्यं मे दत्तं पित्रा तथैव च॥३०॥ अतः पितुर्वचः कार्यमावाभ्यामतियलतः। पितुर्वचनमुल्लङ्खा स्वतन्त्रो यस्तु वर्तते॥३१॥ स जीवन्नेव मृतको देहान्ते निरयं व्रजेत्। तस्माद्राज्यं प्रशाधि त्वं वयं दण्डकपालकाः॥३२॥ भरतस्त्वब्रवीद्रामं कामुको मूढधीः पिता। स्त्रीजितो भ्रान्तहृदय उन्मत्तो यदि वक्ष्यति। तत्सत्यमिति न ग्राह्यं भ्रान्तवाक्यं यथा सुधीः॥३३॥

श्रीराम उवाच

न स्त्रीजितः पिता ब्र्यान्न कामी नैव मूढधीः। पूर्वं प्रतिश्रुतं तस्य सत्यवादी ददौ भयात्॥३४॥ असत्याद्भीतिरिधका महतां नरकादि। करोमीत्यहमप्येतत्सत्यं तस्यै प्रतिश्रुतम्॥३५॥ कथं वाक्यमहं कुर्यामसत्यं राघवो हि सन्। इत्युदीरितमाकण्यं रामस्य भरतोऽब्रवीत्॥३६॥

श्रीभरत उवाच

तथैव चीरवसनो वने वत्स्यामि सुव्रत। चतुर्दश समास्त्वं तु राज्यं कुरु यथासुखम्॥३७॥

श्रीराम उवाच

पित्रा दत्तं तवैवैतद्राज्यं मह्यं वनं ददौ। व्यत्ययं यद्यहं कुर्यामसत्यं पूर्ववत् स्थितम्॥३८॥ अहमप्यागमिष्यामि सेवे त्वां लक्ष्मणो यथा। नोचेत्प्रायोपवेशेन त्यजाम्येतत्कलेवरम्॥३९॥ इत्येवं निश्चयं कृत्वा दर्भानास्तीर्य चातपे। मनसाऽपि विनिश्चित्य प्राङ्मुखोपविवेश सः॥४०॥ भरतस्यापि निर्बन्धं दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः। नेत्रान्तसंज्ञां गुरवे चकार रघुनन्दनः॥४१॥ एकान्ते भरतं प्राह वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः। वत्स गुह्यं शृणुष्वेदं मम वाक्यात्सुनिश्चितम्॥४२॥ रामो नारायणः साक्षाद्वह्मणा याचितः पुरा। रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः॥४३॥ योगमायाऽपि सीतेति जाता जनकनन्दिनी। शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा॥४४॥ रावणं हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न संशयः। कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम्॥४५॥ सर्वं देवकृतं नो चेदेवं सा भाषयेत्कथम्। तस्मात्त्यजाऽऽग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने॥४६॥ निवर्तस्व महासैन्यैर्भ्रात्भिः सहितः पुरम्। रावणं सकुलं हत्वा शीघ्रमेवागमिष्यति॥४७॥ इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भरतो विस्मयान्वितः। गत्वा समीपं रामस्य विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥४८॥ पादुके देहि राजेन्द्र राज्याय तव पूजिते। तयोः सेवां करोम्येव यावदागमनं तव॥४९॥

इत्युक्तवा पादुके दिव्ये योजयामास पादयोः। रामस्य ते ददौ रामो भरतायातिभक्तितः॥५०॥ गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते। रामं पुनः परिक्रम्य प्रणनाम पुनः पुनः॥५१॥ भरतः पुनराहेदं भक्त्या गद्गद्या गिरा। नवपञ्चसमान्ते तु प्रथमे दिवसे यदि॥५२॥ नागमिष्यसि चेद्राम प्रविशामि महानलम्। बाढिमित्येव तं रामो भरतं सन्न्यवर्तयत्॥५३॥ ससैन्यः सवसिष्ठश्च रात्रुघ्नसहितः सुधीः। मातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धं गमनायोपचक्रमे॥५४॥ कैकेयी राममेकान्ते स्रवन्नेत्रजलाकुला। प्राञ्जिलः प्राह हे राम तव राज्यविघातनम्॥५५॥ कृतं मया दुष्टिधया मायामोहितचेतसा। क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः॥५६॥ त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः। मायामानुषरूपेण मोहयस्यखिलं जगत्। त्वयैव प्रेरितो लोकः कुरुते साध्वसाधु वा॥५७॥

त्वदधीनमिदं विश्वमस्वतन्त्रं करोति किम्। यथा कृत्रिमनर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया॥५८॥ त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी। त्वयैव प्रेरिताहं च देवकार्यं करिष्यता॥५९॥ पापिष्ठं पापमनसा कर्माचरमरिन्दम। अद्य प्रतीतोऽसि मम देवानामप्यगोचरः॥६०॥ पाहि विश्वेश्वरानन्त जगन्नाथ नमोऽस्तु ते। छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम्॥६१॥ त्वज्ज्ञानानलखङ्गेन त्वामहं शरणं गता। कैकेय्या वचनं श्रुत्वा रामः सस्मितमब्रवीत्॥६२॥ यदाह मां महाभागे नानृतं सत्यमेव तत्। मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्राद्विनिर्गता॥६३॥ देवकार्यार्थसिद्धर्थमत्र दोषः कुतस्तव। गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम्॥६४॥ सर्वत्र विगतस्रेहा मद्भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात। अहं सर्वत्र समदृग् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा॥६५॥

नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम्। मन्मायामोहितिधयो मामम्ब मनुजाकृतिम्॥६६॥ सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः। दिष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमृत्पन्नं ते भवापहम्॥६७॥ स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मिभिः। इत्युक्ता सा परिक्रम्य रामं सानन्दविस्मया॥६८॥ प्रणम्य शतशो भूमौ ययौ गेहं मुदान्विता। भरतस्त्र सहामात्यैर्मातृभिर्गुरुणा सह॥६९॥ अयोध्यामगमच्छीघ्रं राममेवानुचिन्तयन्। पौरजानपदान् सर्वानयोध्यायामुदारधीः॥७०॥ स्थापयित्वा यथान्यायं नन्दिग्रामं ययौ स्वयम्। तत्र सिंहासने नित्यं पादुके स्थाप्य भक्तितः॥७१॥ पूजियत्वा यथा रामं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहं नियतव्रतः॥७२॥ फलमूलाशनो दान्तो जटावल्कलधारकः। अधःशायी ब्रह्मचारी शत्रुघ्नसहितस्तदा॥७३॥

राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले। तानि पादुकयोः सम्यङ्गिवेदयति राघवः॥७४॥ गणयन् दिवसान्येव रामागमनकाङ्खया। स्थितो रामार्पितमनाःसाक्षाद्वसमुनिर्यथा॥७५॥ रामस्तु चित्रकृटाद्रौ वसन्मुनिभिरावृतः। सीतया लक्ष्मणेनापि किञ्चित्कालमुपावसत्॥७६॥ नागराश्च सदा यान्ति रामदर्शनलालसाः। चित्रकूटस्थितं ज्ञात्वा सीतया लक्ष्मणेन च॥७७॥ दृष्ट्वा तज्जनसम्बाधं रामस्तत्याज तं गिरिम्। दण्डकारण्यगमने कार्यमप्यनुचिन्तयन्॥७८॥ अन्वगात्सीतया भ्रात्रा ह्यत्रेराश्रममुत्तमम्। सर्वत्र सुखसंवासं जनसम्बाधवर्जितम्॥७९॥ गत्वा मुनिमुपासीनं भासयन्तं तपोवनम्। दण्डवत्प्रणिपत्याह रामोऽहमभिवादये॥८०॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकाननमागतः। वनवासमिषेणापि धन्योऽहं दर्शनात्तव॥८१॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं रामं ज्ञात्वा हरि परम्। पूजयामास विधिवद्भक्त्या परमया मुनिः॥८२॥ वन्यैः फलैः कृतातिथ्यमुपविष्टं रघूत्तमम्। सीतां च लक्ष्मणं चैव सन्तुष्टो वाक्यमब्रवीत्॥८३॥ भार्या मेऽतीव संवृद्धा ह्यनसूयेति विश्रुता। तपश्चरन्ती सुचिरं धर्मज्ञा धर्मवत्सला॥८४॥ अन्तस्तिष्ठति तां सीता पश्यत्वरिनिषूदन। तथेति जानकीं प्राह रामो राजीवलोचनः॥८५॥ गच्छ देवीं नमस्कृत्य शीघ्रमेहि पुनः शुभे। तथेति रामवचनं सीता चापि तथाऽकरोत्॥८६॥ दण्डवत्पतितामग्रे सीतां दृष्ट्वाऽतिहृष्ट्यीः। अनसूया समालिङ्म वत्से सीतेति साद्रम्॥८७॥ दिव्ये ददौ कुण्डले ह्रे निर्मिते विश्वकर्मणा। दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता॥८८॥ अङ्गरागं च सीतायै ददौ दिव्यं शुभानना। न त्यक्ष्यतेऽङ्गरागेण शोभा त्वां कमलानने॥८९॥

पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानिक। कुशली राघवो यातु त्वया सह पुनर्गृहम्॥९०॥

भोजयित्वा यथान्यायं रामं सीतासमन्वितम्। लक्ष्मणं च तदा रामं पुनः प्राह कृताञ्जलिः॥९१॥

राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषाम् संरक्षणाय सुरमानुषतिर्यगादीन्। देहान् बिभर्षि न च देहगुणैर्विलिप्तस्-त्वत्तो बिभेत्यखिलमोहकरी च माया॥९२॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः॥ ९॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अयोध्याकाण्डः समाप्तः॥

॥ अरण्यकाण्डः॥

॥ प्रथमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र दिनं स्थित्वा प्रभाते रघुनन्दनः। स्नात्वा मुनिं समामन्त्र्य प्रयाणायोपचक्रमे॥१॥

मुने गच्छामहे सर्वे मुनिमण्डलमण्डितम्। विपिनं दण्डकं यत्र त्वमाज्ञातुमिहार्हसि॥२॥

मार्गप्रदर्शनार्थाय शिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि। श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रहस्यात्रिर्महायशाः। प्राह तत्र रघुश्रेष्ठं राम राम सुराश्रय॥३॥

सर्वस्य मार्गद्रष्टा त्वं तव को मार्गदर्शकः। तथाऽपि दर्शयिष्यन्ति तव लोकानुसारिणः॥४॥

इति शिष्यान् समादिश्य स्वयं किञ्चित्तमन्वगात्। रामेण वारितः प्रीत्या अत्रिः स्वभवनं ययौ॥५॥

क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददर्श महतीं नदीम्। अत्रेः शिष्यानुवाचेदं रामो राजीवलोचनः॥६॥

नद्याः सन्तरणे कश्चिदुपायो विद्यते न वा। ऊचुस्ते विद्यते नौका सुदृढा रघुनन्दन॥७॥ तारियष्यामहे युष्मान् वयमेव क्षणादिह।
ततो नावि समारोप्य सीतां राघवलक्ष्मणौ॥८॥
क्षणात्सन्तारयामासुर्नदीं मुनिकुमारकाः।
रामाभिनन्दिताः सर्वे जग्मुरत्रेरथाश्रमम्॥९॥
तावेत्य विपिनं घोरं झिल्लीझङ्कारनादितम्।
नानामृगगणाकीर्णं सिंहव्याघ्रादिभीषणम्॥१०॥
राक्षसैर्घोररूपेश्च सेवितं रोमहर्षणम्।
प्रविश्च विपिनं घोरं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्॥११॥
इतः परं प्रयत्नेन गन्तव्यं सहितेन मे।
धनुर्गुणेन संयोज्य शरानिप करे द्धत्॥१२॥

अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्त्वमन्वेहि धनुर्धर। आवयोर्मध्यगा सीता मायेवाऽऽत्मपरात्मनोः॥१३॥

चक्षुश्चारय सर्वत्र दृष्टं रक्षोभयं महत्। विद्यते दण्डकारण्ये श्रुतपूर्वमरिन्दम॥१४॥

इत्येवं भाषमाणौ तौ जग्मतुः सार्धयोजनम्। तत्रैका पुष्करिण्यास्ते कल्हार्कुमुदोत्पलैः॥१५॥ अम्बुजैः शीतलोदेन शोभमाना व्यदृश्यत। तत्समीपमथो गत्वा पीत्वा तत्सिललं शुभम्॥१६॥ ऊषुस्ते सलिलाभ्याशे क्षणं छायामुपाश्रिताः। ततो दृदृशुरायान्तं महासत्त्वं भयानकम्॥१७॥ करालदंष्ट्रवदनं भीषयन्तं स्वगर्जितैः। वामांसे न्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम्॥१८॥ भक्षयन्तं गजव्याघ्रमहिषं वनगोचरम्। ज्यारोपितं धनुर्धृत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत्॥१९॥ पश्य भ्रातर्महाकायो राक्षसोऽयमुपागतः। आयात्यभिमुखं नोऽग्रे भीरूणां भयमावहन्॥२०॥ सज्जीकृतधनुस्तिष्ठ मा भैर्जनकनन्दिनि। इत्युक्तवा बाणमादाय स्थितो राम इवाचलः॥२१॥ स तु दृष्ट्रा रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा। अट्टहासं ततः कृत्वा भीषयन्निद्मब्रवीत्॥२२॥ कौ युवां बाणतूणीरजटावल्कलधारिणौ। मुनिवेषधरौ बालौ स्त्रीसहायौ सुदुर्मदौ॥२३॥

सुन्दरौ बत मे वऋप्रविष्टकवलोपमौ। किमर्थमागतौ घोरं वनं व्यालनिषेवितम्॥२४॥ श्रुत्वा रक्षोवचो रामः रमयमान उवाच तम्। अहं रामस्त्वयं भ्राता लक्ष्मणो मम सम्मतः॥२५॥ एषा सीता मम प्राणवल्लभा वयमागताः। पितृवाक्यं पुरस्कृत्य शिक्षणार्थं भवादृशाम्॥२६॥ तद्रामवचनमट्टहासमथाकरोत्। व्यादाय वक्रं बाहुभ्यां शूलमादाय सत्वरः॥२७॥ मां न जानासि राम त्वं विराधं लोकविश्रुतम्। मद्भयान्मुनयः सर्वे त्यक्तवा वनमितो गताः॥२८॥ यदि जीवितुमिच्छास्ति त्यक्तवा सीतां निरायुधौ। पलायत न चेच्छीघ्रं भक्षयामि युवामहम्॥२९॥ इत्युक्तवा राक्षसः सीतामादातुमभिदुद्भवे। रामश्चिच्छेद तद्बाह्न शरेण प्रहसन्निव॥३०॥ ततः क्रोधपरीतात्मा व्यादाय विकटं मुखम्। राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद परिधावतः॥३१॥

पदद्वयं विराधस्य तद्द्धुतमिवाभवत्॥३२॥

ततः सर्प इवास्येन ग्रसितुं राममापतत्। ततोऽर्धचन्द्राकारेण बाणेनास्य महच्छिरः॥३३॥ चिच्छेद रुधिरौघेण पपात धरणीतले। ततः सीता समालिङ्य प्रशशंस रघूत्तमम्॥३४॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणेरिताः। ननृतुश्चाप्सरा हृष्टा जगुर्गन्धर्विकन्नराः॥३५॥

विराधकायादितसुन्दराकृतिः

विभ्राजमानो विमलाम्बरावृतः। प्रतप्तचामीकरचारुभूषणो व्यदृश्यताग्रे गगने रविर्यथा॥३६॥

प्रणम्य रामं प्रणतार्तिहारिणम् भवप्रवाहोपरमं घृणाकरम्। प्रणम्य भूयः प्रणनाम दण्डवतः प्रपन्नसर्वार्तिहरं प्रसन्नधीः॥३७॥

विराध उवाच

श्रीराम राजीवद्लायताक्ष विद्याधरोऽहं विमलप्रकाशः। दुर्वाससाकारणकोपमूर्तिना श्राप्तः पुरा सोऽद्य विमोचितस्त्वया॥३८॥

इतः परं त्वचरणारविन्दयोः
स्मृतिः सदा मेऽस्तु भवोपशान्तये।
त्वन्नामसङ्कीर्तनमेव वाणी
करोतु मे कर्णपुटं त्वदीयम्॥३९॥

कथामृतं पातु करद्वयं ते पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात्। शिरश्च ते पादयुगप्रणामम् करोतु नित्यं भवदीयमेवम्॥४०॥

नमस्तुभ्यं भगवते विशुद्धज्ञानमूर्तये। आत्मारामाय रामाय सीतारामाय वेधसे॥४१॥ प्रपन्नं पाहि मां राम यास्यामि त्वदनुज्ञ्या। देवलोकं रघुश्रेष्ठ माया मां मा वृणोतु ते॥४२॥

इति विज्ञापितस्तेन प्रसन्नो रघुनन्दनः। ददौ वरं तदा प्रीतो विराधाय महामतिः॥४३॥ गच्छ विद्याधराशेषमायादोषगुणा जिताः। त्वया मद्दर्शनात्सद्यो मुक्तो ज्ञानवतां वरः॥४४॥ मद्भक्तिर्दुर्लभा लोके जाता चेन्मुक्तिदा यतः। अतस्त्वं भक्तिसम्पन्नः परं याहि ममाऽऽज्ञया॥४५॥ रामेण रक्षोनिधनं सुघोरम् शापाद्विमुक्तिर्वरदानमेवम् विद्याधरत्वं पुनरेव लब्धम् रामं गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान्॥४६॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः॥ १॥

॥ द्वितीयः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच विराधे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सीतया। जगाम शरभङ्गस्य वनं सर्वसुखावहम्॥१॥ शरभङ्गस्ततो दृष्ट्वा रामं सौमित्रिणा सह। आयान्तं सीतया सार्धं सम्भ्रमादुत्थितः सुधीः॥२॥

अभिगम्य सुसम्पूज्य विष्टरेषूपवेशयत्। आतिथ्यमकरोत्तेषां कन्दमूलफलादिभिः॥३॥

प्रीत्याऽऽह शरभङ्गोऽपि रामं भक्तिपरायणम्। बहुकालमिहैवाऽऽसं तपसे कृतनिश्चयः॥४॥ अद्य मत्तपसा सिद्धं यत्पुण्यं बहु विद्यते। तत्सर्वं तव दास्यामि ततो मुक्तिं व्रजाम्यहम्॥५॥

> समर्प्य रामस्य महत्सुपुण्यफलम् विरक्तः शरभङ्गयोगी। चितिं समारोहयदप्रमेयम् रामं ससीतं सहसा प्रणम्य॥६॥ ध्यायन्श्चिरं राममशेषहृतस्थम् दूर्वादलश्यामलमम्बुजाक्षम्। चीराम्बरं स्निग्धजटाकलापम् सीतासहायं सहलक्ष्मणं तम्॥७॥

को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो। स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वा स्मृतिं मे स्वयमेव यातः॥८॥ पश्यत्विदानीं देवेशो रामो दाशरथिः प्रभुः। दग्ध्वा स्वदेहं गच्छामि ब्रह्मलोकमकल्मषः॥९॥ अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघवः सदा। यद्वामाङ्के स्थिता सीता मेघस्येव तटिस्रता॥१०॥ इति रामं चिरं ध्यात्वा दृष्ट्वा च पुरतः स्थितम्। प्रज्वाल्य सहसा वह्निं दग्ध्वा पञ्चात्मकं वपुः॥११॥ दिव्यदेहधरः साक्षाद्ययौ लोकपतेः पदम्। ततो मुनिगणाः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः। आजग्मू राघवं द्रष्टुं शरभङ्गनिवेशनम्॥१२॥ दृष्ट्वा मुनिसमूहं तं जानकीरामलक्ष्मणाः। प्रणेमुः भूमौ॥१३॥ सहसा आशीर्भिरभिनन्द्याथ रामं सर्वहृदि स्थितम्। ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे धनुर्बाणधरं हरिम्॥१४॥

भूमेर्भारावताराय जातोऽसि ब्रह्मणार्थितः। जानीमस्त्वां हरि लक्ष्मीं जानकीं लक्ष्मणं तथा॥१५॥ रोषांरां राह्वचके द्वे भरतं सानुजं तथा। अतश्चादौ ऋषीणां त्वं दुःखं मोक्तुमिहार्हसि॥१६॥ आगच्छ यामो मुनिसेवितानि वनानि सर्वाणि रघूत्तम क्रमात्। द्रष्टुं सुमित्रासुतजानकीभ्याम् तदा दयाऽस्मासु दृढा भविष्यति॥१७॥ इति विज्ञापितो रामः कृताञ्जलिपुटैर्विभुः। जगाम मुनिभिः सार्धं द्रष्ट्रं मुनिवनानि सः॥१८॥ ददर्श तत्र पतितान्यनेकानि शिरांसि सः। अस्थिभूतानि सर्वत्र रामो वचनमब्रवीत्॥१९॥ अस्थीनि केषामेतानि किमर्थं पतितानि वै। तमूचुर्मुनयो राम ऋषीणां मस्तकानि हि॥२०॥ राक्षसैर्भक्षितानीश प्रमत्तानां समाधितः। अन्तरायं मुनीनां ते पश्यन्तोऽनुचरन्ति हि॥२१॥

श्रुत्वा वाक्यं मुनीनां स भयदैन्यसमन्वितम्। प्रतिज्ञामकरोद्रामो वधायाशेषरक्षसाम्॥२२॥ पूज्यमानः सदा तत्र मुनिभिर्वनवासिभिः। जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः॥२३॥ उवास कतिचित्तत्र वर्षाणि रघुनन्दनः। एवं क्रमेण सम्परयन्नृषीणामाश्रमान् विभुः॥२४॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमं प्रागात्प्रख्यातमृषिसङ्कलम्। सर्वर्तुगुणसम्पन्नं सर्वकालसुखावहम्॥२५॥ राममागतमाकण्यं सुतीक्ष्णः स्वयमागतः। अगस्त्यशिष्यो रामस्य मन्त्रोपासनतत्परः। विधिवत्पूजयामास भक्त्युत्किण्ठतलोचनः॥२६॥ सुतीक्ष्ण उवाच

त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेय सीतापते शिवविरिश्चिसमाश्रिताङ्घे।

संसारसिन्धुतरणामलपोतपाद रामाभिराम सततं तव दासदासः॥२७॥ मामद्य सर्वजगतामविगोचरस्त्वम् त्वन्मायया सुतकलत्रगृहान्धकूपे। मग्नं निरीक्ष्य मलपुद्गलिपण्डमोह-पाशानुबद्धहृद्यं स्वयमागतोऽसि॥२८॥

त्वं सर्वभूतहृद्येषु कृतालयोऽपि त्वन्मन्त्रजाप्यविमुखेषु तनोषि मायाम्। त्वन्मन्त्रसाधनपरेष्वपयाति माया सेवानुरूपफलदोऽसि यथा महीपः॥२९॥

विश्वस्य सृष्टिलयसंस्थितिहेतुरेकः त्वं मायया त्रिगुणया विधिरीशविष्णू। भासीश मोहितिधयां विविधाकृतिस्त्वम् यद्वद्रविः सलिलपात्रगतो ह्यनेकः॥३०॥

प्रत्यक्षतोऽद्य भवतश्चरणारविन्दम् पश्यामि राम तमसः परतः स्थितस्य। दृश्रूपतस्त्वमसतामविगोचरोऽपि त्वन्मन्त्रपूतहृदयेषु सदा प्रसन्नः॥३१॥ पश्यामि राम तव रूपमरूपिणोऽपि मायाविडम्बनकृतं सुमनुष्यवेषम्। कन्दर्पकोटिसुभगं कमनीयचापबाणम् दयार्द्रहृदयं स्मितचारुवऋम्॥३२॥

सीतासमेतमजिनाम्बरमप्रधृष्यम् सौमित्रिणा नियतसेवितपादपद्मम्। नीलोत्पलद्युतिमनन्तगुणं प्रशान्तम् मद्भागधेयमनिशं प्रणमामि रामम्॥३३॥

जानन्तु राम तव रूपमशेषदेश-कालाद्युपाधिरहितं घनचित्र्यकाशम्। प्रत्यक्षतोऽद्य मम गोचरमेतदेव रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे॥३४॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य रामः सस्मितमब्रवीत्। मुने जानामि ते चित्तं निर्मलं मदुपासनात्॥३५॥

अतोऽहमागतो द्रष्टुं मदृते नान्यसाधनम्। मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः॥३६॥ निरपेक्षा नान्यगतास्तेषां दृश्योऽहमन्वहम्। स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु त्वत्कृतं मत्प्रियं सदा॥३७॥

सद्भक्तिर्मे भवेत्तस्य ज्ञानं च विमलं भवेत्। त्वं ममोपासनादेव विमुक्तोऽसीह सर्वतः॥३८॥

देहान्ते मम सायूज्यं लप्स्यसे नात्र संशयः। गुरुं ते द्रष्टुमिच्छामि ह्यगस्त्यं मुनिनायकम्। किञ्चित्कालं तत्र वस्तुं मनो मे त्वरयत्यलम्॥३९॥

सुतीक्ष्णोऽपि तथेत्याह श्वो गमिष्यसि राघव। अहमप्यागमिष्यामि चिरादु दृष्टो महामुनिः॥४०॥

> अथ प्रभाते मुनिना समेतो रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन। अगस्त्यसम्भाषणलोलमानसः शनैरगस्त्यानुजमन्दिरं ययौ॥४१॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २॥

॥ तृतीयः सर्गः॥

अथ रामः सुतीक्ष्णेन जानक्या लक्ष्मणेन च। अगस्त्यस्यानुजस्थानं मध्याह्रे समपद्यत॥१॥

तेन सम्पूजितः सम्यग्भुक्त्वा मूलफलादिकम्। परेद्युः प्रातरुत्थाय जग्मुस्तेऽगस्त्यमण्डलम्॥२॥

सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं नानामृगगणैर्युतम्। पक्षिसङ्घेश्च विविधैर्नादितं नन्दनोपमम्॥३॥

ब्रह्मिषिभिदेविषिभिः सेवितं मुनिमन्दिरैः। सर्वतोऽलङ्कृतं साक्षाद् ब्रह्मलोकिमवापरम्॥४॥

बहिरेवाश्रमस्याथ स्थित्वा रामोऽब्रवीन्मुनिम्। सुतीक्ष्ण गच्छ त्वं शीघ्रमागतं मां निवेदय॥५॥

अगस्त्यमुनिवर्याय सीतया लक्ष्मणेन च। महाप्रसाद इत्युक्तवा सुतीक्ष्णः प्रययौ गुरोः॥६॥

आश्रमं त्वरया तत्र ऋषिसङ्घसमावृतम्। उपविष्टं रामभक्तेर्विशेषेण समायुतम्॥७॥ व्याख्यातराममन्त्रार्थं शिष्येभ्यश्चातिभक्तितः।
दृष्ट्वाऽगस्त्यं मुनिश्रेष्ठं सुतीक्ष्णः प्रययौ मुनेः॥८॥
दण्डवत्प्रणिपत्याह विनयावनतः सुधीः।
रामो दाशरिथर्बह्मन् सीतया लक्ष्मणेन च।
आगतो दर्शनार्थं ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलिः॥९॥

अगस्त्य उवाच शीघ्रमानय भद्रं ते रामं मम हृदिस्थितम्। तमेव ध्यायमानोऽहं काङ्क्षमाणोऽत्र संस्थितः॥१०॥ इत्युक्तवा स्वयमुत्थाय मुनिभिः सहितो द्रुतम्। अभ्यगात्परया भक्त्या गत्वा राममथाब्रवीत्॥११॥ आगच्छ राम भद्रं ते दिष्ट्या तेऽद्य समागमः। प्रियातिथिर्मम प्राप्तोऽस्यद्य मे सफलं दिनम्॥१२॥ रामोऽपि मुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः। सीतया लक्ष्मणेनापि दण्डवत्पतितो भुवि॥१३॥ द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड् राममालिङ्य भक्तितः। तुदात्रस्पर्शजाह्नादस्रवन्नेत्रजलाकुलः

गृहीत्वा करमेकेन करेण रघुनन्दनम्। जगाम स्वाश्रमं हृष्टो मनसा मुनिपुङ्गवः॥ १५॥ सुखोपविष्टं सम्पूज्य पूजया बहुविस्तरम्। भोजयित्वा यथान्यायं भोज्यैर्वन्यैरनेकधा॥१६॥ सुखोपविष्टमेकान्ते रामं शशिनिभाननम्। कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो भगवानृषिः॥१७॥ त्वदागमनमेवाहं प्रतीक्षन् समवस्थितः। यदा क्षीरसमुद्रान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा॥१८॥ भूमेर्भारापनुत्त्यर्थं रावणस्य वधाय च। तदादि दर्शनाकाङ्की तव राम तपश्चरन्। वसामि मुनिभिः सार्धं त्वामेव परिचिन्तयन्॥ १९॥ सृष्टेः प्रागेक एवासीर्निर्विकल्पोऽनुपाधिकः। त्वदाश्रया त्वद्विषया माया ते शक्तिरुच्यते॥२०॥ त्वामेव निर्गुणं शक्तिरावृणोति यदा तदा। अव्याकृतमिति प्राहुर्वेदान्तपरिनिष्ठिताः॥२१॥ मूलप्रकृतिरित्येके प्राहुर्मायेति केचन। अविद्या संसृतिर्बन्ध इत्यादि बहुधोच्यते॥२२॥

त्वया सङ्घोभ्यमाणा सा महत्तत्त्वं प्रसूयते। महत्तत्त्वादहङ्कारस्त्वया सञ्चोदितादभूत्॥२३॥ अहङ्कारो महत्तत्त्वसंवृतिस्त्रविधोऽभवत्। सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति भण्यते॥२४॥ तामसात्सूक्ष्मतन्मात्राण्यासन् भूतान्यतः परम्। स्थूलानि कमशो राम कमोत्तरगुणानि ह॥२५॥ राजसानीन्द्रियाण्येव सात्त्विका देवता मनः। तेभ्योऽभवत्सूत्ररूपं लिङ्गं सर्वगतं महत्॥२६॥ ततो विराट् समुत्पन्नः स्थूलाद्भूतकदम्बकात्। विराजः पुरुषात्सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥२७॥ देवतिर्यङ्मनुष्याश्च कालकर्मक्रमेण तु। त्वं रजोगुणतो ब्रह्मा जगतः सर्वकारणम्॥२८॥ सत्त्वाद्विष्णुस्त्वमेवास्य पालकः सद्भिरुच्यते। लये रुद्रस्त्वमेवास्य त्वन्मायागुणभेदतः॥२९॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या वृत्तयो बुद्धिजैर्गुणैः। तासां विलक्षणो राम त्वं साक्षी चिन्मयोऽव्ययः॥३०॥

सृष्टिलीलां यदा कर्तुमीहसे रघुनन्दन। अङ्गीकरोषि मायां त्वं तदा वै गुणवानिव॥३१॥ राम माया द्विधा भाति विद्याऽविद्येति ते सदा। प्रवृत्तिमार्गनिरता अविद्यावशवर्तिनः। निवृत्तिमार्गनिरता वेदान्तार्थविचारकाः॥३२॥ त्वद्भक्तिनिरता ये च ते वै विद्यामयाः स्मृताः। अविद्यावशगा ये तु नित्यं संसारिणश्च ते। विद्याभ्यासरता ये तु नित्यमुक्तास्त एव हि॥३३॥ लोके त्वद्धिक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्च ये। विद्या प्रादुर्भवेत्तेषां नेतरेषां कदाचन॥३४॥ अतस्त्वद्भक्तिसम्पन्ना मुक्ता एव न संशयः। त्वद्भक्त्यमृतहीनानां मोक्षः स्वप्नेऽपि नो भवेत्॥३५॥ किं राम बहुनोक्तेन सारं किञ्चिद्ववीमि ते।

साधवः समचित्ता ये निःस्पृहा विगतैषिणः। दान्ताः प्रशान्तास्त्वद्भक्ता निवृत्ताखिलकामनाः॥३७॥

साधुसङ्गतिरेवात्र मोक्षहेतुरुदाहृता॥३६॥

इष्टप्राप्तिविपत्त्योश्च समाः सङ्गविवर्जिताः। सन्न्यस्ताखिलकर्माणः सर्वदा ब्रह्मतत्पराः॥३८॥ यमादिगुणसम्पन्नाः सन्तुष्टा येन केनचित्। सत्सङ्गमो भवेद्यर्हि त्वत्कथाश्रवणे रतिः॥३९॥ समुदेति ततो भक्तिस्त्वयि राम सनातने। त्वद्भक्तावुपपन्नायां विज्ञानं विपुलं स्फुटम्॥४०॥ उदेति मुक्तिमार्गोऽयमाद्यश्चतुरसेवितः। तस्माद्राघव सद्भक्तिस्त्वयि मे प्रेमलक्षणा॥४१॥ सदा भूयाद्धरे सङ्गस्त्वद्भक्तेषु विशेषतः। अद्य मे सफलं जन्म भवत्सन्दर्शनादभूत्॥४२॥ अद्य मे क्रतवः सर्वे बभूवः सफलाः प्रभो। दीर्घकालं मया तप्तमनन्यमतिना तपः। तस्येह तपसो राम फलं तव यदर्चनम्॥४३॥ सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव। गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि॥४४॥ इति स्तुत्वा रमानाथमगस्त्यो मुनिसत्तमः। ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थे स्थापितं पुरा॥४५॥

अक्षय्यौ बाणतूणीरौ खङ्गो रत्नविभूषितः। जिह राघव भूभारभृतं राक्षसमण्डलम्॥४६॥ यदर्थमवतीर्णोऽसि मायया मनुजाकृतिः। इतो योजनयुग्मे तु पुण्यकाननमण्डितः॥४७॥ अस्ति पञ्चवटीनाम्रा आश्रमो गौतमीतटे। नेतव्यस्तत्र ते कालः शेषो रघुकुलोद्वह॥४८॥ तत्रैव बहुकार्याणि देवानां कुरु सत्पते॥४९॥ श्रुत्वा तदाऽगस्त्यसुभाषितं वचः स्तोत्रं च तत्त्वार्थसमन्वितं विभुः। मुनिं समाभाष्य मुदान्वितो ययौ प्रदर्शितं मार्गमशेषविद्धरिः॥५०॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामयणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः॥ ३॥

॥ चतुर्थः सर्गः॥

श्री महादेव उवाच

मार्गे व्रजन् ददर्शाथ शैलश्ङ्गमिव स्थितम्। वृद्धं जटायुषं रामः किमेतदिति विस्मितः॥१॥ धनुरानय सौमित्रे राक्षसोऽयं पुरः स्थितः। इत्याह लक्ष्मणं रामो हनिष्याम्युषिभक्षकम्॥२॥ तच्छुत्वा रामवचनं गृध्रराड् भयपीडितः। वधाहीं ऽहं न ते राम पितुस्ते ऽहं प्रियः सखा॥३॥ जटायुर्नाम भद्रं ते गृध्रोऽहं प्रियकृत्तव॥४॥ पञ्चवट्यामहं वत्स्ये तवैव प्रियकाम्यया। मृगयायां कदाचित्तु प्रयाते लक्ष्मणेऽपि च॥५॥ सीता जनककन्या मे रक्षितव्या प्रयत्नतः। श्रुत्वा तद्गुघ्रवचनं रामः सस्नेहमबवीत्॥६॥ साधु गृध्र महाराज तथैव कुरु मे प्रियम्। अत्रैव मे समीपस्थो नातिदूरे वने वसन्॥७॥ इत्यामन्त्रितमालिङ्य ययौ पञ्चवटीं प्रभुः। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया रघुनन्दनः॥८॥

गत्वा ते गौतमीतीरं पञ्चवट्यां सुविस्तरम्। मन्दिरं कारयामास लक्ष्मणेन सुबुद्धिना॥९॥ तत्र ते न्यवसन् सर्वे गङ्गाया उत्तरे तटे। कदम्बपनसाम्रादिफलवृक्षसमाकुले ॥१०॥ विविक्ते जनसम्बाधवर्जिते नीरुजस्थले। विनोदयन् जनकजां लक्ष्मणेन विपश्चिता॥११॥ अध्युवास सुखं रामो देवलोक इवापरः। कन्दमूलफलादीनि लक्ष्मणोऽनुदिनं तयोः॥१२॥ आनीय प्रददौ रामसेवातत्परमानसः। धनुर्बाणधरो नित्यं रात्रौ जागर्ति सर्वतः॥१३॥ स्नानं कुर्वन्त्यनुदिनं त्रयस्ते गौतमीजले। उभयोर्मध्यगा सीता कुरुते च गमागमौ॥ १४॥ आनीय सिललं नित्यं लक्ष्मणः प्रीतमानसः। सेवतेऽहरहः प्रीत्या एवमासन् सुखं त्रयः॥१५॥ एकदा लक्ष्मणो राममेकान्ते समुपस्थितम्। विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ परमेश्वरम्॥१६॥

भगवन् श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम्। त्वत्तः कमलपत्राक्ष सङ्खेपाद्वक्तुमर्हिस॥१७॥

ज्ञानं विज्ञानसहितं भक्तिवैराग्यबृंहितम्। आचक्ष्व मे रघुश्रेष्ठ वक्ता नान्योऽस्ति भूतले॥१८॥

श्रीराम उवाच

शृणु वक्ष्यामि ते वत्स गुह्याद्गुह्यतरं परम्। यद्विज्ञाय नरो जह्यात्सद्यो वैकल्पकं भ्रमम्॥१९॥

आदौ मायास्वरूपं ते वक्ष्यामि तदनन्तरम्। ज्ञानस्य साधनं पश्चाज्ज्ञानविज्ञानसंयुतम्॥२०॥

ज्ञेयं च परमात्मानं यज्ज्ञात्वा मुच्यते भयात्। अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिस्तु या भवेत्॥२१॥

सैव माया तयैवासौ संसारः परिकल्प्यते। रूपे द्वे निश्चिते पूर्वे मायायाः कुलनन्दन॥२२॥

विक्षेपावरणे तत्र प्रथमं कल्पयेज्जगत्। लिङ्गाद्यब्रह्मपर्यन्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदतः॥२३॥ अपरं त्विखलं ज्ञानरूपमावृत्य तिष्ठति। मायया कल्पितं विश्वं परमात्मनि केवले॥२४॥

रज्जौ भुजङ्गवद्भान्त्या विचारे नास्ति किञ्चन। श्रूयते दृश्यते यद्यत्मर्यते वा नरैः सदा॥२५॥

असदेव हि तत्सर्वं यथा स्वप्नमनोरथौ। देह एव हि संसारवृक्षमूलं दृढं स्मृतम्॥२६॥

तन्मूलः पुत्रदारादिबन्धः किं तेऽन्यथाऽऽत्मनः॥२७॥

देहस्तु स्थूलभूतानां पञ्च तन्मात्रपञ्चकम्। अहङ्कारश्च बुद्धिश्च इन्द्रियाणि तथा दश॥२८॥

चिदाभासो मनश्चैव मूलप्रकृतिरेव च। एतत्क्षेत्रमिति ज्ञेयं देह इत्यभिधीयते॥२९॥

एतैर्विलक्षणो जीवः परमात्मा निरामयः। तस्य जीवस्य विज्ञाने साधनान्यपि मे शृणु॥३०॥

जीवश्च परमात्मा च पर्यायो नात्र भेद्धीः। मानाभावस्तथा दम्भहिंसादिपरिवर्जनम्॥३१॥

पराक्षेपादिसहनं सर्वत्रावकता तथा। मनोवाकायसद्भक्त्या सद्गुरोः परिसेवनम्॥३२॥ बाह्याभ्यन्तरसंशुद्धिः स्थिरता सिक्वियादिषु। मनोवाकायदण्डश्च विषयेषु निरीहता॥३३॥ निरहङ्कारता जन्मजराद्यालोचनं तथा। असक्तिः स्नेह्यून्यत्वं पुत्रदारधनादिषु॥३४॥ इष्टानिष्टागमे नित्यं चित्तस्य समता तथा। मिय सर्वात्मके रामे ह्यनन्यविषया मितः॥३५॥ जनसम्बाधरहितशुद्धदेशनिषेवणम् । प्राकतेर्जनसङ्घेश्च ह्यरितः सर्वदा भवेत्॥ ३६॥ आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थावलोकनम्। उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानं विपरीतैर्विपर्ययः॥३७॥ बुद्धिप्राणमनोदेहाहङ्कतिभ्यो विलक्षणः। चिदात्माऽहं नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम्॥३८॥ येन ज्ञानेन संवित्ते तज्ज्ञानं निश्चितं च मे। विज्ञानं च तदैवैतत्साक्षादनुभवेद्यदा॥३९॥

आत्मा सर्वत्र पूर्णः स्याचिदानन्दात्मकोऽव्ययः। बुद्याद्युपाधिरहितः परिणामादिवर्जितः॥४०॥

स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन्ननपावृतः। एक एवाद्वितीयश्च सत्यज्ञानादिलक्षणः॥४१॥ असङ्गः स्वप्रभो द्रष्टा विज्ञानेनावगम्यते। आचार्यशास्त्रोपदेशाद्यैक्यज्ञानं यदा भवेत्॥४२॥ आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्या तदैव हि। लीयते कार्यकरणैः सहैव परमात्मनि॥४३॥ सावस्था मुक्तिरित्युक्ता ह्युपचारोऽयमात्मिन। इदं मोक्षस्वरूपं ते कथितं रघुनन्दन॥४४॥ ज्ञानविज्ञानवैराग्यसहितं मे परात्मनः। किन्त्वेतदुर्लभं मन्ये मद्भक्तिविमुखात्मनाम्॥४५॥ चक्षुष्मतामपि तथा रात्रौ सम्यङ् न दृश्यते। पदं दीपसमेतानां दृश्यते सम्यगेव हि॥४६॥ एवं मद्भक्तियुक्तानामात्मा सम्यक् प्रकाशते। मद्भक्तेः कारणं किञ्चिद्वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः॥४७॥

मद्भक्तसङ्गो मत्सेवा मद्भक्तानां निरन्तरम्। एकाद्रयुपवासादि मम पर्वानुमोदनम्॥४८॥

मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रितः। मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम्॥४९॥

एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी। मयि सञ्जायते नित्यं ततः किमवशिष्यते॥५०॥

अतो मद्भक्तियुक्तस्य ज्ञानं विज्ञानमेव च। वैराग्यं च भवेच्छीघ्रं ततो मुक्तिमवाप्नुयात्॥५१॥

कथितं सर्वमेतत्ते तव प्रश्नानुसारतः। अस्मिन्मनः समाधाय यस्तिष्ठेत्स तु मुक्तिभाक्॥५२॥

न वक्तव्यमिदं यलान्मद्भक्तिविमुखाय हि। मद्भक्ताय प्रदातव्यमाह्यापि प्रयलतः॥५३॥

य इदं तु पठेन्नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। अज्ञानपटलध्वान्तं विधूय परिमुच्यते॥५४॥ भक्तानां मम योगिनां सुविमलस्वान्तातिशान्तात्मनाम् मत्सेवाभिरतात्मनां च विमलज्ञानात्मनां सर्वदा। सङ्गं यः कुरुते सदोद्यतमितस्तत्सेवनानन्यधीः मोक्षस्तस्य करे स्थितोऽहमिनशं दृश्यो भवे नान्यथा॥५५॥ ॥इति श्रीमद्ध्यात्मरामयणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥४॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

श्री महादेव उवाच तस्मिन् काले महारण्ये राक्षसी कामरूपिणी। विचचार महासत्त्वा जनस्थानिनवासिनी॥१॥ एकदा गौतमीतीरे पञ्चवट्यां समीपतः। पद्मवज्राङ्कशाङ्कानि पदानि जगतीपतेः॥२॥ दृष्ट्वा कामपरीतात्मा पादसौन्दर्यमोहिता। पश्यन्ती सा शनैरायाद्राघवस्य निवेशनम्॥३॥ तत्र सा तं रमानाथं सीतया सह संस्थितम्। कन्दर्पसदृशं रामं दृष्ट्वा कामविमोहिता॥४॥

राक्षसी राघवं प्राह कस्य त्वं कः किमाश्रमे। युक्तो जटावल्कलाद्यैः साध्यं किं तेऽत्र मे वद्॥५॥ अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी। भगिनी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य महात्मनः॥६॥ खरेण सहिता भ्रात्रा वसाम्यत्रैव कानने। राज्ञा दत्तं च मे सर्वं मुनिभक्षा वसाम्यहम्॥७॥ त्वां तु वेदितुमिच्छामि वद मे वदतां वर। तामाह रामनामाहमयोध्याधिपतेः सुतः॥८॥ एषा मे सुन्दरी भार्या सीता जनकनन्दिनी। स तु भ्राता कनीयान् मे लक्ष्मणोऽतीवसुन्दरः॥९॥ किं कृत्यं ते मया ब्रूहि कार्यं भुवनसुन्दरि। इति रामवचः श्रुत्वा कामार्ता साबवीदिदम्॥१०॥ एहि राम मया सार्धं रमस्व गिरिकानने। कामार्ताहं न शकोमि त्यक्तुं त्वां कमलेक्षणम्॥११॥ रामः सीतां कटाक्षेण परयन् सस्मितमब्बीत्। भार्या ममेषा कल्याणी विद्यते ह्यनपायिनी॥१२॥ त्वं तु सापल्पदुःखेन कथं स्थास्यसि सुन्दरि। बहिरास्ते मम भ्राता लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः॥१३॥

तवानुरूपो भविता पतिस्तेनैव सञ्चर। इत्युक्ता लक्ष्मणं प्राह पतिर्मे भव सुन्दर॥१४॥

भ्रातुराज्ञां पुरस्कृत्य सङ्गच्छावोऽद्य मा चिरम्। इत्याह राक्षसी घोरा लक्ष्मणं काममोहिता॥१५॥ तामाह लक्ष्मणः साध्वि दासोऽहं तस्य धीमतः। दासी भविष्यसि त्वं तु ततो दुःखतरं नु किम्॥१६॥

तमेव गच्छ भद्रं ते स तु राजाखिलेश्वरः। तच्छुत्वा पुनरप्यागाद्राघवं दुष्टमानसा॥१७॥

कोधाद्राम किमर्थं मां भ्रामयस्यनवस्थितः। इदानीमेव तां सीतां भक्षयामि तवाग्रतः॥१८॥ इत्युक्तवा विकटाकारा जानकीमनुधावति। ततो रामाज्ञया खङ्गमादाय परिगृह्य ताम्॥१९॥

चिच्छेद नासां कर्णों च लक्ष्मणो लघुविक्रमः। ततो घोरध्वनिं कृत्वा रुधिराक्तवपुर्दूतम्॥२०॥

क्रन्दमाना पपाताग्रे खरस्य परुषाक्षरा। किमेतदिति तामाह खरः खरतराक्षरः॥२१॥ केनैवं कारितासि त्वं मृत्योर्वक्रानुवर्तिना। वद् मे तं विधिष्यामि कालकल्पमपि क्षणात्॥ २२॥ तमाह राक्षसी रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः। दण्डकं निर्भयं कुर्वन्नास्ते गोदावरीतटे॥२३॥ मामेवं कृतवान्स्तस्य भ्राता तेनैव चोदितः। यदि त्वं कुलजातोऽसि वीरोऽसि जिह तौ रिपू॥२४॥ तयोस्तु रुधिरं पास्ये भक्षयैतौ सुदुर्मदौ। नो चेत्र्राणान् परित्यज्य यास्यामि यमसादनम्॥२५॥ तच्छुत्वा त्वरितं प्रागात्खरः क्रोधेन मूर्च्छितः। चतुर्द्श सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्॥२६॥ चोदयामास रामस्य समीपं वधकाङ्क्षया। खरश्च त्रिशिराश्चैव दूषणश्चैव राक्षसः॥२७॥ सर्वे रामं ययुः शीघ्रं नानाप्रहरणोद्यताः। श्रुत्वा कोलाहलं तेषां रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥२८॥

श्रूयते विपुलः शब्दो नूनमायान्ति राक्षसाः। भविष्यति महद्युद्धं नूनमद्य मया सह॥२९॥ सीतां नीत्वा गुहां गत्वा तत्र तिष्ठ महाबल। हन्त्रमिच्छाम्यहं सर्वान् राक्षसान् घोररूपिणः॥३०॥ अत्र किञ्चिन्न वक्तव्यं शापितोऽसि ममोपरि। तथेति सीतामादाय लक्ष्मणो गह्नरं ययौ॥३१॥ रामः परिकरं बद्धा धनुरादाय निष्ठुरम्। तूणीरावक्षयशरौ बद्धायत्तोऽभवत्प्रभुः॥३२॥ तत आगत्य रक्षांसि रामस्योपरि चिक्षिपुः। आयुधानि विचित्राणि पाषाणान् पाद्पानपि॥३३॥ तानि चिच्छेद रामोऽपि लीलया तिलशः क्षणात्। ततो बाणसहस्रेण हत्वा तान् सर्वराक्षसान्॥३४॥ खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम्। जघान प्रहरार्धेन सर्वानेव रघूत्तमः॥३५॥ लक्ष्मणोऽपि गुहामध्यात्सीतामादाय राघवे। समर्प्य राक्षसान् दृष्ट्वा हतान् विस्मयमाययौ॥३६॥

सीता रामं समालिङ्य प्रसन्नमुखपङ्कजा। रास्त्रवणानि चाङ्गेषु ममार्ज जनकात्मजा॥३७॥

साऽपि दुद्राव दृष्ट्वा तान् हतान् राक्षसपुङ्गवान्। लङ्कां गत्वा सभामध्ये क्रोशन्ती पादसन्निधौ॥३८॥

रावणस्य पपातोर्व्यां भगिनी तस्य रक्षसः। दृष्ट्वा तां रावणः प्राह भगिनीं भयविद्वलाम्॥३९॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्से त्वं विरूपकरणं तव। कृतं शकेण वा भद्रे यमेन वरुणेन वा॥४०॥

कुबेरेणाथवा ब्रूहि भस्मीकुर्यां क्षणेन तम्। राक्षसी तमुवाचेदं त्वं प्रमत्तो विमूढधीः॥४१॥

पानासक्तः स्त्रीविजितः षण्ढः सर्वत्र लक्ष्यसे। चारचक्षुर्विहीनस्त्वं कथं राजा भविष्यसि॥४२॥

खरश्च निहतः सङ्ख्ये दूषणिस्त्रिशिरास्तथा। चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां महात्मनाम्॥४३॥ निहतानि क्षणेनैव रामेणासुरशत्रुणा। जनस्थानमशेषेण मुनीनां निर्भयं कृतम्। न जानासि विमूढस्त्वमत एव मयोच्यते॥४४॥

रावण उवाच

को वा रामः किमर्थं वा कथं तेनासुरा हताः। सम्यक्कथय मे तेषां मूलघातं करोम्यहम्॥४५॥ शूर्पणखोवाच

जनस्थानाद्हं याता कदाचित् गौतमीतटे। तत्र पञ्चवटी नाम पुरा मुनिजनाश्रया॥४६॥ तत्राश्रमे मया दृष्टो रामो राजीवलोचनः। धनुर्बाणधरः श्रीमान् जटावल्कलमण्डितः॥४७॥ कनीयाननुजस्तस्य लक्ष्मणोऽपि तथाविधः। तस्य भार्या विशालाक्षी रूपिणी श्रीरिवापरा॥४८॥ देवगन्धर्वनागानां मनुष्याणां तथाविधा। न दृष्टा न श्रुता राजन् द्योतयन्ती वनं शुभा॥४९॥ आनेतुमहमुद्युक्ता तां भार्यार्थं तवानघ। लक्ष्मणो नाम तद्भाता चिच्छेद मम नासिकाम्॥५०॥

कर्णौ च नोदितस्तेन रामेण स महाबलः। ततोऽहमतिदुःखेन रुदती खरमन्वगाम्॥५१॥

सोऽपि रामं समासाद्य युद्धं राक्षसयूथपैः। अतः क्षणेन रामेण तेनैव बलशालिना॥५२॥

सर्वे तेन विनष्टा वै राक्षसा भीमविक्रमाः। यदि रामो मनः कुर्यात्त्रैलोक्यं निमिषार्घतः॥५३॥

भस्मीकुर्यान्न सन्देह इति भाति मम प्रभो। यदि सा तव भार्या स्यात्सफलं तव जीवितम्॥५४॥

अतो यतस्व राजेन्द्र यथा ते वल्लभा भवेत्। सीता राजीवपत्राक्षी सर्वलोकैकसुन्दरी॥५५॥

साक्षाद्रामस्य पुरतः स्थातुं त्वं न क्षमः प्रभो। मायया मोहयित्वा तु प्राप्स्यसे तां रघूत्तमम्॥५६॥ श्रुत्वा तत्सूक्तवाक्यैश्च दानमानादिभिस्तथा। आश्वास्य भगिनीं राजा प्रविवेश स्वकं गृहम्। तत्र चिन्तापरो भूत्वा निद्रां रात्रौ न लब्धवान्॥५७॥

> एकेन रामेण कथं मनुष्य मात्रेण नष्टः सबलः खरो मे। भ्राता कथं मे बलवीर्यदर्प-युतो विनष्टो बत राघवेण॥५८॥

यद्वा न रामो मनुजः परेशो मां हन्तुकामः सबलं बलौघैः। सम्प्रार्थितोऽयं दुहिणेन पूर्वम् मनुष्यरूपोऽद्य रघोः कुलेऽभूत्॥५९॥

वध्यो यदि स्यां परमात्मनाहम् वैकुण्ठराज्यं परिपालयेऽहम्। नो चेदिदं राक्षसराज्यमेव भोक्ष्ये चिरं राममतो व्रजामि॥६०॥ इत्थं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम्। विरोधबुद्धैव हरि प्रयामि द्रुतं न भक्त्या भगवान् प्रसीदेत्॥६१॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामयणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥५॥

॥ षष्ठः सर्गः॥

विचिन्त्यैवं निशायां स प्रभाते रथमास्थितः। रावणो मनसा कार्यमेकं निश्चित्य बुद्धिमान्॥१॥

ययौ मारीचसदनं परं पारमुदन्वतः। मारीचस्तत्र मुनिवज्जटावल्कलधारकः॥२॥

ध्यायन् हृदि परात्मानं निर्गुणं गुणभासकम्। समाधिविरमेऽपश्यद्रावणं गृहमागतम्॥३॥ द्रुतमुत्थाय चालिञ्च पूजयित्वा यथाविधि। कृतातिथ्यं सुखासीनं मारीचो वाक्यमब्रवीत्॥४॥ समागमनमेतत्ते रथेनैकेन रावण। चिन्तापर इवाभासि हृदि कार्यं विचिन्तयन्॥५॥ ब्रूहि मे न हि गोप्यं चेत्करवाणि तव प्रियम्। न्याय्यं चेद्रूहि राजेन्द्र वृजिनं मां स्पृशेन्न हि॥६॥

रावण उवाच अस्ति राजा दशरथः साकेताधिपतिः किल। रामनामा सुतस्तस्य ज्येष्टः सत्यपराक्रमः॥७॥ विवासयामास सुतं वनं वनजनप्रियम्। भार्यया सहितं भ्रात्रा लक्ष्मणेन समन्वितम्॥८॥ स आस्ते विपिने घोरे पञ्चवट्याश्रमे शुभे। तस्य भार्या विशालाक्षी सीता लोकविमोहिनी॥९॥ रामो निरपराधान्मे राक्षसान् भीमविक्रमान्। खरं च हत्वा विपिने सुखमास्तेऽतिनिर्भयः॥१०॥ भगिन्याः शूर्पणखाया निर्दोषायाश्च नासिकाम्। कर्णों चिच्छेद दुष्टात्मा वने तिष्ठति निर्भयः॥११॥ अतस्त्वया सहायेन गत्वा तत्प्राणवल्लभाम्। आनयिष्यामि विपिने रहिते राघवेण ताम्॥१२॥

त्वं तु मायामृगो भूत्वा ह्याश्रमाद्पनेष्यसि। रामं च लक्ष्मणं चैव तदा सीतां हराम्यहम्॥१३॥

त्वं तु तावत्सहायं मे कृत्वा स्थास्यिस पूर्ववत्। इत्येवं भाषमाणं तं रावणं वीक्ष्य विस्मितः॥१४॥

केनेदमुपदिष्टं ते मूलघातकरं वचः। स एव शत्रुर्वध्यश्च यस्त्वन्नाशं प्रतीक्षते॥१५॥

रामस्य पौरुषं स्मृत्वा चित्तमद्यापि रावण। बालोऽपि मां कौशिकस्य यज्ञसंरक्षणाय सः॥१६॥

आगतस्त्विषुणैकेन पातयामास सागरे। योजनानां शतं रामस्तदादि भयविह्वलः॥१७॥

स्मृत्वा स्मृत्वा तदेवाहं रामं पश्यामि सर्वतः॥१८॥

दण्डकेऽपि पुनरप्यहं वने
पूर्ववैरमनुचिन्तयन् हृदि।
तीक्ष्णशृङ्गमृगरूपमेकदा
मादृशैर्बहुभिरावृतोऽभ्ययाम्॥१९॥

राघवं जनकजासमन्वितम् लक्ष्मणेन सहितं त्वरान्वितः। आगतोऽहमथ हन्तुमुद्यतो मां विलोक्य शरमेकमक्षिपत्॥२०॥

तेन विद्धहृद्योऽहृमुद्धमनः राक्षसेन्द्र पतितोऽस्मि सागरे। तत्प्रभृत्यहमिदं समाश्रितः स्थानमूर्जितमिदं भयार्दितः॥२१॥

राममेव सततं विभावये भीतभीत इव भोगराशितः। राजरत्नरमणीरथादिकम् श्रोत्रयोर्यदि गतं भयं भवेत्॥ २२॥

राम आगत इहेतिशङ्कया बाह्यकार्यमपि सर्वमत्यजम्। निद्रया परिवृतो यदा स्वपे राममेव मनसानुचिन्तयन्॥२३॥

स्वप्तदृष्टिगतराघवं बोधितो विगतनिद्र आस्थितः। तद्भवानिप विमुच्य चाग्रहम् राघवं प्रति गृहं प्रयाहि भोः॥२४॥ रक्ष राक्षसकुलं चिरागतम् तत्स्मृतौ सकलमेव नश्यति। तव हितं वदतो मम भाषितम् परिगृहाण परात्मनि राघवे॥२५॥ त्यज विरोधमतिं भज भक्तितः परमकारुणिको रघुनन्दनः अहमशेषमिदं मुनिवाक्यतः अशृणवमादियुगे परमेश्वरः। ब्रह्मणार्थित उवाच तं हरिः किं तवेप्सितमहं करवाणि तत्॥२६॥ ब्रह्मणोक्तमरविन्दलोचन त्वं प्रयाहि भुवि मानुषं वपुः। दशरथात्मजभावमञ्जसा जिह रिपुं दशकन्धरं हरे॥२७॥

अतो न मानुषो रामः साक्षान्नारायणोऽव्ययः। मायामानुषवेषेण वनं यातोऽतिनिर्भयः॥ २८॥ भूभारहरणार्थाय गच्छ तात गृहं सुखम्। श्रुत्वा मारीचवचनं रावणः प्रत्यभाषत॥२९॥ परमात्मा यदा रामः प्रार्थितो ब्रह्मणा किल। मां हन्तुं मानुषो भूत्वा यत्नादिह समागतः॥३०॥ करिष्यत्यचिरादेव सत्यसङ्कल्प ईश्वरः। अतोऽहं यत्नतः सीतामानेष्याम्येव राघवात्॥३१॥ वधे प्राप्ते रणे वीर प्राप्स्यामि परमं पदम्। यद्वा रामं रणे हत्वा सीतां प्राप्स्यामि निर्भयः॥३२॥ तदुत्तिष्ठ महाभाग विचित्रमृगरूपधृक्। रामं सलक्ष्मणं शीघ्रमाश्रमाद्तिदूरतः॥३३॥ आकम्य गच्छ त्वं शीघ्रं सुखं तिष्ठ यथा पुरा। अतः परं चेद्यत्किञ्चिद्धाषसे मद्विभीषणम्॥३४॥ हनिष्याम्यसिनानेन त्वामत्रैव न संशयः।

मारीचस्तद्वचः श्रुत्वा स्वात्मन्येवान्वचिन्तयत्॥३५॥

यदि मां राघवो हन्यात्तदा मुक्तो भवार्णवात्। मां हन्याद्यदि चेदुष्टस्तदा मे निरयो ध्रुवम्॥३६॥

इति निश्चित्य मरणं रामादुत्थाय वेगतः। अबवीद्रावणं राजन् करोम्याज्ञां तव प्रभो॥३७॥

इत्युक्तवा रथमास्थाय गतो रामाश्रमं प्रति। शुद्धजाम्बूनदप्रख्यो मृगोऽभूद्रौप्यबिन्दुकः॥३८॥

रत्नशृङ्गो मणिखुरो नीलरत्नविलोचनः। विद्युत्प्रभो विमुग्धास्यो विचचार वनान्तरे॥३९॥

रामाश्रमपदस्यान्ते सीतादृष्टिपथे चरन्॥४०॥

क्षणं च घावत्यवतिष्ठते क्षणम् समीपमागत्य पुनर्भयावृतः। एवं स मायामृगवेषरूपधृकः चचार सीतां परिमोहयन् खलः॥४१॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामयणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे षष्ठः सर्गः॥ ६॥ सप्तमः सर्गः

॥सप्तमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

अथ रामोऽपि तत्सर्वं ज्ञात्वा रावणचेष्टितम्। उवाच सीतामेकान्ते शृणु जानिक मे वचः॥१॥ रावणो भिक्षुरूपेण आगमिष्यति तेऽन्तिकम्। त्वं तु छायां त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश्र॥२॥

अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममऽऽज्ञ्या। रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत्प्राप्स्यसे शुभे॥३॥

श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं साऽपि तत्र तथाऽकरोत्। मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले॥४॥

मायासीता तदाऽपश्यन्मृगं मायाविनिर्मितम्। हसन्ती राममभ्येत्य प्रोवाच विनयान्विता॥५॥

पश्य राम मृगं चित्रं कानकं रत्नभूषितम्। विचित्रबिन्दुभिर्युक्तं चरन्तमकुतोभयम्। बद्धा देहि मम क्रीडामृगो भवतु सुन्दरः॥६॥ तथेति धनुरादाय गच्छन् लक्ष्मणमब्रवीत्। रक्ष त्वमतियत्नेन सीतां मत्प्राणवल्लभाम्॥७॥ मायिनः सन्ति विपिने राक्षसा घोरदर्शनाः। अतोऽत्रावहितः साध्वीं रक्ष सीतामनिन्दिताम्॥८॥ लक्ष्मणो राममाहेदं देवायं मृगरूपधृक्। मारीचोऽत्र न सन्देह एवम्भूतो मृगः कुतः॥९॥

श्रीराम उवाच यदि मारीच एवायं तदा हन्मि न संशयः। मृगश्चेदानयिष्यामि सीताविश्रमहेतवे॥१०॥ गमिष्यामि मृगं बद्धा ह्यानियष्यामि सत्वरः। त्वं प्रयत्नेन सन्तिष्ठ सीतासंरक्षणोद्यतः॥११॥ इत्युक्तवा प्रययौ रामो मायामृगमनुद्रतः। माया यदाश्रया लोकमोहिनी जगदाकृतिः॥१२॥ निर्विकारश्चिदात्माऽपि पूर्णोऽपि मृगमन्वगात्। भक्तानुकम्पी भगवानिति सत्यं वचो हरिः॥१३॥ कर्तुं सीताप्रियार्थाय जानन्नपि मृगं ययौ। अन्यथा पूर्णकामस्य रामस्य विदितात्मनः॥१४॥

मृगेण वा स्त्रिया वाऽपि किं कार्यं परमात्मनः॥१५॥ कदाचिदु दृश्यतेऽभ्याशे क्षणं धावति लीयते। दृश्यते च ततो दूरादेवं राममपाहरत्। ततो रामोऽपि विज्ञाय राक्षसोऽयमिति स्फुटम्॥१६॥ विव्याध शरमादाय राक्षसं मृगरूपिणम्। पपात रुधिराक्तास्यो मारीचः पूर्वरूपधृक्॥१७॥ हा हतोऽस्मि महाबाहो त्राहि लक्ष्मण मां द्भुतम्। इत्युक्तवा रामवद्वाचा पपात रुधिराशनः॥१८॥ यन्नामाज्ञोऽपि मरणे स्मृत्वा तत्साम्यमाप्नुयात्। किमुताये हरि पश्यन्स्तेनैव निहतोऽसुरः॥१९॥ तदेहादुत्थितं तेजः सर्वलोकस्य पश्यतः। राममेवाविशद्देवा विस्मयं परमं ययुः॥२०॥ किं कर्म कृत्वा किं प्राप्तः पातकी मुनिहिंसकः। अथवा राघवस्यायं महिमा नात्र संशयः॥२१॥ रामबाणेन संविद्धः पूर्वं राममनुस्मरन्। भयात्सर्वं परित्यज्य गृहवित्तादिकं च यत्॥ २२॥

हृदि रामं सदा ध्यात्वा निर्धूताशेषकल्मषः। अन्ते रामेण निहतः पश्यन् राममवाप सः॥२३॥ हिजो वा राक्षसो वाऽपि पापी वा धार्मिकोऽपि वा। त्यजन् कलेवरं रामं स्मृत्वा याति परं पदम्॥२४॥ इति तेऽन्योन्यमाभाष्य ततो देवा दिवं ययुः। रामस्तचिन्तयामास म्रियमाणोऽसुराधमः॥२५॥ हा लक्ष्मणेति मद्वाक्यमनुकुर्वन्ममार किम्। श्रुत्वा मद्वाक्यसदृशं वाक्यं सीताऽपि किं भवेत्॥२६॥ इति चिन्तापरीतात्मा रामो दूरान्त्र्यवर्तत। सीता तद्भाषितं श्रुत्वा मारीचस्य दुरात्मनः॥२७॥ भीतातिदुःखसंविग्ना लक्ष्मणं त्विदमब्रवीत्। गच्छ लक्ष्मण वेगेन भ्राता तेऽसुरपीडितः॥२८॥ हा लक्ष्मणेति वचनं भ्रातुस्ते न शृणोषि किम्। तामाह लक्ष्मणो देवि रामवाक्यं न तद्भवेत्॥२९॥ यः कश्चिद्राक्षसो देवि म्रियमाणोऽब्रवीद्वचः। रामस्त्रैलोक्यमपि यः कुद्धो नाशयति क्षणात्॥३०॥

स कथं दीनवचनं भाषतेऽमरपूजितः। कुद्धा लक्ष्मणमालोक्य सीता बाष्पविलोचना॥३१॥ प्राह लक्ष्मण दुर्बुद्धे भ्रातुर्व्यसनमिच्छसि। प्रेषितो भरतेनैव रामनाशाभिकाङ्क्षिणा॥३२॥ मां नेतुमागतोऽसि त्वं रामनाश उपस्थिते। न प्राप्स्यसे त्वं मामद्य पश्य प्राणान्स्त्यजाम्यहम्॥३३॥ न जानातीदृशं रामस्त्वां भार्याहरणोद्यतम्। रामादन्यं न स्पृशामि त्वां वा भरतमेव वा॥३४॥ इत्युक्तवा वध्यमाना सा स्वबाहुभ्यां रुरोद् ह। तच्छुत्वा लक्ष्मणः कर्णौ पिधायातीव दुःखितः॥३५॥ मामेवं भाषसे चण्डि धिक् त्वां नाशमुपैष्यसि। इत्युत्तवा वनदेवीभ्यः समर्प्य जनकात्मजाम्॥३६॥ ययौ दुःखातिसंविय्नो राममेव शनैः शनैः। ततोऽन्तरं समालोक्य रावणो भिक्षुवेषधृक्॥३७॥ सीतासमीपमगमत् स्फुरद्दण्डकमण्डलुः। सीता तमवलोक्याऽऽशु नत्वा सम्पूज्य भक्तितः॥३८॥

कन्दमूलफलादीनि दत्त्वा स्वागतमब्रवीत्। मुने भुङ्क्ष फलादीनि विश्रमस्व यथासुखम्॥३९॥ इदानीमेव भर्ता मे ह्यागमिष्यति ते प्रियम्। करिष्यति विशेषेण तिष्ठ त्वं यदि रोचते॥४०॥

भिक्षुरुवाच

का त्वं कमलपत्राक्षि को वा भर्ता तवानघे। किमर्थमत्र ते वासो वने राक्षससेविते। ब्रूहि भद्रे ततः सर्वं स्ववृत्तान्तं निवेदये॥४१॥

सीतोवाच

अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान्। तस्य ज्येष्ठः सुतो रामः सर्वलक्षणलिक्षतः॥४२॥ तस्याहं धर्मतः पत्नी सीता जनकनिन्दिनी। तस्य भ्राता कनीयानश्च लक्ष्मणो भ्रातृवत्सलः॥४३॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डके वस्तुमागतः। चतुर्दश समास्त्वां तु ज्ञातुमिच्छामि मे वद॥४४॥ भिक्षुरुवाच

पौलस्त्यतनयोऽहं तु रावणो राक्षसाधिपः। त्वत्कामपरितप्तोऽहं त्वां नेतुं पुरमागतः॥४५॥ मुनिवेषेण रामेण किं करिष्यसि मां भज। भुङ्ख भोगान् मया सार्धं त्यज दुःखं वनोद्भवम्॥४६॥ श्रुत्वा तद्वचनं सीता भीता किञ्चिदुवाच तम्। यद्येवं भाषसे मां त्वं नाशमेष्यसि राघवात्॥४७॥ आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः। मां को धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा॥४८॥ रामबाणैर्विभिन्नस्त्वं पतिष्यसि महीतले॥४९॥ इति सीतावचः श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः। स्वरूपं दर्शयामास महापर्वतसन्निभम्। दशास्यं विंशतिभुजं कालमेघसमद्युतिम्॥५०॥ तदृष्ट्वा वनदेव्यश्च भूतानि च वितत्रसुः। ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धत्य बाहुभिः॥५१॥ तोलियत्वा रथे क्षिप्ता ययौ क्षिप्रं विहायसा। हा राम हा लक्ष्मणेति रुदती जनकात्मजा॥५२॥

भयोद्विग्नमना दीना पश्यन्ती भुवमेव सा। श्रुत्वा तत्क्रन्दितं दीनं सीतायाः पक्षिसत्तमः॥५३॥ जटायुरुत्थितः शीघ्रं नगाय्रात्तीक्ष्णतुण्डकः। तिष्ठ तिष्ठेति तं प्राह को गच्छति ममाग्रतः॥५४॥ मुषित्वा लोकनाथस्य भार्यां शून्याद्वनालयात्। शुनको मन्त्रपूतं त्वं पुरोडाशमिवाध्वरे॥५५॥ इत्युक्तवा तीक्ष्णतुण्डेन चूर्णयामास तद्रथम्। वाहान् बिभेद् पादाभ्यां चूर्णयामास तद्धनुः॥५६॥ ततः सीतां परित्यज्य रावणः खङ्गमाददे। चिच्छेद पक्षौ सामर्षः पक्षिराजस्य धीमतः॥५७॥ पपात किञ्चिच्छेषेण प्राणेन भुवि पक्षिराट्। पुनरन्यरथेनाशु सीतामादाय रावणः॥५८॥ क्रोशन्ती रामरामेति त्रातारं नाधिगच्छति। हा राम हा जगन्नाथ मां न पश्यिस दुःखिताम्॥५९॥ रक्षसा नीयमानां स्वां भार्यां मोचय राघव। हा लक्ष्मण महाभाग त्राहि मामपराधिनीम्॥६०॥

वाकःशरेण हतस्त्वं मे क्षन्तुमर्हिस देवर। इत्येवं क्रोशमानां तां रामागमनशङ्कया॥६१॥ जगाम वायुवेगेन सीतामादाय सत्वरः॥६२॥

विहायसा नीयमाना सीतापश्यद्धोमुखी। पर्वताग्रे स्थितान् पञ्च वानरान् वारिजानना। उत्तरीयार्घखण्डेन विमुच्याभरणादिकम्॥६३॥

बद्धा चिक्षेप रामाय कथयन्त्वित पर्वते॥६४॥ ततः समुद्रमुल्लङ्खा लङ्कां गत्वा स रावणः। स्वान्तःपुरे रहस्ये तामशोकविपिनेऽक्षिपत्। राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्धान्वपालयत्॥६५॥

कृशाऽतिदीना परिकर्मवर्जिता दुःखेन शुष्यद्वदनाऽतिविह्वला। हा राम रामेति विलप्यमाना सीता स्थिता राक्षसवृन्दमध्ये॥६६॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामयणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे सप्तमः सर्गः॥७॥

॥ अष्टमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

रामो मायाविनं हत्वा राक्षसं कामरूपिणम्। प्रतस्थे स्वाश्रमं गन्तुं ततो दूराद्दर्श तम्॥१॥

आयान्तं लक्ष्मणं दीनं मुखेन परिशुष्यता। राघवश्चिन्तयामास स्वात्मन्येव महामतिः॥२॥

लक्ष्मणस्तन्न जानाति मायासीतां मया कृताम्। ज्ञात्वाऽप्येनं वञ्चयित्वा शोचामि प्राकृतो यथा॥३॥

यद्यहं विरतो भूत्वा तूष्णीं स्थास्यामि मन्दिरे। तदा राक्षसकोटीनां वधोपायः कथं भवेत्॥४॥

यदि शोचामि तां दुःखसन्तप्तः कामुको यथा। तदा क्रमेणानुचिन्वन् सीतां यास्येऽसुरालयम्। रावणं सकुलं हत्वा सीतामग्नौ स्थितां पुनः॥५॥

मयैव स्थापितां नीत्वा यातायोध्यामतन्द्रितः॥६॥

अहं मनुष्यभावेन जातोऽस्मि ब्रह्मणार्थितः। मनुष्यभावमापन्नः किञ्चित्कालं वसामि कौ। ततो मायामनुष्यस्य चरितं मेऽनुशृण्वताम्॥७॥

मुक्तिः स्यादप्रयासेन भक्तिमार्गानुवर्तिनाम्। निश्चित्यैवं तदा दृष्ट्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्॥८॥

किमर्थमागतोऽसि त्वं सीतां त्यक्तवा मम प्रियाम्। नीता वा भक्षिता वाऽपि राक्षसैर्जनकात्मजा॥९॥

लक्ष्मणः प्राञ्जलिः प्राह सीताया दुर्वचो रुद्न्। हा लक्ष्मणेति वचनं राक्षसोक्तं श्रुतं तया॥१०॥

त्वद्वाक्यसदृशं श्रुत्वा मां गच्छेति त्वराब्रवीत्। रुद्न्ती सा मया प्रोक्ता देवि राक्षसभाषितम्। नेदं रामस्य वचनं स्वस्था भव शुचिस्मिते॥११॥

इत्येवं सान्त्विता साध्वी मया प्रोवाच मां पुनः। यदुक्तं दुर्वचो राम न वाच्यं पुरतस्तव॥१२॥ कर्णौ पिधाय निर्गत्य यातोऽहं त्वां समीक्षितुम्॥१३॥ रामस्तु लक्ष्मणं प्राह तथाऽप्यनुचितं कृतम्। त्वया स्त्रीभाषितं सत्यं कृत्वा त्यक्ता शुभानना। नीता वा भक्षिता वाऽपि राक्षसैर्नात्र संशयः॥१४॥

इति चिन्तापरो रामः स्वाश्रमं त्वरितो ययौ। तत्रादृष्ट्वा जनकजां विललापातिदुःखितः॥१५॥

हा प्रिये क गतासि त्वं नासि पूर्ववदाश्रमे। अथवा मद्विमोहार्थं लीलया क विलीयसे॥ १६॥

इत्याचिन्वन् वनं सर्वं नापश्यज्ञानकीं तदा। वनदेव्यः कुतः सीतां ब्रुवन्तु मम वस्लभाम्॥१७॥

मृगाश्च पक्षिणो वृक्षा दर्शयन्तु मम प्रियाम्। इत्येवं विलपन्नेव रामः सीतां न कुत्रचित्॥१८॥

सर्वज्ञः सर्वथा कापि नापश्यद्रघुनन्दनः। आनन्दोऽप्यन्वशोचत्तामचलोऽप्यनुधावति॥१९॥

निर्ममो निरहङ्कारोऽप्यखण्डानन्दरूपवान्। मम जायेति सीतेति विललापातिदुःखितः॥२०॥

एवं मायामनुचरन्नसक्तोऽपि रघूत्तमः। आसक्त इव मूढानां भाति तत्त्वविदां न हि॥२१॥ एवं विचिन्वन् सकलं वनं रामः सलक्ष्मणः। भग्नं रथं छत्रचापं कूबरं पतितं भुवि॥२२॥ दृष्ट्वा लक्ष्मणमाहेदं पश्य लक्ष्मण केनचित्। नीयमानां जनकजां तं जित्वाऽन्यो जहार ताम्॥२३॥ ततः कञ्चिद्भवो भागं गत्वा पर्वतसन्निभम्। रुधिराक्तवपुर्देष्ट्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत्॥२४॥ एष वै भक्षयित्वा तां जानकीं शुभदुर्शनाम्। दोते विविक्तेऽतितृप्तः पदय हिन्म निशाचरम्॥२५॥ चापमानय शीघ्रं मे बाणं च रघुनन्दन। तच्छुत्वा रामवचनं जटायुः प्राह भीतवत्॥२६॥ मां न मारय भद्रं ते म्रियमाणं स्वकर्मणा। अहं जटायुस्ते भार्याहारिणं समनुद्भतः॥२७॥ रावणं तत्र युद्धं मे बभूवारिविमर्दन। तस्य वाहान् रथं चापं छित्त्वाऽहं तेन घातितः॥२८॥

पतितोऽस्मि जगन्नाथ प्राणान्स्त्यक्ष्यामि पश्य माम्। तच्छुत्वा राघवो दीनं कण्ठप्राणं ददर्श ह॥२९॥ हस्ताभ्यां संस्पृशन् रामो दुःखाश्रुवृतलोचनः॥३०॥

जटायो ब्रूहि मे भार्या केन नीता शुभानना। मत्कार्यार्थं हतोऽसि त्वमतो मे प्रियबान्धवः॥३१॥

जटायुः सन्नया वाचा वक्राद्रक्तं समुद्वमन्। उवाच रावणो राम राक्षसो भीमविक्रमः॥३२॥

आदाय मैथिलीं सीतां दक्षिणाभिमुखो ययौ। इतो वक्तुं न मे शक्तिः प्राणान्स्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः॥३३॥

दिष्ट्या दृष्टोऽसि राम त्वं म्रियमाणेन मेऽनघ। परमात्मासि विष्णुस्त्वं मायामनुजरूपधृक्॥३४॥

अन्तकालेऽपि दृष्ट्वा त्वां मुक्तोऽहं रघुसत्तम। हस्ताभ्यां स्पृश मां राम पुनर्यास्यामि ते पदम्॥३५॥

तथेति रामः पस्पर्श तदङ्गं पाणिना स्मयन्। ततः प्राणान् परित्यज्य जटायुः पतितो भुवि॥३६॥

रामस्तमनुशोचित्वा बन्धुवत् साश्रुलोचनः। लक्ष्मणेन समानाय्य काष्ठानि प्रद्दाह॥३७॥ स्नात्वा दुःखेन रामोऽपि लक्ष्मणेन समन्वितः। हत्वा वने मृगं तत्र मांसखण्डान् समन्ततः॥३८॥ शाह्रले प्राक्षिपद्रामः पृथक् पृथगनेकधा। भक्षन्तु पक्षिणः सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट्॥३९॥ इत्युक्तवा राघवः प्राह जटायो गच्छ मत्पदम्। मत्सारूप्यं भजस्वाद्य सर्वलोकस्य पश्यतः॥४०॥ ततोऽनन्तरमेवासौ दिव्यरूपधरः शुभः। विमानवरमारुह्य भास्वरं भानुसन्निभम्॥४१॥ राङ्खचकगदापद्मकिरीटवर**भूषणैः** द्योतयन् स्वप्रकाशेन पीताम्बरधरोऽमलः॥४२॥ चतुर्भिः पार्षदैर्विष्णोस्तादशैरभिपूजितः। स्त्यमानो योगिगणैः राममाभाष्य सत्वरः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव रघुनन्दनम्॥४३॥ जटायुरुवाच

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यम् सकलजगितस्थितिसंयमादिहेतुम् । उपरमपरमं परात्मभूतम् सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम्॥४४॥

निरवधिसुखिमिन्दिराकटाक्षम् क्षिपितसुरेन्द्रचतुर्मुखादिदुःखम्। नरवरमिनद्यां नतोऽस्मि रामम् वरदमहं वरचापबाणहस्तम्॥४५॥

त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यम् रविश्वातभासुरमीहितप्रदानम्। शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलयं रघुनन्दनं प्रपद्ये॥४६॥

भवविपिनदवाग्निनामधेयम् भवमुखदैवतदैवतं दयालुम्। दनुजपतिसहस्रकोटिनाशम् रवितनयासदृशं हरि प्रपद्ये॥४७॥ अविरतभवभावनातिदूरम्
भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम्।
भवजलिधसुतारणाङ्किपोतम्
शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये॥४८॥

गिरिशगिरिसुतामनोनिवासम् गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम्। सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्ग्रिम् सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये॥४९॥

परधनपरदारवर्जितानाम् परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम्। परहितनिरतात्मनां सुसेव्यम् रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये॥५०॥

स्मितरुचिरविकासिताननाड्ड-मितसुलभं सुरराजनीलनीलम्। सितजलरुहचारुनेत्रशोभम् रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये॥५१॥

हरिकमलजशम्भुरूपभेदात् त्विमह विभासि गुणत्रयानुवृत्तः। रविरिव जलपूरितोदपात्रे-ष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे ॥५२॥ रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गम् शतपथगोचरभावनाविदूरम्। यतिपतिहृदये सदा विभातम् रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये॥५३॥ इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः। उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम्॥५४॥ शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद्वा नियतः पठेत्। स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत्॥५५॥ इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः। रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसूपूजितं पदम्॥५६॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामयणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे अष्टमः सर्गः॥८॥

॥नवमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

ततो रामो लक्ष्मणेन जगाम विपिनान्तरम्। पुनर्दुःखं समाश्रित्य सीतान्वेषणतत्परः॥१॥

तत्राद्भुतसमाकारो राक्षसः प्रत्यदृश्यत। वक्षस्येव महावऋश्वक्षुरादिविवर्जितः॥२॥

बाह्र योजनमात्रेण व्यापृतौ तस्य रक्षसः। कबन्धो नाम दैत्येन्द्रः सर्वसत्त्वविहिंसकः॥३॥

तद्वाह्वोर्मध्यदेशे तौ चरन्तौ रामलक्ष्मणौ। ददर्शतुर्महासत्त्वं तद्वाहुपरिवेष्टितौ॥४॥

रामः प्रोवाच विहसन् पश्य लक्ष्मण राक्षसम्। शिरःपादविहीनोऽयं यस्य वक्षसि चाननम्॥५॥ बाहुभ्यां लभ्यते यद्यत्तत्तद्भक्षन् स्थितो ध्रुवम्। आवामप्येतयोर्बाह्वोर्मध्ये सङ्कलितौ ध्रुवम्॥६॥

गन्तुमन्यत्र मार्गो न दृश्यते रघुनन्दन। किं कर्तव्यमितोऽस्माभिरिदानीं भक्षयेत्स नौ॥७॥ लक्ष्मणस्तमुवाचेदं किं विचारेण राघव। आवामेकैकमव्यग्रौ छिन्द्यावास्य भुजौ ध्रुवम्॥८॥ तथेति रामः खङ्गेन भुजं दक्षिणमच्छिनत्। तथैव लक्ष्मणो वामं चिच्छेद भुजमञ्जसा॥९॥ ततोऽतिविस्मितो दैत्यः को युवां सुरपुङ्गवौ। मह्राहुच्छेदकौ लोके दिवि देवेषु वा कुतः॥१०॥ ततोऽब्रवीद्धसन्नेव रामो राजीवलोचनः। अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान्॥११॥ रामोऽहं तस्य पुत्रोऽसौ भ्राता मे लक्ष्मणः सुधीः। मम भार्या जनकजा सीता त्रैलोक्यसुन्दरी॥१२॥ आवां मृगयया यातौ तदा केनापि रक्षसा। नीतां सीतां विचिन्वन्तौ चागतौ घोरकानने॥१३॥ बाह्यभ्यां वेष्टितावत्र तव प्राणरिरक्षया। छिन्नौ तव भुजौ त्वं च को वा विकटरूपधृक्॥१४॥

कबन्ध उवाच धन्योऽहं यदि रामस्त्वमागतोऽसि ममान्तिकम्। गन्धर्वराजोऽहं रूपयौवनद्रपितः॥१५॥ पुरा विचरन्ल्लोकमखिलं वरनारीमनोहरः। तपसा ब्रह्मणो लब्धमवध्यत्वं रघूत्तम॥१६॥ अष्टावकं मुनिं दृष्ट्वा कदाचिद्हसं पुरा। कुद्धोऽसावाह दुष्ट त्वं राक्षसो भव दुर्मते॥१७॥ अष्टावकः पुनः प्राह वन्दितो मे दयापरः। शापस्यान्तं च मे प्राह तपसा द्योतितप्रभः॥१८॥ त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणः स्वयम्। आगमिष्यति ते बाह्र छिद्येते योजनायतौ॥१९॥ तेन शापाद्विनिर्मुक्तो भविष्यसि यथा पुरा। इति राप्तोऽहमद्राक्षं राक्षसीं तनुमात्मनः॥२०॥ कदाचिद्देवराजानमभ्यद्रवमहं सोऽपि वज्रेण मां राम शिरोदेशेऽभ्यताख्यत्॥२१॥ तदा शिरो गतं कुक्षिं पादौ च रघुनन्दन। ब्रह्मद्त्तवरान्मृत्युर्नाभून्मे वज्रताडनात्॥२२॥

मुखाभावे कथं जीवेदयमित्यमराधिपम्। ऊचुः सर्वे दयाविष्टा मां विलोक्याऽऽस्यवर्जितम्॥२३॥

ततो मां प्राह मघवा जठरे ते मुखं भवेत्। बाहू ते योजनायामौ भविष्यत इतो व्रज॥२४॥

इत्युक्तोऽत्र वसन्नित्यं बाहुभ्यां वनगोचरान्। भक्षयाम्यधुना बाहू खण्डितौ मे त्वयाऽनघ॥२५॥

इतः परं मां श्वभ्रास्ये निक्षिपाग्नीन्धनावृते। अग्निना दह्यमानोऽहं त्वया रघुकुलोत्तम॥२६॥ पूर्वरूपमनुप्राप्य भार्यामार्गं वदामि ते॥२७॥

इत्युक्ते लक्ष्मणेनाशु श्वभ्रं निर्मित्य तत्र तम्। निक्षिप्य प्राद्हत्काष्ठैस्ततो देहात्समुत्थितः। कन्दर्पसदृशाकारः सर्वाभरणभूषितः॥ २८॥

रामं प्रदक्षिणं कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च। कृताञ्जलिरुवाचेदं भक्तिगद्भदया गिरा॥२९॥ गन्धर्व उवाच स्तोतुमुत्सहते मेऽद्य मनो रामातिसम्भ्रमात्। त्वामनन्तमनाद्यन्तं मनोवाचामगोचरम्॥३०॥

सूक्ष्मं ते रूपमव्यक्तं देहद्वयविलक्षणम्। दृश्रूपमितरत्सर्वं दृश्यं जडमनात्मकम्। तत्कथं त्वां विजानीयाद्यतिरिक्तं मनः प्रभो॥३१॥

बुद्धात्माभासयोरेक्यं जीव इत्यभिधीयते। बुद्धादि साक्षी ब्रह्मेव तस्मिन्निर्विषयेऽखिलम्॥३२॥

आरोप्यतेऽज्ञानवशान्निर्विकारेऽखिलात्मिन । हिरण्यगर्भस्ते सूक्ष्मं देहं स्थूलं विराट् स्मृतम्॥३३॥

भावनाविषयो राम सूक्ष्मं ते ध्यातृमङ्गलम्। भूतं भव्यं भविष्यच यत्रेदं दृश्यते जगत्॥३४॥

स्थूलेऽण्डकोशे देहे ते महदादिभिरावृते। सप्तभिरुत्तरगुणैवैराजो धारणाश्रयः॥३५॥

त्वमेव सर्वकैवल्यं लोकास्तेऽवयवाः स्मृताः। पातालं ते पादमूलं पार्ष्णिस्तव महातलम्॥३६॥

रसातलं ते गुल्फौ तु तलातलमितीर्यते। जानुनी सुतलं राम ऊरू ते वितलं तथा॥३७॥ अतलं च मही राम जघनं नाभिगं नभः। उरःस्थलं ते ज्योतींषि ग्रीवा ते मह उच्यते॥३८॥ वदनं जनलोकस्ते तपस्ते शङ्खदेशगम्। सत्यलोको रघुश्रेष्ठ शीर्षण्यास्ते सदा प्रभो॥३९॥ इन्द्रादयो लोकपाला बाहवस्ते दिशः श्रुती। अश्विनौ नासिके राम वक्रं तेऽग्निरुदाहृतः॥४०॥ चक्षुस्ते सविता राम मनश्चन्द्र उदाहृतः। भ्रूभङ्ग एव कालस्ते बुद्धिस्ते वाक्पतिर्भवेत्॥४१॥ रुद्रोऽहङ्काररूपस्ते वाचश्छन्दांसि तेऽव्यय। यमस्ते दृष्ट्देशस्थो नक्षत्राणि द्विजालयः॥४२॥ हासो मोहकरी माया सृष्टिस्तेऽपाङ्गमोक्षणम्। धर्मः पुरस्तेऽधर्मश्च पृष्ठभाग उदीरितः॥४३॥ निमिषोन्मेषणे रात्रिर्दिवा चैव रघूत्तम। समुद्राः सप्त ते कुक्षिर्नाड्यो नद्यस्तव प्रभो॥४४॥

रोमाणि वृक्षौषधयो रेतो वृष्टिस्तव प्रभो। महिमा ज्ञानशक्तिस्ते एवं स्थूलं वपुस्तव॥४५॥ यद्स्मिन् स्थूलरूपे ते मनः सन्धार्यते नरैः। अनायासेन मुक्तिः स्यादतोऽन्यन्नहि किञ्चन॥४६॥ अतोऽहं राम रूपं ते स्थूलमेवानुभावये। यस्मिन् ध्याते प्रेमरसः सरोमपुलको भवेत्॥४७॥ तदैव मुक्तिः स्याद्राम यदा ते स्थूलभावकः। तद्प्यास्तां तवैवाहमेतद्रूपं विचिन्तये॥४८॥ धनुर्बाणधरं श्यामं जटावल्कलभूषितम्। अपीच्यवयसं सीतां विचिन्वन्तं सलक्ष्मणम्॥४९॥ इदमेव सदा मे स्यान्मानसे रघुनन्दन॥५०॥ सर्वज्ञः शङ्करः साक्षात्पार्वत्या सहितः सदा। त्वद्रपमेव सततं ध्यायन्नास्ते रघूत्तम। मुमूर्षूणां तदा काश्यां तारकं ब्रह्मवाचकम्॥५१॥ रामरामेत्युपदिशन् सदा सन्तुष्टमानसः। अतस्त्वं जानकीनाथ परमात्मा सुनिश्चितः॥५२॥

सर्वे ते मायया मूढास्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः। नमस्ते रामभद्राय वेधसे परमात्मने॥५३॥ अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः सौमित्रिसेवित। त्राहि त्राहि जगन्नाथ मां माया नावृणोतु ते॥५४॥

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं देवगन्धर्व भक्त्या स्तुत्या च तेऽनघ। याहि मे परमं स्थानं योगिगम्यं सनातनम्॥५५॥

जपन्ति ये नित्यमनन्यबुद्धा भक्त्या त्वदुक्तं स्तवमागमोक्तम्। तेऽज्ञानसम्भूतभवं विहाय मां यान्ति नित्यानुभवानुमेयम्॥५६॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामयणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे नवमः सर्गः॥९॥

॥दशमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

लब्खा वरं स गन्धर्वः प्रयास्यन् राममब्रवीत्। शबर्यास्ते पुरोभागे आश्रमे रघुनन्दन॥१॥ भक्त्या त्वत्पादकमले भक्तिमार्गविशारदा। तां प्रयाहि महाभाग सर्वं ते कथयिष्यति॥२॥ इत्युक्तवा प्रययौ सोऽपि विमानेनार्कवर्चसा। विष्णोः पदं रामनामस्मरणे फलमीदृशम्॥३॥ त्यक्तवा तद्विपिनं घोरं सिंहव्याघ्रादिदूषितम्। शनैरथाश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः॥४॥ शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम्। आयान्तमाराद्वर्षेण प्रत्युत्थायाचिरेण सा॥५॥ पतित्वा पादयोरये हर्षपूर्णाश्रुलोचना। स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासने सन्न्यवेशयत्॥६॥ रामलक्ष्मणयोः सम्यक्पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः। तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्घ्यादिभिरादता॥ ॥ ७॥ सम्पूज्य विधिवद्रामं ससौमित्रिं सपर्यया। सङ्गृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरी मुदा॥८॥

फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तितः। पादौ सम्पूज्य कुसुमैः सुगन्धैः सानुलेपनैः॥९॥ कृतातिथ्यं रघुश्रेष्ठमुपविष्टं सहानुजम्। शबरी भक्तिसम्पन्ना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ १०॥ अत्राश्रमे रघुश्रेष्ठ गुरवो मे महर्षयः। स्थिताः शुश्रूषणं तेषां कुर्वती समुपस्थिता॥११॥ बहुवर्षसहस्राणि गतास्ते ब्रह्मणः पदम्। गमिष्यन्तोऽब्रुवन्मां त्वं वसात्रैव समाहिता॥१२॥ रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः। राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च॥१३॥ आगमिष्यति चैकाग्रध्याननिष्ठा स्थिरा भव। इदानीं चित्रकूटाद्रावाश्रमे वसति प्रभुः॥१४॥ यावदागमनं तस्य तावद्रक्ष कलेवरम्। दृष्ट्वेव राघवं दुग्ध्वा देहं यास्यसि तत्पद्म्॥ १५॥ तथैवाकरवं राम त्वच्चानैकपरायणा। प्रतीक्ष्यागमनं तेऽद्य सफलं गुरुभाषितम्॥१६॥

तव सन्दर्शनं राम गुरूणामपि मे न हि। योषिन्मूढाऽप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा॥१७॥

तव दासस्य दासानां शतसङ्खोत्तरस्य वा। दासीत्वे नाधिकारोऽस्ति कुतः साक्षात्तवैव हि॥१८॥

कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः। स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे॥१९॥

श्रीराम उवाच

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः। न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम्॥२०॥

यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः। नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा॥२१॥ तस्माद्भामिनि सङ्क्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम्॥२२॥

सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम्। द्वितीयं मत्कथालापस्तृतीयं मद्गुणेरणम्। व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत्॥२३॥

आचार्योपासनं भद्रे सद्बुद्याऽमायया सदा। पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च॥२४॥ निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम्। मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते॥२५॥ मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः। बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा॥२६॥ अष्टमं नवमं तत्त्वविचारो मम भामिनि। एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा॥२७॥ स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा। भक्तिः सञ्जायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे॥२८॥ भक्तौ सञ्जातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा। ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि॥२९॥ स्यात्तरमात्कारणं भक्तिर्मोक्षस्येति सुनिश्चितम्। प्रथमं साधनं यस्य भवेत्तस्य क्रमेण तु॥३०॥ भवेत्सर्वं ततो भक्तिमृक्तिरेव सुनिश्चितम्। यस्मान्मद्भक्तियुक्ता त्वं ततोऽहं त्वामुपस्थितः॥३१॥ इतो मद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र संशयः। यदि जानासि मे ब्रूहि सीता कमललोचना॥३२॥ कुत्रास्ते केन वा नीता प्रिया मे प्रियदर्शना॥३३॥ शबर्युवाच

देव जानासि सर्वज्ञ सर्वं त्वं विश्वभावन। तथाऽपि पृच्छसे यन्मां लोकाननुसृतः प्रभो॥३४॥ ततोऽहमभिधास्यामि सीता यत्राधुना स्थिता। रावणेन हृता सीता लङ्कायां वर्ततेऽधुना॥३५॥ इतः समीपे रामाऽऽस्ते पम्पानाम सरोवरम्। ऋष्यमूकगिरिर्नाम तत्समीपे महानगः॥३६॥ चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं सुग्रीवो वानराधिपः। भीतभीतः सदा यत्र तिष्ठत्यतुलविक्रमः॥३७॥ वालिनश्च भयादु भ्रातुस्तदगम्यमृषेर्भयात्। वालिनस्तत्र गच्छ त्वं तेन सख्यं कुरु प्रभो॥३८॥ सुग्रीवेण स सर्वं ते कार्यं सम्पादियष्यति। अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि तवाग्रे रघुनन्दन॥३९॥

मुहूर्तं तिष्ठ राजेन्द्र यावदृग्ध्वा कलेवरम्। यास्यामि भगवन् राम तव विष्णोः परं पदम्॥४०॥

इति रामं समामन्त्र्य प्रविवेश हुताशनम्। क्षणान्निर्धूय सकलमविद्याकृतबन्धनम्। रामप्रसादाच्छबरी मोक्षं प्रापातिदुर्लभम्॥४१॥

किं दुर्लमं जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले। प्रसन्नेऽधमजन्माऽपि शबरी मुक्तिमाप सा॥४२॥

किं पुनर्बाह्मणा मुख्याः पुण्याः श्रीरामचिन्तकाः। मुक्तिं यान्तीति तद्भक्तिर्मुक्तिरेव न संशयः॥४३॥

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे लोकाः कामदुघाङ्गिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः। नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशम्

रामं रयामतनुं स्मरारिहृद्ये भान्तं भज्धं बुधाः॥४४॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे दशमः सर्गः॥ १०॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डः समाप्तः॥

॥ किष्किन्धाकाण्डः ॥ ॥ प्रथमः सर्गः ॥

श्रीमहादेव उवाच

ततः सलक्ष्मणो रामः शनैः पम्पासरस्तटम्। आगत्य सरसां श्रेष्ठां दृष्ट्वा विस्मयमाययौ॥१॥ कोशमात्रं सुविस्तीर्णमगाधामलशम्बरम्। उत्फुल्लाम्बुजकल्हारकुमुदोत्पलमण्डितम्॥२॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकादिशोभितम्। जलकुकुटकोयष्टिकौञ्चनादोपनादितम् ॥३॥ नानापुष्पलताकीर्णं नानाफलसमावृतम्। सतां मनःस्वच्छजलं पद्मिकञ्जलकवासितम्॥४॥ तत्रोपस्पृश्य सिललं पीत्वा श्रमहरं विभुः। सानुजः सरसस्तीरे शीतलेन पथा ययौ॥५॥ ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ। धनुर्बाणकरौ दान्तौ जटावल्कलमण्डितौ। पश्यन्तौ विविधान् वृक्षान् गिरेः शोभां सुविक्रमौ॥६॥

सुय्रीवस्तु गिरेर्मूर्घि चतुर्भिः सह वानरैः। स्थित्वा ददर्श तौ यान्तावारुरोह गिरेः शिरः॥७॥ भयादाह हनूमन्तं को तो वीरवरो सखे। गच्छ जानीहि भद्रं ते वटुर्भूत्वा द्विजाकृतिः॥८॥ वालिना प्रेषितौ किंवा मां हन्तुं समुपागतौ। ताभ्यां सम्भाषणं कृत्वा जानीहि हृद्यं तयोः॥९॥ यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः। विनयावनतो भूत्वा एवं जानीहि निश्चयम्॥१०॥ तथेति वटुरूपेण हनुमान् समुपागतः। विनयावनतो भूत्वा रामं नत्वेदमब्रवीत्॥११॥ कौ युवां पुरुषव्याघ्रौ युवानौ वीरसम्मतौ। द्योतयन्तौ दिशः सर्वाः प्रभया भास्कराविव॥१२॥ युवां त्रैलोक्यकर्ताराविति भाति मनो मम। युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ॥१३॥ मायया मानुषाकारौ चरन्ताविव लीलया। भूभारहरणार्थाय भक्तानां पालनाय च॥१४॥

अवतीर्णाविह परौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती। जगत्स्थितिलयौ सर्गं लीलया कर्तुमुद्यतौ॥१५॥ स्वतन्त्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ। नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मितः॥१६॥ श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह पश्यैनं वटुरूपिणम्। राब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा॥१७॥ अनेन भाषितं कृत्स्नं न किञ्चिदपशब्दितम्। ततः प्राह हनूमन्तं राघवो ज्ञानविग्रहः॥१८॥ अहं दाशरथी रामस्त्वयं मे लक्ष्मणोऽनुजः। सीतया भार्यया सार्धं पितुर्वचनगौरवात्॥१९॥ आगतस्तत्र विपिने स्थितोऽहं दण्डके द्विज। तत्र भार्या हृता सीता रक्षसा केनचिन्मम। तामन्वेष्ट्रमिहायातौ त्वं को वा कस्य वा वद्॥२०॥

वटुरुवाच

सुग्रीवो नाम राजा यो वानराणां महामतिः। चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गिरिमूर्धनि तिष्ठति॥२१॥ भ्राता किनयान् सुग्रीवो वालिनः पापचेतसः। तेन निष्कासितो भार्या हृता तस्येह वालिना॥२२॥ तद्भयादृष्यमूकाख्यं गिरिमाश्रित्य संस्थितः। अहं सुग्रीवसचिवो वायुपुत्रो महामते॥२३॥

हनुमान्नाम विख्यातो ह्यञ्जनीगर्भसम्भवः। तेन सख्यं त्वया युक्तं सुग्रीवेण रघूत्तम॥२४॥

भार्यापहारिणं हन्तुं सहायस्ते भविष्यति। इदानीमेव गच्छाम आगच्छ यदि रोचते॥२५॥

श्रीराम उवाच

अहमप्यागतस्तेन सख्यं कर्तुं कपीश्वर। सख्युस्तस्यापि यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम्॥२६॥

हनुमान् स्वस्वरूपेण स्थितो राममथाब्रवीत्। आरोहतां मम स्कन्धौ गच्छामः पर्वतोपरि॥२७॥ यत्र तिष्ठति सुग्रीवो मन्त्रिभिर्वालिनो भयात्। तथेति तस्यारुरोह स्कन्धं रामोऽथ लक्ष्मणः॥२८॥ उत्पपात गिरेर्मूर्घि क्षणादेव महाकपिः। वृक्षच्छायां समाश्रित्य स्थितौ तौ रामलक्ष्मणौ॥ २९॥ हनुमानपि सुग्रीवमुपगम्य कृताञ्जलिः। व्येतु ते भयमायातौ राजन् श्रीरामलक्ष्मणौ॥३०॥ शीघ्रमुत्तिष्ठ रामेण सख्यं ते योजितं मया। अग्निं साक्षिणमारोप्य तेन सख्यं द्भृतं कुरु॥३१॥ ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवः समागम्य रघूत्तमम्। वृक्षशाखां स्वयं छित्वा विष्टराय द्दौ मुदा॥३२॥ हनूमान्ल्रक्ष्मणायादात्सुग्रीवाय च लक्ष्मणः। हर्षेण महताऽऽविष्टाः सर्व एवावतस्थिरे॥३३॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्वं रामवृत्तान्तमादितः। वनवासाभिगमनं सीताहरणमेव च॥३४॥ लक्ष्मणोक्तं वचः श्रुत्वा सुग्रीवो राममब्रवीत्। अहं करिष्ये राजेन्द्र सीतायाः परिमार्गणम्॥३५॥ साहाय्यमपि ते राम करिष्ये शत्रुघातिनः। शृणु राम मया दृष्टं किञ्चित्ते कथयाम्यहम्॥३६॥

एकदा मन्त्रिभिः सार्धं स्थितोऽहं गिरिमूर्धनि। विहायसा नीयमानां केनचित्प्रमदोत्तमाम्॥३७॥ क्रोशन्तीं रामरामेति दृष्ट्वाऽस्मान् पर्वतोपरि। आमुच्याभरणान्याशु स्वोत्तरीयेण भामिनी॥३८॥ निरीक्ष्याधः परित्यज्य क्रोशन्ती तेन रक्षसा। नीताहं भूषणान्याशु गुहायामक्षिपं प्रभो॥३९॥ इदानीमपि पश्य त्वं जानीहि तव वा न वा। इत्युक्तवाऽऽनीय रामाय दर्शयामास वानरः॥४०॥ विमुच्य रामस्तदृष्ट्वा हा सीतेति मुहुर्मुहुः। हृदि निक्षिप्य तत्सर्वं रुरोद् प्राकृतो यथा॥४१॥ आश्वास्य राघवं भ्राता लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत। अचिरेणैव ते राम प्राप्यते जानकी शुभा। वानरेन्द्रसहायेन हत्वा रावणमाहवे॥४२॥ सुयीवोऽप्याह हे राम प्रतिज्ञां करवाणि ते। समरे रावणं हत्वा तव दास्यामि जानकीम्॥४३॥ ततो हनूमान् प्रज्वाल्य तयोरियं समीपतः। तावुभौ रामसुग्रीवावग्नौ साक्षिणि तिष्ठति॥४४॥

बाह्र प्रसार्य चालिङ्म परस्परमकल्मषौ। समीपे रघुनाथस्य सुग्रीवः समुपाविशत्॥४५॥ स्वोदन्तं कथरामास प्रणासाद्यानासके।

स्वोदन्तं कथयामास प्रणयाद्रघुनायके। सखे शृणु ममोदन्तं वालिना यत्कृतं पुरा॥४६॥

मयपुत्रोऽथ मायावी नाम्ना परमदुर्मदः। किष्किन्धां समुपागत्य वालिनं समुपाह्वयत्॥४७॥

सिंहनादेन महता वाली तु तदमर्षणः। निर्ययौ कोधताम्राक्षो जघान दृढमुष्टिना॥४८॥

दुद्राव तेन संविग्नो जगाम स्वगुहां प्रति। अनुदुद्राव तं वाली मायाविनमहं तथा॥४९॥

ततः प्रविष्टमालोक्य गुहां मायाविनं रुषा। वाली मामाह तिष्ठ त्वं बहिर्गच्छाम्यहं गुहाम्। इत्युक्तवाऽऽविश्य स गुहां मासमेकं न निर्ययौ॥५०॥

मासादूर्ध्वं गुहाद्वारान्निर्गतं रुधिरं बहु। तदृष्ट्वा परितप्ताङ्गो मृतो वालीति दुःखितः॥५१॥

गृहाद्वारि शिलामेकां निधाय गृहमागतः। ततोऽब्रवं मृतो वाली गृहायां रक्षसा हतः॥५२॥ तच्छुत्वा दुःखिताः सर्वे मामनिच्छन्तमप्युत। राज्येऽभिषेचनं चकुः सर्वे वानरमन्त्रिणः॥५३॥ शिष्टं तदा मया राज्यं किञ्चित्कालमरिन्दम। ततः समागतो वाली मामाह परुषं रुषा॥५४॥ बहुधा भर्त्सयित्वा मां निजघान च मुष्टिभिः। ततो निर्गत्य नगराद्धावं परया भिया॥५५॥ लोकान् सर्वान् परिक्रम्य ऋष्यमूकं समाश्रितः। ऋषेः शापभयात्सोऽपि नायातीमं गिरि प्रभो॥५६॥ तदादि मम भार्यां स स्वयं भुङ्के विमृढधीः। अतो दुःखेन सन्तप्तो हृतदारो हृताश्रयः॥५७॥ वसाम्यद्य भवत्पादसंस्पर्शात्सुखितोऽसम्यहम्। मित्रदुःखेन सन्तप्तो रामो राजीवलोचनः॥५८॥ हनिष्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम्। इति प्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्य पुरस्तदा॥५९॥

सुग्रीवोऽप्याह राजेन्द्र वाली बलवतां बली। कथं हिनष्यति भवान् देवैरपि दुरासदम्॥६०॥ शृणु ते कथयिष्यामि तद्बलं बलिनां वर। कदाचिदुन्दुभिर्नाम महाकायो महाबलः॥६१॥ किष्किन्धामगमद्राम महामहिषरूपधृक्। युद्धाय वालिनं रात्रौ समाह्वयत भीषणः॥६२॥ तच्छुत्वाऽसहमानोऽसौ वाली परमकोपनः। महिषं शृङ्गयोर्घृत्वा पातयामास भूतले॥६३॥ पादेनैकेन तत्कायमाक्रम्यास्य शिरो महत्। हस्ताभ्यां भ्रामयंशिखत्वा तोलयित्वाऽक्षिपद्भवि॥६४॥

पपात तच्छिरो राम मातङ्गाश्रमसन्निधौ। योजनात्पतितं तस्मान्मुनेराश्रममण्डले॥६५॥

रक्तवृष्टिः पपातोचैर्दञ्चा तां कोधमूर्च्छितः। मातङ्गो वालिनं प्राह यद्यागन्तासि मे गिरिम्॥६६॥

इतः परं भग्नशिरा मरिष्यसि न संशयः। एवं शप्तस्तदारभ्य ऋष्यमूकं न यात्यसौ॥६७॥ एतज्ज्ञात्वाऽहमप्यत्र वसामि भयवर्जितः। राम पश्य शिरस्तस्य दुन्दुभेः पर्वतोपमम्॥६८॥

तत्क्षेपणे यदा शक्तः शक्तस्त्वं वालिनो वधे। इत्युक्तवा दर्शयामास शिरस्तद्गिरिसन्निभम्॥६९॥

दृष्ट्वा रामः स्मितं कृत्वा पादाङ्गुष्टेन चाक्षिपत्। दशयोजनपर्यन्तं तद्द्धुतमिवाभवत्॥७०॥

साधु साध्विति सम्प्राह सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह। पुनरप्याह सुग्रीवो रामं भक्तपरायणम्॥७१॥

एते ताला महासाराः सप्त पश्य रघूत्तम। एकैकं चालयित्वाऽसौ निष्पत्रान् कुरुतेऽञ्जसा॥७२॥

यदि त्वमेकबाणेन विद्धा छिद्रं करोषि चेत्। हतस्त्वया तदा वाली विश्वासो मे प्रजायते। तथेति धनुरादाय सायकं तत्र सन्दधे॥७३॥

बिभेद च तदा रामः सप्त तालान् महाबलः। तालान् सप्त विनिर्भिद्य गिरि भूमिं च सायकः॥७४॥

पुनरागत्य रामस्य तूणीरे पूर्ववतिस्थतः। ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवो राममाहातिविस्मितः॥७५॥ देव त्वं जगतां नाथः परमात्मा न संशयः। मत्पूर्वकृतपुण्यौघैः सङ्गतोऽद्य मया सह॥७६॥ त्वां भजन्ति महात्मानः संसारविनिवृत्तये। त्वां प्राप्य मोक्षसचिवं प्रार्थयेऽहं कथं भवम्॥७७॥ दाराः पुत्रा धनं राज्यं सर्वं त्वन्मायया कृतम्। अतोऽहं देवदेवेश नाकाङ्केऽन्यत्प्रसीद् मे॥७८॥ आनन्दानुभवं त्वाऽद्य प्राप्तोऽहं भाग्यगौरवात्। मृदर्थं यतमानेन निधानमिव सत्पते॥७९॥ अनाद्यविद्यासंसिद्धं बन्धनं छिन्नमद्य नः। यज्ञदानतपः कर्मपूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ॥८०॥ न जीर्यते पुनर्दार्ढ्यं भजते संसृतिः प्रभो। त्वत्पाददर्शनात्सद्यो नाशमेति न संशयः॥८१॥ क्षणार्धमपि यचित्तं त्विय तिष्ठत्यचञ्चलम्। तस्याज्ञानमनर्थानां मूलं नश्यति तत्क्षणात्॥८२॥

तत्तिष्ठतु मनो राम त्वयि नान्यत्र मे सदा॥८३॥ रामरामेति यद्वाणी मधुरं गायति क्षणम्। स ब्रह्महा सुरापो वा मुच्यते सर्वपातकैः॥८४॥ न काङ्के विजयं राम न च दारसुखादिकम्। भक्तिमेव सदा काङ्के त्विय बन्धविमोचनीम्॥८५॥ त्वन्मायाकृतसंसारस्त्वदंशोऽहं रघूत्तम। स्वपादभक्तिमादिश्य त्राहि मां भवसङ्कटात्॥८६॥ पूर्वं मित्रार्युदासीनास्त्वन्मायावृतचेतसः। आसन्मेऽद्य भवत्पाददर्शनादेव राघव॥८७॥ सर्वं ब्रह्मैव मे भाति क मित्रं क च मे रिपुः। यावत्त्वन्मायया बद्धस्तावद्गुणविशेषता॥८८॥ सा यावदस्ति नानात्वं तावद्भवति नान्यथा। यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृतं भयम्॥८९॥ अतोऽविद्यामुपास्ते यः सोऽन्धे तमसि मज्जति। मायामूलमिदं सर्वं पुत्रदारादिबन्धनम्। तदुत्सारय मायां त्वं दासीं तव रघूत्तम॥९०॥ त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्ति स्त्वन्नामसङ्गीतकथासु वाणी। त्वद्भक्तसेवानिस्तौ करौ मे त्वदङ्गसङ्गं लभतां मदङ्गम्॥९१॥

त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्रं स शृणोतु कर्णः। त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मम् व्रजत्वजस्रं तव मन्दिराणि॥९२॥

अङ्गानि ते पादरजोविमिश्र तीर्थानि बिभ्रत्विहशत्रुकेतो। शिरस्त्वदीयं भवपद्मजाद्यैर् जुष्टं पदं राम नमत्वजस्त्रम्॥९३॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे प्रथमः सर्गः॥ १॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

इत्थं स्वात्मपरिष्वङ्गनिर्धूताशेषकल्मषम्। रामः सुग्रीवमालोक्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत्॥१॥ मायां मोहकरीं तस्मिन् वितन्वन् कार्यसिद्धये। सखे त्वदुक्तं यत्तन्मां सत्यमेव न संशयः॥२॥ किन्तु लोका वदिष्यन्ति मामेवं रघुनन्दनः। कृतवान् किं कपीन्द्राय सख्यं कृत्वाऽग्निसाक्षिकम्॥३॥ इति लोकापवादो मे भविष्यति न संशयः। तस्मादाह्वय भद्रं ते गत्वा युद्धाय वालिनम्॥४॥ बाणेनैकेन तं हत्वा राज्ये त्वामभिषेचये। तथेति गत्वा सुग्रीवः किष्किन्धोपवनं द्रुतम्॥५॥ कृत्वा शब्दं महानादं तमाह्वयत वालिनम्। तच्छुत्वा भ्रातृनिनदं रोषताम्रविलोचनः॥६॥

निर्जगाम गृहाच्छीघ्रं सुग्रीवो यत्र वानरः। तमापतन्तं सुग्रीवः शीघ्रं वक्षस्यताडयत्॥७॥

सुग्रीवमपि मुष्टिभ्यां जघान क्रोधमूर्छितः। वाली तमपि सुग्रीव एवं कुद्धौ परस्परम्॥८॥ अयुद्येतामेकरूपौ दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः। न मुमोच तदा बाणं सुग्रीववधशङ्कया॥९॥ ततो दुद्राव सुग्रीवो वमन् रक्तं भयाकुलः। वाली स्वभवनं यातः सुग्रीवो राममब्रवीत्॥१०॥ किं मां घातयसे राम शत्रुणा भ्रातृरूपिणा। यदि मद्धनने वाञ्छा त्वमेव जिह मां विभो॥११॥ एवं मे प्रत्ययं कृत्वा सत्यवादिन् रघूत्तम। उपेक्षसे किमर्थं मां शरणागतवत्सल॥१२॥ श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः साश्रुविलोचनः। आलिङ्म मा स्म भैषीस्त्वं दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ॥१३॥ मित्रघातित्वमाशङ्घा मुक्तवान् सायकं न हि। इदानीमेव ते चिह्नं करिष्ये भ्रमशान्तये॥१४॥ गत्वाऽऽह्वय पुनः शत्रुं हतं द्रक्ष्यसि वालिनम्। रामोऽहं त्वां शपे भ्रातर्हनिष्यामि रिपुं क्षणात्॥ १५॥

इत्याश्वास्य स सुग्रीवं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्। सुग्रीवस्य गले पुष्पमालामामुच्य पुष्पिताम्॥ १६॥ प्रेषयस्व महाभाग सुग्रीवं वालिनं प्रति। लक्ष्मणस्तु तदा बद्धा गच्छ गच्छेति सादरम्॥१७॥ प्रेषयामास सुग्रीवं सोऽपि गत्वा तथाऽकरोत्। पुनरप्यद्भुतं शब्दं कृत्वा वालिनमाह्वयत्॥१८॥ तच्छुत्वा विस्मितो वाली क्रोधेन महताऽऽवृतः। सम्यग्गमनायोपचक्रमे॥ १९॥ परिकरं बद्धा गच्छन्तं वालिनं तारा गृहीत्वा निषिषेध तम्। न गन्तव्यं त्वयेदानीं शङ्का मेऽतीव जायते॥२०॥ इदानीमेव ते भग्नः पुनरायाति सत्वरः। सहायो बलवांस्तस्य कश्चिन्नूनं समागतः॥२१॥ वाली तामाह हे सुभू राङ्का ते व्येत तद्गता। प्रिये करं परित्यज्य गच्छ गच्छामि तं रिपुम्॥२२॥ हत्वा शीघ्रं समायास्ये सहायस्तस्य को भवेत। सहायो यदि सुग्रीवस्ततो हत्वोभयं क्षणात्॥२३॥

आयास्ये मा शुचः शूरः कथं तिष्ठेद् गृहे रिपुम्। ज्ञात्वाऽप्याह्वयमानं हि हत्वाऽऽयास्यामि सुन्दरि॥२४॥

तारोवाच

मत्तोऽन्यच्छुणु राजेन्द्र श्रुत्वा कुरु यथोचितम्। आह मामङ्गदः पुत्रो मृगयायां श्रुतं वचः॥२५॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो दाशरथिः किल। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह॥२६॥ आगतो दण्डकारण्यं तत्र सीता हृता किल। रावणेन सह भ्रात्रा मार्गमाणोऽथ जानकीम्॥२७॥ आगतो ऋष्यमूकाद्रिं सुग्रीवेण समागतः। चकार तेन सुग्रीवः सख्यं चानलसाक्षिकम्॥२८॥ प्रतिज्ञां कृतवान् रामः सुग्रीवाय सलक्ष्मणः। वालिनं समरे हत्वा राजानं त्वां करोम्यहम्॥२९॥ इति निश्चित्य तौ यातौ निश्चितं शृणु मद्वचः। इदानीमेव ते भग्नः कथं पुनरुपागतः॥३०॥ अतस्त्वं सर्वथा वैरं त्यक्तवा सुग्रीवमानय। यौवराज्येऽभिषिञ्चाशु रामं त्वं शरणं व्रज॥३१॥

पाहि मामङ्गदं राज्यं कुलं च हरिपुङ्गव। इत्युक्तवाऽश्रुमुखी तारा पादयोः प्रणिपत्य तम्॥३२॥ हस्ताभ्यां चरणौ धृत्वा रुरोद भयविह्नला। तामालिङ्या तदा वाली सस्नेहमिद्मबवीत्॥३३॥ स्त्रीस्वभावाद्विभेषि त्वं प्रिये नास्ति भयं मम। रामो यदि समायातो लक्ष्मणेन समं प्रभुः॥३४॥ तदा रामेण मे स्नेहो भविष्यति न संशयः। रामो नारायणः साक्षाद्वतीर्णोऽखिलप्रभुः॥३५॥ भूभारहरणार्थाय श्रुतं पूर्वं मयाऽनघे। स्वपक्षः परपक्षो वा नास्ति तस्य परात्मनः॥३६॥ आनेष्यामि गृहं साध्वि नत्वा तच्चरणाम्बुजम्। भजतोऽनुभजत्येष भक्तिगम्यः सुरेश्वरः॥३७॥ यदि स्वयं समायाति सुग्रीवो हन्मि तं क्षणात्। यदुक्तं यौवराज्याय सुगीवस्याभिषेचनम्॥३८॥

कथमाहूयमानोऽहं युद्धाय रिपुणा प्रिये। शूरोऽहं सर्वलोकानां सम्मतः शुभलक्षणे॥३९॥

भीतभीतमिदं वाक्यं कथं वाली वदेत्प्रिये। तस्माच्छोकं परित्यज्य तिष्ठ सुन्दरि वेश्मनि॥४०॥ एवमाश्वास्य तारां तां शोचन्तीमश्रुलोचनाम्। गतो वाली समुद्युक्तः सुग्रीवस्य वधाय सः॥४१॥ दृष्ट्वा वालिनमायान्तं सुग्रीवो भीमविक्रमः। उत्पपात गले बद्धपुष्पमालो मतङ्गवत्॥४२॥ मुष्टिभ्यां ताडयामास वालिनं सोऽपि तं तथा। अहन्वाली च सुग्रीवं सुग्रीवो वालिनं तथा॥४३॥ रामं विलोकयन्नेव सुग्रीवो युयुधे युधि। इत्येवं युद्धमानौ तौ दृष्ट्वा रामः प्रतापवान्॥४४॥ बाणमादाय तूणीरादैन्द्रे धनुषि सन्दधे। आकृष्य कर्णपर्यन्तमदृश्यो वृक्षखण्डगः॥४५॥ निरीक्ष्य वालिनं सम्यग्लक्ष्यं तद्रृदयं हरिः। उत्ससर्जाशनिसमं महावेगं महाबलः॥४६॥ बिभेद स शरो वक्षो वालिनः कम्पयन् महीम्। उत्पपात महाशब्दं मुञ्जन् स निपपात ह॥४७॥ तदा मुहूर्त्तं निःसंज्ञो भूत्वा चेतनमाप सः। ततो वाली ददर्शाये रामं राजीवलोचनम्। धनुरालम्ब्य वामेन हस्तेनान्येन सायकम्॥४८॥

बिभ्राणं चीरवसनं जटामुकुटधारिणम्। विशालवक्षसं भ्राजद्वनमालाविभूषितम्॥४९॥

पीनचार्वायतभुजं नवदूर्वादलच्छविम्। सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां च पार्श्वयोः परिसेवितम्॥५०॥

विलोक्य शनकैः प्राह वाली रामं विगर्हयन्। किं मयाऽपकृतं राम तव येन हतोऽस्म्यहम्॥५१॥

राजधर्ममविज्ञाय गर्हितं कर्म ते कृतम्। वृक्षखण्डे तिरोभूत्वा त्यजता मिय सायकम्॥५२॥

यशः किं लप्स्यसे राम चोरवत्कृतसङ्गरः। यदि क्षत्रियदायादो मनोर्वशसमुद्भवः॥५३॥

युद्धं कृत्वा समक्षं मे प्राप्यसे तत्फलं तदा। सुग्रीवेण कृतं किं ते मया वा न कृतं किमु॥५४॥

रावणेन हृता भार्या तव राम महावने। सुग्रीवं रारणं यातस्तद्र्थमिति राुश्रुम॥५५॥ बत राम न जानीषे मद्बलं लोकविश्रतम्। रावणं सकुलं बद्धा ससीतं लङ्कया सह॥५६॥ आनयामि मूहूर्त्तार्द्वाद्यदि चेच्छामि राघव। धर्मिष्ठ इति लोकेऽस्मिन् कथ्यसे रघुनन्दन॥५७॥ वानरं व्याधवद्धत्वा धर्मं कं लप्स्यसे वद। अभक्ष्यं वानरं मांसं हत्वा मां किं करिष्यसि॥५८॥ इत्येवं बहु भाषन्तं वालिनं राघवोऽब्रवीत्। धर्मस्य गोप्ता लोकेऽस्मिंश्चरामि सशरासनः॥५९॥ अधर्मकारिणं हत्वा सद्धर्मं पालयाम्यहम्। दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्रुषा॥६०॥ समा यो रमते तासामेकामपि विमृढधीः। पातकी स तु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा॥६१॥ त्वं तु भ्रातुः कनिष्ठस्य भार्यायां रमसे बलात्। अतो मया धर्मविदा हतोऽसि वनगोचर॥६२॥

त्वं कपित्वान्न जानीषे महान्तो विचरन्ति यत। लोकं पुनानाः सञ्चारैरतस्तान्नातिभाषयेत्॥६३॥ तच्छुत्वा भयसन्त्रस्तो ज्ञात्वा रामं रमापतिम्। वाली प्रणम्य रभसाद्रामं वचनमब्रवीत्॥६४॥ राम राम महाभाग जाने त्वां परमेश्वरम्। अजानता मया किञ्चिदुक्तं तत्क्षन्तुमर्हिस॥६५॥ साक्षात्त्वच्छरघातेन विशेषेण तवाय्रतः। त्यजाम्यसून् महायोगिदुर्लभं तव दर्शनम्॥६६॥ यन्नाम विवशो गृह्णन् म्रियमाणः परं पदम्। याति साक्षात्स एवाद्य मुमूर्षोर्मे पुरः स्थितः॥६७॥ देव जानामि पुरुषं त्वां श्रियं जानकीं शुभाम्। रावणस्य वधार्थाय जातं त्वां ब्रह्मणाऽर्थितम्॥६८॥ अनुजानीहि मां राम यान्तं त्वत्पद्मुत्तमम्। मम तुल्यबले बाले अङ्गदे त्वं दयां कुरु॥६९॥ विशल्यं कुरु मे राम हृद्यं पाणिना स्पृशन्। तथेति बाणमुद्भत्य रामः परपर्श पाणिना। त्यत्तवा तद्वानरं देहममरेन्द्रोऽभवत्क्षणात्॥७०॥

वाली रघूत्तमशराभिहतो विमृष्टो रामेण शीतलकरेण सुखाकरेण। सद्यो विमुच्य कपिदेहमनन्यलभ्यम् प्राप्तं पदं परमहंसगणैर्दुरापम्॥७१॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २॥

॥ तृतीयः सर्गः॥

निहते वालिनि रणे रामेण परमात्मना। दुद्भवुर्वानराः सर्वे किष्किन्धां भयविह्नलाः॥१॥

तारामूचुर्महाभागे हतो वाली रणाजिरे। अङ्गदं परिरक्षाद्य मन्त्रिणः परिनोदय॥२॥

चतुर्द्वारकपाटादीन् बद्धा रक्षामहे पुरीम्। वानराणां तु राजानमङ्गदं कुरु भामिनि॥३॥

निहतं वालिनं श्रुत्वा तारा शोकविमूर्छिता। अताडयत्स्वपाणिभ्यां शिरो वक्षश्च भूरिशः॥४॥

किमङ्गदेन राज्येन नगरेण धनेन वा। इदानीमेव निधनं यास्यामि पतिना सह॥५॥ इत्युक्तवा त्वरिता तत्र रुद्ती मुक्तमूर्धजा। ययौ ताराऽतिशोकार्ता यत्र भर्तकलेवरम्॥६॥ पतितं वालिनं दृष्ट्वा रक्तेः पांसुभिरावृतम्। रुद्ती नाथनाथेति पतिता तस्य पाद्योः॥७॥ करुणं विलपन्ती सा दुद्शं रघुनन्दनम्। राम मां जिह बाणेन येन वाली हतस्त्वया॥८॥ गच्छामि पतिसालोक्यं पतिर्मामभिकाङ्कते। स्वगेंऽपि न सुखं तस्य मां विना रघुनन्दन॥९॥ पत्नीवियोगजं दुःखमनुभूतं त्वयाऽनघ। वालिने मां प्रयच्छाशु पत्नीदानफलं भवेत्॥१०॥ सुग्रीव त्वं सुखं राज्यं दापितं वालिघातिना। रामेण रुमया सार्ध भुङ्ख सापत्नवर्जितम्॥११॥ इत्येवं विलपन्तीं तां तारां रामो महामनाः। सान्त्वयामास दयया तत्त्वज्ञानोपदेशतः॥१२॥ किं भीरु शोचिस व्यर्थं शोकस्याविषयं पितम्। पितस्तवायं देहो वा जीवो वा वद तत्त्वतः॥१३॥ पञ्चात्मको जडो देहस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिमान्। कालकर्मगुणोत्पन्नः सोऽप्यास्तेऽद्यापि ते पुरः॥१४॥ मन्यसे जीवमात्मानं जीवस्तिहैं निरामयः। न जायते न म्रियते न तिष्ठति न गच्छिति॥१५॥ न स्त्री पुमान्वा षण्ढो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः। एक एवाद्वितीयोऽयमाकाशवद्लेपकः। नित्यो ज्ञानमयः शुद्धः स कथं शोकमर्हति॥१६॥

तारोवाच

देहोऽचित्काष्ठवद्राम जीवो नित्यश्चिदात्मकः। सुखदुःखादिसम्बन्धः कस्य स्याद्राम मे वद्॥१७॥

श्रीराम उवाच

अहङ्कारादिसम्बन्धो यावद्देहेन्द्रियैः सह। संसारस्तावदेव स्यादात्मनस्त्वविवेकिनः॥१८॥ मिथ्यारोपितसंसारो न स्वयं विनिवर्तते। विषयान् ध्यायमानस्य स्वप्ने मिथ्यागमो यथा॥१९॥

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तत्कार्याहङ्कतेस्तथा । संसारोऽपार्थकोऽपि स्याद्रागद्वेषादिसङ्कलः॥२०॥ मन एव हि संसारो बन्धश्चैव मनः शुभे। आत्मा मनःसमानत्वमेत्य तद्गतबन्धभाकु॥२१॥ यथा विशुद्धः स्फटिकोऽलक्तकादिसमीपगः। तत्तद्वर्णयुगाभाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम्॥२२॥ बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनः संसृतिर्बलात्। आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य तदुद्भवान्॥२३॥ कामान् जुषन् गुणैर्बद्धः संसारे वर्ततेऽवद्याः। आदौ मनोगुणान् सृष्ट्वा ततः कर्माण्यनेकधा॥२४॥ शुक्रलोहितकृष्णानि गतयस्तत्समानतः। एवं कर्मवशाजीवो भ्रमत्याभूतसम्स्रवम्॥२५॥ सर्वोपसंहृतौ जीवो वासनाभिः स्वकर्मभिः। अनाद्यविद्यावशगस्तिष्ठत्यभिनिवेशतः ॥२६॥ सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनामानसैः सह। जायते पुनरप्येवं घटीयन्त्रमिवावदाः॥२७॥

यदा पुण्यविशेषेण लभते सङ्गतिं सताम्। मद्भक्तानां सुशान्तानां तदा मद्विषया मतिः॥२८॥

मत्कथाश्रवणे श्रद्धा दुर्रुभा जायते ततः। ततः स्वरूपविज्ञानमनायासेन जायते॥२९॥

तदाऽऽचार्यप्रसादेन वाक्यार्थज्ञानतः क्षणात्। देहेन्द्रियमनःप्राणाहङ्कृतिभ्यः पृथक् स्थितम्॥३०॥ स्वात्मानुभवतः सत्यमानन्दात्मानमद्वयम्। ज्ञात्वा सद्यो भवेन्मुक्तः सत्यमेव मयोदितम्॥३१॥ एवं मयोदितं सम्यगालोचयति योऽनिश्चम्। तस्य संसारदुःखानि न स्पृशन्ति कदाचन॥३२॥ त्वमप्येतन्मया प्रोक्तमालोचय विशुद्धधीः। न स्पृश्यसे दुःखजालैः कर्मबन्धाद्विमोक्ष्यसे॥३३॥

पूर्वजन्मिन ते सुभ्रु कृता मद्भक्तिरुत्तमा। अतस्तव विमोक्षाय रूपं मे दर्शितं शुभे॥३४॥ ध्यात्वा मद्रूपमिनशमालोचय मयोदितम्। प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वन्त्यिप न लिप्यसे॥३५॥

श्रीरामेणोदितं सर्वं श्रुत्वा ताराऽतिविस्मिता। देहाभिमानजं शोकं त्यक्तवा नत्वा रघूक्तमम्॥३६॥ आत्मानुभवसन्तुष्टा जीवन्मुक्ता बभूव ह। क्षणसङ्गममात्रेण रामेण परमात्मना॥३७॥ अनादिबन्धं निर्धूय मुक्ता साऽपि विकल्मषा। सुग्रीवोऽपि च तच्छुत्वा रामवऋात्समीरितम्॥३८॥ जहावज्ञानमखिलं स्वस्थचित्तोऽभवत्तदा। ततः सुग्रीवमाहेदं रामो वानरपुङ्गवम्॥३९॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य पुत्रेण यदुक्तं साम्परायिकम्। कुरु सर्वं यथान्यायं संस्कारादि ममाऽऽज्ञया॥४०॥ तथेति बलिभिर्मुख्यैर्वानरैः परिणीय तम्। वालिनं पुष्पके क्षिप्त्वा सर्वराजोपचारकैः॥४१॥ भेरीदुन्दुभिनिघोषेर्बाह्मणैर्मन्त्रिभिः सह। यूथपैर्वानरैः पौरेस्तारया चाङ्गदेन च॥४२॥ गत्वा चकार तत्सर्वं यथाशास्त्रं प्रयत्नतः। स्नात्वा जगाम रामस्य समीपं मन्त्रिभिः सह॥४३॥

नत्वा रामस्य चरणौ सुग्रीवः प्राह हृष्ट्धीः। राज्यं प्रशाधि राजेन्द्र वानराणां समृद्धिमत्॥४४॥ दासोऽहं ते पादपद्मं सेवे लक्ष्मणविचरम्। इत्युक्तो राघवः प्राह सुग्रीवं सिस्मितं वचः॥४५॥ त्वमेवाहं न सन्देहः शीघ्रं गच्छ ममऽऽज्ञया। पुरराज्याधिपत्ये त्वं स्वात्मानमभिषेचय॥४६॥ नगरं न प्रवेक्ष्यामि चतुर्दश समाः सखे। आगमिष्यति मे भ्राता लक्ष्मणः पत्तनं तव॥४७॥ अङ्गदं यौवराज्ये त्वमभिषेचय सादरम्। अहं समीपे शिखरे पर्वतस्य सहानुजः॥४८॥ वत्स्यामि वर्षदिवसांस्ततस्त्वं यत्नवान् भव। किञ्चित्कालं पुरे स्थित्वा सीतायाः परिमार्गणे॥४९॥ साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह सुग्रीवो रामपादयोः। यदाज्ञापयसे देव तत्तथैव करोम्यहम्॥५०॥ अनुज्ञातश्च रामेण सुग्रीवस्तु सलक्ष्मणः। गत्वा पुरं तथा चक्रे यथा रामेण चोदितः॥५१॥

सुग्रिवेण यथान्यायं पूजितो लक्ष्मणस्तदा। आगत्य राघवं शीघ्रं प्रणिपत्योपतस्थिवान्॥५२॥ ततो रामो जगामाऽऽशु लक्ष्मणेन समन्वितः। प्रवर्षणगिरेरूर्धं शिखरं भूरिविस्तरम्॥५३॥ तत्रैकं गह्वरं दृष्ट्वा स्फाटिकं दीप्तिमच्छुभम्। वर्षवातातपसहं फलमूलसमीपगम्। वासाय रोचयामास तत्र रामः सलक्ष्मणः॥५४॥ दिव्यमूलफलपुष्पसंयुते मौक्तिकोपमजलौघपल्वले। चित्रवर्णमृगपक्षिशोभिते पर्वते रघुकुलोत्तमोऽवसत्॥५५॥ ॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे तृतीयः सर्गः॥३॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

तत्र वार्षिकदिनानि राघवो लीलया मणिगुहासु सञ्चरन्। पक्कमूलफलभोगतोषितो लक्ष्मणेन सहितोऽवसत्सुखम्॥१॥ वातनुन्नजलपूरितमेघानन्तरस्तनितवैद्युतगर्भान् । वीक्ष्य विस्मयमगाद्गजयूथान् यद्वदाहितसुकाञ्चनकक्षान्॥२॥

समास्वाद्य हृष्टपुष्टमृगद्विजाः। नवघासं धावन्तो परितो रामं वीक्ष्य विस्फारितेक्षणाः॥३॥ न चलन्ति सदा ध्याननिष्ठा इव मुनीश्वराः। मानुषरूपेण गिरिकाननभूमिषु॥४॥ रामं चरन्तं परमात्मानं ज्ञात्वा सिद्धगणा भुवि। मृगपक्षिगणा भूत्वा राममेवानुसेविरे॥५॥ सौमित्रिरेकदा राममेकान्ते ध्यानतत्परम्। समाधिविरमे भक्त्या प्रणयाद्विनयान्वितः॥६॥ अबवीदेव ते वाक्यात्पूर्वीक्ताद्विगतो मम। अनाद्यविद्यासम्भूतः संशयो हृदि संस्थितः॥७॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि कियामार्गेण राघव। भवदाराधनं लोके यथा कुर्वन्ति योगिनः॥८॥ इदमेव सदा प्राहुर्योगिनो मुक्तिसाधनम्। नारदोऽपि तथा व्यासो ब्रह्मा कमलसम्भवः॥९॥ ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानामाश्रमाणां च मोक्षदम्। स्त्रीशूद्राणां च राजेन्द्र सुलभं मुक्तिसाधनम्। तव भक्ताय में भ्रात्रे बूहि लोकोपकारकम्॥१०॥

श्रीराम उवाच

मम पूजाविधानस्य नान्तोऽस्ति रघुनन्दन। तथाऽपि वक्ष्ये सङ्क्षेपाद्यथावदनुपूर्वज्ञः॥११॥

स्वगृह्योक्तप्रकारेण द्विजत्वं प्राप्य मानवः। सकाशात्सद्गरोर्मन्त्रं लब्ध्वा मद्भक्तिसंयुतः॥१२॥

तेन सन्दर्शितविधिर्मामेवाराधयेत्सुधीः। हृदये वाऽनले वार्चेत्प्रतिमादौ विभावसौ॥१३॥

शालग्रामशिलायां वा पूजयेन्मामतिन्द्रतः। प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत प्रथमं देहशुद्धये॥१४॥

वेदतन्त्रोदितैर्मन्त्रेर्मृह्लेपनविधानतः । सन्ध्यादि कर्म यन्नित्यं तत्कुर्याद्विधिना बुधः॥१५॥

सङ्कल्पमादौ कुर्वीत सिद्धर्थं कर्मणां सुधीः। स्वगुरुं पूजयेद्भक्त्या महुद्धा पूजको मम॥१६॥

शिलायां स्नपनं कुर्यात्प्रतिमासु प्रमार्जनम्। प्रसिद्धैर्गन्धपुष्पाद्यैर्मत्पूजा सिद्धिदायिका॥१७॥

अमायिकोऽनुवृत्त्या मां पूजयेन्नियतव्रतः। प्रतिमादिष्वलङ्कारः प्रियो मे कुलनन्दन॥१८॥ अग्नौ यजेत हविषा भास्करे स्थण्डिले यजेत। भक्तेनोपहृतं प्रीत्ये श्रद्धया मम वार्यपि॥१९॥ किं पुनर्भक्ष्यभोज्यादि गन्धपुष्पाक्षतादिकम्। पूजाद्रव्याणि सर्वाणि सम्पाद्यैवं समारभेत्॥२०॥ चैलाजिनकुशैः सम्यगासनं परिकल्पयेत्। तत्रोपविश्य देवस्य सम्मुखं शुद्धमानसः॥२१॥ ततो न्यासं प्रकुर्वीत मातृकाबहिरान्तरम्। केशवादि ततः कुर्यात्तत्त्वन्यासं ततः परम्॥२२॥ मन्मूर्तिपञ्जरन्यासं मन्त्रन्यासं ततो न्यसेत्। प्रतिमादाविप तथा कुर्यान्नित्यमतिन्द्रतः॥२३॥ कलशं स्वपुरो वामे क्षिपेत्पुष्पादि दक्षिणे। अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थं मधुपर्कार्थमेव च॥२४॥ तथैवाचमनार्थं तु न्यसेत्पात्रचतुष्टयम्। हृत्पद्मे भानुविमले मत्कलां जीवसंज्ञिताम्॥२५॥

ध्यायेत्स्वदेहमखिलं तया व्याप्तमरिन्दम। तामेवावाहयेन्नित्यं प्रतिमादिषु मत्कलाम्॥२६॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवस्त्रविभूषणैः। यावच्छक्योपचारैर्वा त्वर्चयेन्माममायया॥२७॥ विभवे सति कर्पूरकुङ्कमागरुचन्दनैः। अर्चयेन्मन्त्रवन्नित्यं सुगन्यकुसुमैः शुभैः॥२८॥ द्शावरणपूजां वै ह्यागमोक्तां प्रकारयेत्। नीराजनैर्धूपदीपैनैविद्यैर्बहुविस्तरैः श्रद्धयोपहरेन्नित्यं श्रद्धाभुगहमीश्वरः। होमं कुर्यात्प्रयत्नेन विधिना मन्त्रकोविदः॥३०॥ अगस्त्येनोक्तमार्गेण कुण्डेनागमवित्तमः। जुहुयान्मूलमन्त्रेण पुंसूक्तेनाथवा बुधः॥३१॥ अथवौपासनाग्नौ वा चरुणा हविषा तथा। तप्तजाम्ब्रनदप्रख्यं दिव्याभरणभूषितम्॥३२॥ ध्यायेदनलमध्यस्थं होमकाले सदा बुधः। पार्षदेभ्यो बलिं दत्त्वा होमशेषं समापयेत्॥३३॥ ततो जपं प्रकुर्वीत ध्यायेन्मां यतवाक् स्मरन्। मुखवासं च ताम्बूलं दत्त्वा प्रीतिसमन्वितः॥३४॥ मदर्थे नृत्यगीतादि स्तुतिपाठादि कारयेत्। प्रणमेदण्डवद्भुमौ हृदये मां निधाय च॥३५॥ शिरस्याधाय मद्दत्तं प्रसादं भावनामयम्। पाणिभ्यां मत्पदे मूर्घि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः॥३६॥ रक्ष मां घोरसंसारादित्युक्तवा प्रणमेत्सुधीः। उद्वासयेद्यथापूर्वं प्रत्यग्ज्योतिषि संस्मरन्॥३७॥ एवमुक्तप्रकारेण पूजयेद्विधिवद्यदि। इहामुत्र च संसिद्धिं प्राप्नोति मद्नुग्रहात्॥३८॥ मद्भक्तो यदि मामेवं पूजां चैव दिने दिने। करोति मम सारूप्यं प्राप्नोत्येव न संशयः॥३९॥ इदं रहस्यं परमं च पावनम् मयैव साक्षात्कथितं सनातनम्। पठत्यजस्रं यदि वा शृणोति यः स सर्वपूजाफलभाङ्ग संशयः॥४०॥

एवं परात्मा श्रीरामः क्रियायोगमनुत्तमम्। पृष्टः प्राह स्वभक्ताय शेषांशाय महात्मने॥४१॥ पुनः प्राकृतवद्रामो मायामालम्ब्य दुःखितः। हा सीतेति वदन्नैव निद्रां लेभे कथञ्चन॥४२॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र किष्किन्धायां सुबुद्धिमान्। हनूमान् प्राह सुग्रीवमेकान्ते कपिनायकम्॥४३॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि तवैव हितमुत्तमम्। रामेण ते कृतः पूर्वमुपकारो ह्यनुत्तमः॥४४॥ कृतघ्नवत्त्वया नूनं विस्मृतः प्रतिभाति मे। त्वत्कृते निहतो वाली वीरस्त्रैलोक्यसम्मतः॥४५॥ राज्ये प्रतिष्ठितोऽसि त्वं तारां प्राप्तोऽसि दुर्लभाम्। स रामः पर्वतस्याये भ्रात्रा सह वसन् सुधीः॥४६॥ त्वदागमनमेकाग्रमीक्षते कार्यगौरवात। त्वं तु वानरभावेन स्त्रीसक्तो नावबुद्यसे॥४७॥ करोमीति प्रतिज्ञाय सीतायाः परिमार्गणम्। न करोषि कृतघ्नस्त्वं हन्यसे वालिवद्रुतम्॥४८॥

हनूमद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वलः। प्रत्युवाच हनूमन्तं सत्यमेव त्वयोदितम्॥४९॥ शीघ्रं कुरु ममाज्ञां त्वं वानराणां तरस्विनाम्। सहस्राणि द्शेदानीं प्रेषयाऽऽशु दिशो द्श॥५०॥ सप्तद्वीपगतान् सर्वान् वानरानानयन्तु ते। पक्षमध्ये समायान्तु सर्वे वानरपुङ्गवाः॥५१॥ ये पक्षमतिवर्तन्ते ते वध्या मे न संशयः। इत्याज्ञाप्य हनूमन्तं सुग्रीवो गृहमाविशत्॥५२॥ सुग्रीवाज्ञां पुरस्कृत्य हनूमान् मन्त्रिसत्तमः। तत्क्षणे प्रेषयामास हरीन् दश दिशः सुधीः॥५३॥ अगणितगुणसत्त्वान् वायुवेगप्रचारान् वनचरगणमुख्यान् पर्वताकाररूपान्। पवनहितकुमारः प्रेषयामास दूता नितरभसतरात्मा दानमानादितृप्तान्॥५४॥ ॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥४॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

रामस्तु पर्वतस्याग्रे मणिसानौ निशामुखे। सीताविरहजं शोकमसहन्निद्मब्रवीत्॥१॥ पश्य लक्ष्मण में सीता राक्षसेन हृता बलात्। मृताऽमृता वा निश्चेतुं न जानेऽद्यापि भामिनीम्॥२॥ जीवतीति मम ब्रूयात्कश्चिद्वा प्रियकृत् स मे। यदि जानामि तां साध्वीं जीवन्तीं यत्र कुत्र वा॥३॥ हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधेः। प्रतिज्ञां शृणु मे भ्रातर्येन मे जनकात्मजा॥४॥ नीता तं भस्मसात्कुर्यां सपुत्रबलवाहनम्। हे सीते चन्द्रवदने वसन्ती राक्षसालये॥५॥ दुःखार्त्ता मामपश्यन्ती कथं प्राणान् धरिष्यसि। चन्द्रोऽपि भानुबद्भाति मम चन्द्राननां विना॥६॥ चन्द्र त्वं जानकीं स्पृष्ट्वा करैर्मां स्पृश शीतलैः। सुग्रीवोऽपि द्याहीनो दुःखितं मां न पश्यति॥७॥

राज्यं निष्कण्टकं प्राप्य स्त्रीभिः परिवृतो रहः। कृतन्नो दृश्यते व्यक्तं पानासक्तोऽतिकामुकः॥८॥ नाऽऽयाति शरदं पश्यन्नपि मार्गयितुं प्रियाम्। पूर्वोपकारिणं दुष्टः कृतन्नो विस्मृतो हि माम्॥९॥ हिन्म सुग्रीवमप्येवं सपुरं सहबान्धवम्। वाली यथा हतो मेऽच सुग्रीवोऽपि तथा भवेत्॥ १०॥ इति रुष्टं समालोक्य राघवं लक्ष्मणोऽब्रवीत्। इदानीमेव गत्वाऽहं सुग्रीवं दुष्टमानसम्॥११॥ मामाज्ञापय हत्वा तमायास्ये राम तेऽन्तिकम्। इत्युक्तवा धनुरादाय स्वयं तूणीरमेव च॥१२॥ गन्तुमभ्युद्यतं वीक्ष्य रामो लक्ष्मणमबवीत्। न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा॥१३॥ किन्तु भीषय सुग्रीवं वालिवत्त्वं हिनष्यसे। इत्युत्तवा शीघ्रमादाय सुग्रीवप्रतिभाषितम्॥१४॥ आगत्य पश्चाद्यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम्। तथेति लक्ष्मणोऽगच्छत्त्वरितो भीमविक्रमः॥१५॥

किष्किन्धां प्रति कोपेन निर्दहन्निव वानरान्। सर्वज्ञो नित्यलक्ष्मीको विज्ञानात्माऽपि राघवः॥१६॥ सीतामनुशुशोचार्त्तः प्राकृतः प्राकृतामिव। बुद्यादिसाक्षिणस्तस्य मायाकार्यातिवर्तिनः॥१७॥ रागादिरहितस्यास्य तत्कार्यं कथमुद्भवेत्। ब्रह्मणोक्तमृतं कर्तुं राज्ञो दशरथस्य हि॥१८॥ तपसः फलदानाय जातो मानुषवेषधृक्। मायया मोहिताः सर्वे जना अज्ञानसंयुताः॥१९॥ कथमेषां भवेन्मोक्ष इति विष्णुर्विचिन्तयन्। कथां प्रथितुं लोके सर्वलोकमलापहाम्॥२०॥ रामायणाभिधां रामो भूत्वा मानुषचेष्टकः। कोधं मोहं च कामं च व्यवहारार्थसिद्धये॥२१॥ तत्तत्कालोचितं गृह्णन् मोहयत्यवशाः प्रजाः। इवाशेषगुणेषु गुणवर्जितः॥२२॥ अनुरक्त विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्तिः साक्ष्यगुणान्वितः। अतः कामादिभिर्नित्यमविलिप्तो यथा नभः॥२३॥

विन्दन्ति मुनयः केचिज्ञानन्ति जनकादयः। तद्भक्ता निर्मलात्मानः सम्यग्जानन्ति नित्यदा। भक्तचित्तानुसारेण जायते भगवानजः॥२४॥ लक्ष्मणोऽपि तदा गत्वा किष्किन्धानगरान्तिकम्। ज्याघोषमकरोत्तीव्रं भीषयन् सर्ववानरान्॥२५॥ तं दृष्ट्वा प्राकृतास्तत्र वानरा वप्रमूर्धनि। चकुः किलकिलाशब्दं धृतपाषाणपादपाः॥२६॥ तान् दृष्ट्वा कोधताम्राक्षो वानरान् लक्ष्मणस्तदा। निर्मूलान् कर्तुमुद्युक्तो धनुरानम्य वीर्यवान्॥२७॥ ततः शीघ्रं समाष्ठत्य ज्ञात्वा लक्ष्मणमागतम्॥ २८॥ निवार्य वानरान् सर्वानङ्गदो मन्त्रिसत्तमः। गत्वा लक्ष्मणसामीप्यं प्रणनाम स दण्डवत्॥ २९॥ ततोऽङ्गदं परिष्वज्य लक्ष्मणः प्रियवर्धनः। उवाच वत्स गच्छ त्वं पितृव्याय निवेद्य॥३०॥ मामागतं राघवेण चोदितं रौद्रमूर्तिना। तथेति त्वरितं गत्वा सुग्रीवाय न्यवेदयत्॥ ३१॥

लक्ष्मणः कोधताम्राक्षः पुरद्वारि बहिः स्थितः। तच्छुत्वाऽतीव सन्त्रस्तः सुग्रीवो वानरेश्वरः॥३२॥ आहूय मन्त्रिणां श्रेष्ठं हनूमन्तमथाबवीत्। गच्छ त्वमङ्गदेनाशु लक्ष्मणं विनयान्वितः॥३३॥ सान्त्वयन् कोपितं वीरं शनैरानय साद्रम्। प्रेषियत्वा हनूमन्तं तारामाह कपीश्वरः॥३४॥ त्वं गच्छ सान्त्वयन्ती तं लक्ष्मणं मृदुभाषितैः। शान्तमन्तःपुरं नीत्वा पश्चाद्दर्शय मेऽनघे॥३५॥ भवत्विति ततस्तारा मध्यकक्षं समाविशत। हनुमानङ्गदेनैव सहितो लक्ष्मणान्तिकम्॥३६॥ गत्वा ननाम शिरसा भक्त्या स्वागतमब्रवीत्। एहि वीर महाभाग भवद्गहमशङ्कितम्॥३७॥ प्रविश्य राजदारादीन् दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च। यदाज्ञापयसे पश्चात्तत्सर्वं करवाणि भोः॥३८॥ इत्युक्तवा लक्ष्मणं भक्त्या करे गृह्य स मारुतिः। आनयामास नगरमध्याद्राजगृहं प्रति॥३९॥

पश्यंस्तत्र महासौधान् यूथपानां समन्ततः। जगाम भवनं राज्ञः सुरेन्द्रभवनोपमम्॥४०॥ मध्यकक्षे गता तत्र तारा ताराधिपानना। सर्वाभरणसम्पन्ना मदरक्तान्तलोचना॥४१॥ उवाच लक्ष्मणं नत्वा स्मितपूर्वाभिभाषिणी। एहि देवर भद्रं ते साधुस्त्वं भक्तवत्सलः॥४२॥ किमर्थं कोपमाकार्षीर्भक्ते भृत्ये कपीश्वरे। बहुकालमनाश्वासं दुःखमेवानुभूतवान्॥४३॥ इदानीं बहुदुःखोघाद्भवद्भिरभिरक्षितः। भवत्प्रसादात्सुग्रीवः प्राप्तसौख्यो महामतिः॥४४॥ कामासक्तो रघुपतेः सेवार्थं नागतो हरिः। आगमिष्यन्ति हरयो नानादेशगताः प्रभो॥४५॥ प्रेषितो दशसाहस्रा हरयो रघुसत्तम। आनेतुं वानरान् दिग्भ्यो महापर्वतसन्निभान्॥४६॥ सुग्रीवः स्वयमागत्य सर्ववानरयूथपैः। वधयिष्यति दैत्यौघान् रावणं च हनिष्यति॥४७॥

त्वयैव सहितोऽद्यैव गन्ता वानरपुङ्गवः। पश्यान्तर्भवनं तत्र पुत्रदारसुहृद्वतम्॥४८॥ दृष्ट्वा सुग्रीवमभयं दत्त्वा नय सहैव ते। ताराया वचनं श्रुत्वा कृशकोधोऽथ लक्ष्मणः॥४९॥ जगामान्तःपुरं यत्र सुग्रीवो वानरेश्वरः। रुमामालिङ्मा सुग्रीवः पर्यङ्के पर्यवस्थितः॥५०॥ दृष्ट्वा लक्ष्मणमत्यर्थमुत्पपातातिभीतवत्। तं रष्ट्वा लक्ष्मणः कुद्धो मद्विह्नलितेक्षणम्॥५१॥ सुग्रीवं प्राह दुर्वृत्त विस्मृतोऽसि रघूत्तमम्। वाली येन हतो वीरः स बाणोऽद्य प्रतीक्षते॥५२॥ त्वमेव वालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः। एवमत्यन्तपरुषं वदन्तं लक्ष्मणं तदा॥५३॥ उवाच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभाषसे। त्वत्तोऽधिकतरो रामे भक्तोऽयं वानराधिपः॥५४॥ रामकार्यार्थमनिशं जागतिं न तु विस्मृतः। आगताः परितः पश्य वानराः कोटिशः प्रभो॥५५॥ गमिष्यन्त्यचिरेणैव सीतायाः परिमार्गणम्। साधियष्यति सुग्रीवो रामकार्यमशेषतः॥५६॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं सौमित्रिर्रुजितोऽभवत्। सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्याद्यैर्रुक्ष्मणं समपूजयत्॥५७॥

आलिज्ञ्य प्राह रामस्य दासोऽहं तेन रक्षितः। रामः स्वतेजसा लोकान् क्षणार्द्धेनैव जेष्यति॥५८॥

सहायमात्रमेवाहं वानरैः सहितः प्रभो। सौमित्रिरपि सुग्रीवं प्राह किञ्चिन्मयोदितम्॥५९॥

तत्क्षमस्व महाभाग प्रणयाद्भाषितं मया। गच्छामोऽद्यैव सुग्रीव रामस्तिष्ठति कानने॥६०॥

एक एवातिदुःखार्त्तो जानकीविरहात्प्रभुः। तथेति रथमारुह्य लक्ष्मणेन समन्वितः॥६१॥

वानरैः सहितो राजा राममेवान्वपद्यत॥६२॥

भेरीमृदङ्गैर्बहुऋक्षवानरेः श्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्च शोभितः। नीलाङ्गदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः समावृतो राघवमभ्यगाद्धरिः॥६३॥ 288 षष्टः सर्गः

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥५॥

॥षष्ठः सर्गः॥

दृष्ट्वा रामं समासीनं गुहाद्वारि शिलातले। चैलाजिनधरं श्यामं जटामौलिविराजितम्॥१॥ विशालनयनं शान्तं स्मितचारुमुखाम्बुजम्। सीताविरहसन्तप्तं पश्यन्तं मृगपक्षिणः॥२॥ रथाद्र्रात्समुत्पत्य वेगात्सुग्रीवलक्ष्मणौ। रामस्य पादयोरये पेततुर्भक्तिसंयुतौ॥३॥ रामः सुग्रीवमालिञ्च पृष्ट्वाऽनामयमन्तिके। स्थापयित्वा यथान्यायं पूजयामास धर्मवित्॥४॥ ततोऽबवीद्रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो भक्तिनम्रधीः। देव पश्य समायान्तीं वानराणां महाचमूम्॥५॥ कुलाचलाद्रिसम्भूता मेरुमन्द्रसन्निभाः। नानाद्वीपसरिच्छैलवासिनः पर्वतोपमाः॥६॥

असङ्खाताः समायान्ति हरयः कामरूपिणः। सर्वे देवांशसम्भूताः सर्वे युद्धविशारदाः॥७॥ अत्र केचिद्रजबलाः केचिद्दशगजोपमाः। गजायुतबलाः केचिद्न्येऽमितबलाः प्रभो॥८॥ केचिदञ्जनकूटाभाः केचित्कनकसन्निभाः। केचिद्रक्तान्तवद्ना दीर्घवालास्तथाऽपरे॥९॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशाः केचिद्राक्षससन्निभाः। गर्जन्तः परितो यान्ति वानरा युद्धकाङ्क्षिणः॥१०॥ त्वदाज्ञाकारिणः सर्वे फलमूलाशनाः प्रभो। ऋक्षाणामधिपो वीरो जाम्बवान्नाम बुद्धिमान्॥११॥ एष मे मन्त्रिणां श्रेष्ठः कोटिभल्लकवृन्दपः। हनूमानेष विख्यातो महासत्त्वपराक्रमः॥१२॥ वायुपत्रोऽतितेजस्वी मन्त्री बुद्धिमतां वरः। नलो नीलश्च गवयो गवाक्षो गन्धमादनः॥१३॥ शरभो मैन्दवश्चैव गजः पनस एव च। वलीमुखो द्धिमुखः सुषेणस्तार एव च॥१४॥

केसरी च महासत्त्वः पिता हनुमतो बली। एते ते यूथपा राम प्राधान्येन मयोदिताः॥ १५॥ महात्मानो महावीर्याः शकतुल्यपराक्रमाः। एते प्रत्येकतः कोटिकोटिवानरयूथपाः॥१६॥ तवाज्ञाकारिणः सर्वे सर्वे देवांशसम्भवाः। एष वालिसुतः श्रीमानङ्गदो नाम विश्रुतः॥१७॥ वालितुल्यबलो वीरो राक्षसानां बलान्तकः। एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः॥१८॥ योद्धारः पर्वताग्रैश्च निपुणाः शत्रुघातने। आज्ञापय रघुश्रेष्ठ सर्वे ते वशवर्तिनः॥१९॥ रामः सुग्रीवमालिञ्च हर्षपूर्णाश्रुलोचनः। प्राह सुग्रीव जानासि सर्वं त्वं कार्यगौरवम्॥२०॥ मार्गणार्थं हि जानक्या नियुङ्ख यदि रोचते। श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः प्रीतमानसः॥२१॥ प्रेषयामास बलिनो वानरान् वानरर्षभः। दिक्षु सर्वासु विविधान् वानरान् प्रेष्य सत्वरम्॥२२॥ दक्षिणां दिशमत्यर्थं प्रयत्नेन महाबलान्। युवराजं जाम्बवन्तं हनूमन्तं महाबलम्॥२३॥

नलं सुषेणं शरभं मैन्दं द्विविदमेव च। प्रेषयामास सुग्रीवो वचनं चेदमब्रवीत्॥२४॥

विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम्। मासादर्वाङ्गिवर्तध्वं मच्छासनपुरःसराः॥२५॥

सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत्। तदा प्राणान्तिकं दण्डं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः॥२६॥

इति प्रस्थाप्य सुग्रीवो वानरान् भीमविक्रमान्। रामस्य पार्श्वे श्रीरामं नत्वा चोपविवेश सः॥२७॥

गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमबवीत्। अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यङ्गुलीयकमुत्तमम्॥२८॥

मन्नामाक्षरसंयुक्तं सीतायै दीयतां रहः। अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम। जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव॥२९॥

एवं कपीनां राज्ञा ते विसृष्टाः परिमार्गणे। सीताया अङ्गदमुखा बभ्रमुस्तत्र तत्र ह॥३०॥ भ्रमन्तो विन्ध्यगहने दृहशुः पर्वतोपमम्। राक्षसं भीषणाकारं भक्षयन्तं मृगान् गजान्॥३१॥ रावणोऽयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानरपुङ्गवाः। जघ्नः किलकिलाशब्दं मुञ्चन्तो मुष्टिभिः क्षणात्॥३२॥ नायं रावण इत्युक्तवा ययुरन्यन्महद्वनम्। तृषार्ता सिललं तत्र नाविन्दन् हरिपुङ्गवाः॥३३॥ विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः। द्दशुर्गह्वरं तत्र तृणगुल्मावृतं महत्॥३४॥ आर्द्रपक्षान् कौञ्चहंसान्निःसृतान् दृदशुस्ततः। अत्रास्ते सलिलं नूनं प्रविशामो महागुहाम्॥३५॥ इत्युत्तवा हनुमानग्रे प्रविवेश तमन्वयुः। सर्वे परस्परं धृत्वा बाहून् बाहुभिरुत्सुकाः॥३६॥ अन्धकारे महदूरं गत्वाऽपश्यन् कपीश्वराः। जलाशयान् मणिनिभतोयान् कल्पद्रमोपमान्॥३७॥

वृक्षान् पकफलैर्नम्रान् मधुद्रोणसमन्वितान्। गृहान् सर्वगुणोपेतान् मणिवस्त्रादिपूरितान्॥३८॥ दिव्यभक्ष्यान्नसहितान् मानुषैः परिवर्जितान्। विस्मितास्तत्र भवने दिव्ये कनकविष्टरे॥३९॥ प्रभया दीप्यमानां तु दृहशुः स्त्रियमेककाम्। ध्यायन्तीं चीरवसनां योगिनीं योगमास्थिताम्॥४०॥ प्रणेमुस्तां महाभागां भक्त्या भीत्या च वानराः। दृष्ट्वा तान् वानरान् देवी प्राह यूयं किमागताः॥४१॥ कुतो वा कस्य दूता वा मत्स्थानं किं प्रधर्षथ। तच्छुत्वा हनुमानाह शृणु वक्ष्यामि देवि ते॥४२॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा द्शरथः प्रभुः। तस्य पुत्रो महाभागो ज्येष्ठो राम इति श्रुतः॥४३॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य सभार्यः सानुजो वनम्। गतस्तत्र हृता भार्या तस्य साध्वी दुरात्मना॥४४॥ रावणेन ततो रामः सुग्रीवं सानुजो ययौ। सुयीवो मित्रभावेन रामस्य प्रियवल्लभाम्॥४५॥

मृगयध्वमिति प्राह ततो वयमुपागताः। ततो वनं विचिन्वन्तो जानकीं जलकाङ्क्षिणः॥४६॥ प्रविष्टा गह्नरं घोरं दैवादत्र समागताः। त्वं वा किमर्थमत्रासि का वा त्वं वद् नः शुभे॥४७॥ योगिनी च तथा दृष्ट्वा वानरान् प्राह हृष्ट्धीः। यथेष्टं फलमूलानि जग्ध्वा पीत्वाऽमृतं पयः॥४८॥ आगच्छत ततो वक्ष्ये मम वृत्तान्तमादितः। तथेति भुक्तवा पीत्वा च हृष्टास्ते सर्ववानराः॥४९॥ देव्याः समीपं गत्वा ते बद्धाञ्जलिपुटाः स्थिताः। ततः प्राह हनूमन्तं योगिनी दिव्यदर्शना॥५०॥ हेमा नाम पुरा दिव्यरूपिणी विश्वकर्मणः। पुत्री महेशं नृत्येन तोषयामास भामिनी॥५१॥ तुष्टो महेशः प्रददाविदं दिव्यपुरं महत्। अत्र स्थिता सा सुदती वर्षाणामयुतायुतम्॥५२॥ तस्या अहं सखी विष्णुतत्परा मोक्षकाङ्क्षिणी। नाम्ना स्वयम्प्रभा दिव्यगन्धर्वतनया पुरा॥५३॥

गच्छन्ती ब्रह्मलोकं सा मामाहेदं तपश्चर। अत्रैव निवसन्ती त्वं सर्वप्राणिविवर्जिते॥५४॥ त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः। भूभारहरणार्थाय विचरिष्यति कानने॥५५॥ मार्गन्तो वानरास्तस्य भार्यामायान्ति ते गुहाम्। पूजियत्वाऽथ तान् नत्वा रामं स्तुत्वा प्रयत्नतः॥५६॥ यातासि भवनं विष्णोर्योगिगम्यं सनातनम्। इतोऽहं गन्तुमिच्छामि रामं द्रष्टुं त्वरान्विता॥५७॥ यूयं पिद्ध्वमक्षीणि गमिष्यथ बहिर्गृहाम्। तथैव चकुस्ते वेगाद्गताः पूर्वस्थितं वनम्॥५८॥ साऽपि त्यक्तवा गुहां शीघ्रं ययौ राघवसन्निधिम्। तत्र रामं ससुग्रीवं लक्ष्मणं च ददर्श ह॥५९॥ कृत्वा प्रदक्षिणं रामं प्रणम्य बहुद्याः सुधीः। आह गद्गदया वाचा रोमाञ्चिततनूरुहा॥६०॥ दासी तवाहं राजेन्द्र दर्शनार्थमिहाऽऽगता। बहुवर्षसहस्राणि तप्तं मे दुश्चरं तपः॥६१॥

गुहायां दर्शनार्थं ते फलितं मेऽद्य तत्तपः। अद्य हि त्वां नमस्यामि मायायाः परतः स्थितम्॥६२॥ सर्वभूतेषु चालक्ष्यं बहिरन्तरवस्थितम्। योगमायाजवनिकाच्छन्नो मानुषविग्रहः॥६३॥ न लक्ष्यसेऽज्ञानदृशां शैलूष इव रूपधृक्। महाभागवतानां त्वं भक्तियोगविधित्सया॥६४॥ अवतीर्णोऽसि भगवन् कथं जानामि तामसी। लोके जानातु यः कश्चित्तव तत्त्वं रघूत्तम॥६५॥ ममैतदेव रूपं ते सदा भातु हृदालये। राम ते पाद्युगलं द्शितं मोक्षद्र्शनम्॥ ६६॥ अदर्शनं भवाणीनां सन्मार्गपरिदर्शनम्। धनपुत्रकलत्रादिविभूतिपरिदर्पितः अकिञ्चनधनं त्वाऽद्य नाभिधातुं जनोऽर्हति॥६७॥ निवृत्तगुणमार्गाय निष्किञ्चनधनाय ते॥६८॥

नमः स्वात्माभिरामाय निर्गुणाय गुणात्मने। कालरूपिणमीशानमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥६९॥

समं चरन्तं सर्वत्र मन्ये त्वां पुरुषं परम्। देव ते चेष्टितं कश्चिन्न वेद नृविडम्बनम्॥७०॥ न तेऽस्ति कश्चिद्दयितो द्वेष्यो वाऽपर एव च। त्वन्मायापिहितात्मानस्त्वां पश्यन्ति तथाविधम्॥७१॥ अजस्याकर्तुरीशस्य देवतिर्यङ्गरादिषु। जन्मकर्मादिकं यद्यत्तदृत्यन्तविडम्बनम्॥७२॥ त्वामाहुरक्षरं जातं कथाश्रवणसिद्धये। केचित्कोसलराजस्य तपसः फलसिद्धये॥७३॥ कौसल्यया प्रार्थ्यमानं जातमाहुः परे जनाः। दुष्टराक्षसभूभारहरणायार्थितो विभुः॥७४॥ ब्रह्मणा नररूपेण जातोऽयमिति केचन। शृण्वन्ति गायन्ति च ये कथास्ते रघुनन्दन॥७५॥ पश्यन्ति तव पादाङां भवार्णवसुतारणम्। त्वन्मायागुणबद्धाहं व्यतिरिक्तं गुणाश्रयम्॥७६॥ कथं त्वां देव जानीयां स्तोतुं वाऽविषयं विभुम्। नमस्यामि रघुश्रेष्ठं बाणासनशरान्वितम्। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सुग्रीवादिभिरन्वितम्॥७७॥

एवं स्तुतो रघुश्रेष्ठः प्रसन्नः प्रणताघहृत्। उवाच योगिनीं भक्तां किं ते मनिस काङ्कितम्॥७८॥

सा प्राह राघवं भक्त्या भक्तिं ते भक्तवत्सल। यत्र कुत्रापि जाताया निश्चलां देहि मे प्रभो॥७९॥

त्वद्भक्तेषु सदा सङ्गो भूयान्मे प्राकृतेषु न। जिह्वा मे रामरामेति भक्त्या वदतु सर्वदा॥८०॥

मानसं श्यामलं रूपं सीतालक्ष्मणसंयुतम्। धनुर्बाणधरं पीतवाससं मुकुटोज्ज्वलम्॥८१॥

अङ्गदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुण्डलैः। भान्तं स्मरतु मे राम वरं नान्यं वृणे प्रभो॥८२॥

श्रीराम उवाच

भवत्वेवं महाभागे गच्छ त्वं बदरीवनम्। तत्रैव मां स्मरन्ती त्वं त्यक्तवेदं भूतपञ्चकम्। मामेव परमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यसे॥८३॥ श्रुत्वा रघूत्तमवचोऽमृतसारकल्पम् गत्वा तदैव बदरीतरुखण्डजुष्टम्। तीर्थं तदा रघुपतिं मनसा स्मरन्ती त्यक्तवा कलेवरमवाप परं पदं सा॥८४॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः॥ ६॥

॥ सप्तमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र समासीना वृक्षखण्डेषु वानराः। चिन्तयन्तो विमुह्यन्तः सीतामार्गणकर्शिताः॥१॥

तत्रोवाचाङ्गदः कांश्चिद्वानरान् वानरर्षभः। भ्रमतां गह्नरेऽस्माकं मासो नूनं गतोऽभवत्॥२॥

सीता नाधिगताऽस्माभिर्न कृतं राजशासनम्। यदि गच्छाम किष्किन्धां सुग्रीवोऽस्मान् हनिष्यति॥३॥

विशेषतः शत्रुसुतं मां मिषान्निहनिष्यति। मिय तस्य कृतः प्रीतिरहं रामेण रक्षितः॥४॥ इदानीं रामकार्यं मे न कृतं तन्मिषं भवेत्। तस्य मद्धनने नूनं सुग्रीवस्य दुरात्मनः॥५॥ मातृकल्पां भ्रातृभार्यां पापात्माऽनुभवत्यसौ। न गच्छेयमतः पार्श्वं तस्य वानरपुङ्गवाः॥६॥ त्यक्ष्यामि जीवितं चात्र येन केनापि मृत्युना। इत्यश्रुनयनं केचिद्दष्ट्वा वानरपुङ्गवाः॥७॥ व्यथिताः साश्रुनयना युवराजमथाबुवन्॥८॥ किमर्थं तव शोकोऽत्र वयं ते प्राणरक्षकाः। भवामो निवसामोऽत्र गुहायां भयवर्जिताः॥९॥ सर्वसौभाग्यसहितं पुरं देवपुरोपमम्। शनैः परस्परं वाक्यं वदतां मारुतात्मजः॥१०॥ श्रुत्वाऽङ्गदं समालिङ्गा प्रोवाच नयकोविदः।

विचार्यते किमर्थं ते दुर्विचारो न युज्यते॥११॥

राज्ञोऽत्यन्तप्रियस्त्वं हि तारापुत्रोऽतिवल्लभः। रामस्य लक्ष्मणात्त्रीतिस्त्विय नित्यं प्रवर्धते॥१२॥ अतो न राघवाद्भीतिस्तव राज्ञो विशेषतः। अहं तव हिते सक्तो वत्स नान्यं विचारय॥१३॥ गुहावासश्च निर्भेद्य इत्युक्तं वानरेस्तु यत्। तदेतद्रामबाणानामभेद्यं किं जगत्त्रये॥१४॥ ये त्वां दुर्बोधयन्त्येते वानरा वानरर्षभ। पुत्रदारादिकं त्यक्तवा कथं स्थास्यन्ति ते त्वया॥१५॥ अन्यद्गृह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं शृणु मे सुत। रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः॥१६॥ सीता भगवती माया जनसम्मोहकारिणी। लक्ष्मणो भुवनाधारः साक्षाच्छेषः फणीश्वरः॥१७॥ ब्रह्मणा प्रार्थिताः सर्वे रक्षोगणविनाशने। मायामानुषभावेन जाता लोकैकरक्षकाः॥१८॥ वयं च पार्षदाः सर्वे विष्णोर्वेकुण्ठवासिनः। मनुष्यभावमापन्ने स्वेच्छया परमात्मनि॥१९॥

वयं वानररूपेण जातास्तस्यैव मायया। वयं तु तपसा पूर्वमाराध्य जगतां पतिम्॥२०॥ तेनैवानुगृहीताः स्मः पार्षद्त्वमुपागताः। इदानीमपि तस्यैव सेवां कृत्वैव मायया॥२१॥ पुनर्वेकुण्ठमासाद्य सुखं स्थास्यामहे वयम्। इत्यङ्गदमथाऽश्वास्य गता विन्ध्यं महाचलम्॥२२॥ विचिन्वन्तोऽथ शनकैर्जानकीं दक्षिणाम्बुधेः। तीरे महेन्द्राख्यगिरेः पवित्रं पादमाययुः॥२३॥ दृष्ट्रा समुद्रं दुष्पारमगाधं भयवर्धनम्। वानरा भयसन्त्रस्ताः किं कुर्म इति वादिनः॥२४॥ निषेदुरुद्धेस्तीरे सर्वे चिन्तासमन्विताः। मन्त्रयामासुरन्योन्यमङ्गदाद्या महाबलाः॥२५॥ भ्रमतो मे वने मासो गतोऽत्रैव गुहान्तरे। न दृष्टो रावणो वाऽद्य सीता वा जनकात्मजा॥२६॥ सुग्रीवस्तीक्ष्णदण्डोऽस्मान्निहन्त्येव न संशयः। सुग्रीववधतोऽस्माकं श्रेयः प्रायोपवेशनम्॥२७॥

इति निश्चित्य तत्रैव दर्भानास्तीर्य सर्वतः। उपाविवेशुस्ते सर्वे मरणे कृतनिश्चयाः॥२८॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र महेन्द्राद्रिगुहान्तरात्। निर्गत्य शनकैरागाद्गुधः पर्वतसन्निभः॥२९॥ दृष्ट्वा प्रायोपवेदोन स्थितान् वानरपुङ्गवान्। उवाच रानकैर्ग्धः प्राप्तो भक्ष्योऽद्य मे बहुः॥३०॥ एकैकशः क्रमात्सर्वान् भक्षयामि दिने दिने। श्रुत्वा तद्गुप्रवचनं वानरा भीतमानसाः॥३१॥ भक्षियप्यति नः सर्वानसौ गृध्रो न संशयः। रामकार्यं च नास्माभिः कृतं किञ्चिद्धरीश्वराः॥३२॥ सुग्रीवस्यापि च हितं न कृतं स्वात्मनामपि। वृथाऽनेन वधं प्राप्ता गच्छामो यमसादनम्॥३३॥ अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः। मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिन्दमः॥३४॥ सम्पातिस्तु तदा वाक्यं श्रुत्वा वानरभाषितम्। के वा यूयं मम भ्रातुः कर्णपीयूषसन्निभम्॥३५॥

जटायुरिति नामाद्य व्याहरन्तः परस्परम्। उच्यतां वो भयं मा भून्मत्तः प्लवगसत्तमाः॥३६॥ तमुवाचाङ्गदः श्रीमानुत्थितो गृध्रसन्निधौ। रामो दाशरथिः श्रीमान् लक्ष्मणेन समन्वितः॥३७॥ सीतया भार्यया सार्धं विचचार महावने। तस्य सीता हृता साध्वी रावणेन दुरात्मना॥३८॥ मृगयां निर्गते रामे लक्ष्मणे च हृता बलात्। रामरामेति कोशन्ती श्रुत्वा गृध्रः प्रतापवान्॥३९॥ जटायुर्नाम पक्षीन्द्रो युद्धं कृत्वा सुदारुणम्। रावणेन हतो वीरो राघवार्थं महाबलः॥४०॥ रामेण दग्धो रामस्य सायुज्यमगमत्क्षणात्। रामः सुग्रीवमासाद्य सख्यं कृत्वाऽग्निसाक्षिकम्॥४१॥ सुग्रीवचोदितो हत्वा वालिनं सुदुरासदम्। राज्यं ददौ वानराणां सुग्रीवाय महाबलः॥४२॥ सुग्रीवः प्रेषयामास सीतायाः परिमार्गणे। अस्मान् वानरवृन्दान् वै महासत्त्वान् महाबलः॥४३॥ मासादर्वाङ्गिवर्तध्वं नो चेत्प्राणान् हरामि वः। इत्याज्ञया भ्रमन्तोऽस्मिन् वने गह्वरमध्यगाः॥४४॥

गतो मासो न जानीमः सीतां वा रावणं च वा। मर्तुं प्रायोपविष्टा स्मस्तीरे लवणवारिधेः॥४५॥

यदि जानासि हे पक्षिन् सीतां कथय नः शुभाम्। अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सम्पातिर्हृष्टमानसः॥४६॥

उवाच मित्रयो भ्राता जटायुः प्लवगेश्वराः। बहुवर्षसहस्रान्ते भ्रातृवार्ता श्रुता मया॥४७॥

वाक्साहाय्यं करिष्येऽहं भवतां प्रवगेश्वराः। भ्रातुः सलिलदानाय नयध्वं मां जलान्तिकम्॥४८॥

पश्चात्सर्वं शुभं वक्ष्ये भवतां कार्यसिद्धये। तथेति निन्युस्ते तीरं समुद्रस्य विहङ्गमम्॥४९॥

सोऽपि तत्सिलले स्नात्वा भ्रातुर्द्त्त्वा जलाञ्जलिम्। पुनः स्वस्थानमासाद्य स्थितो नीतो हरीश्वरैः। सम्पातिः कथयामास वानरान् परिहर्षयन्॥५०॥ लङ्का नाम नगर्यास्ते त्रिकूटगिरिमूर्धनि। तत्राशोकवने सीता राक्षसीभिः सुरक्षिता॥५१॥

समुद्रमध्ये सा लङ्का शतयोजनदूरतः। दृश्यते मे न सन्देहः सीता च परिदृश्यते॥५२॥

गृध्रत्वाद्दूरदृष्टिर्मे नात्र संशयितुं क्षमम्। शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं यस्तु लङ्घयेत्॥५३॥

स एव जानकीं दृष्ट्वा पुनरायास्यति ध्रुवम्। अहमेव दुरात्मानं रावणं हन्तुमुत्सहे। भ्रातुर्हन्तारमेकाकी किन्तु पक्षविवर्जितः॥५४॥

यतध्वमतियत्नेन लिङ्घतुं सरितां पतिम्। ततो हन्ता रघुश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम्॥५५॥

उल्लब्ध सिन्धुं शतयोजनायतम् लङ्कां प्रविश्याथ विदेहकन्यकाम्। दृष्ट्वा समाभाष्य च वारिधिं पुनः तर्तुं समर्थः कतमो विचार्यताम्॥५६॥ ॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे सप्तमः सर्गः॥७॥

॥ अष्टमः सर्गः॥

अथ ते कौतुकाविष्टाः सम्पातिं सर्ववानराः। पप्रच्छुर्भगवन् ब्रूहि स्वमुदन्तं त्वमादितः॥१॥

सम्पातिः कथयामास स्ववृत्तान्तं पुरा कृतम्। अहं पुरा जटायुश्च भ्रातरौ रूढयौवनौ॥२॥

बलेन दर्पितावावां बलजिज्ञासया खगौ। सूर्यमण्डलपर्यन्तं गन्तुमुत्पतितौ मदात्॥३॥

बहुयोजनसाहस्रं गतौ तत्र प्रतापितः। जटायुस्तं परित्रातुं पक्षेराच्छाद्य मोहतः॥४॥

स्थितोऽहं रिमिभर्दग्धपक्षोऽस्मिन् विन्ध्यमूर्धनि। पतितो दूरपतनान्मूर्च्छितोऽहं कपीश्वराः॥५॥

दिनत्रयात्पुनः प्राणसहितो दग्धपक्षकः। देशं वा गिरिकूटान् वा न जाने भ्रान्तमानसः॥६॥

रानैरुन्मील्य नयने दृष्ट्वा तत्राऽश्रमं राभम्। शनैः शनैराश्रमस्य समीपं गतवानहम्॥७॥ चन्द्रमा नाम मुनिराड्दष्ट्वा मां विस्मितोऽवदत्। सम्पाते किमिदं तेऽद्य विरूपं केन वा कृतम्॥८॥ जानामि त्वामहं पूर्वमत्यन्तं बलवानसि। दग्धौ किमर्थं ते पक्षौ कथ्यतां यदि मन्यसे॥९॥ ततः स्वचेष्टितं सर्वं कथयित्वाऽतिदुःखितः। अबवं मुनिशार्दूल दह्येऽहं दावविह्ना॥१०॥ कथं धारियतुं राक्तो विपक्षो जीवितं प्रभो। इत्युक्तोऽथ मुनिर्वीक्ष्य मां द्यार्द्रविलोचनः॥११॥ शृणु वत्स वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम्। देहमूलिमदं दुःखं देहः कर्मसमुद्भवः॥१२॥ कर्म प्रवर्तते देहेऽहम्बुद्या पुरुषस्य हि। अहङ्कारस्त्वनादिः स्यादविद्यासम्भवो जडः॥१३॥ चिच्छायया सदा युक्तस्तप्तायःपिण्डवत् सदा। तेन देहस्य तादातम्यादेहश्चेतनवान् भवेत्॥१४॥

देहोऽहमिति बुद्धिः स्यादात्मनोऽहङ्कतेर्बलात्। तन्मूल एष संसारः सुखदुःखादिसाधकः॥१५॥ आत्मनो निर्विकारस्य मिथ्या तादात्म्यतः सदा। देहोऽहं कर्मकर्ताऽहमिति सङ्कल्प्य सर्वदा॥१६॥ जीवः करोति कर्माणि तत्फलैर्बच्यतेऽवशः। ऊर्ध्वाधो भ्रमते नित्यं पापपुण्यात्मकः स्वयम्॥१७॥ कृतं मयाऽधिकं पुण्यं यज्ञदानादि निश्चितम्। स्वर्गं गत्वा सुखं भोक्ष्य इति सङ्कल्पवान् भवेत्॥ १८॥ तथैवाध्यासतस्तत्र चिरं भुक्तवा सुखं महत्। क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कर्मचोदितः॥१९॥ पतित्वा मण्डले चेन्दोस्ततो नीहारसंयुतः। भूमौ पतित्वा वीह्यादौ तत्र स्थित्वा चिरं पुनः॥२०॥ भूत्वा चतुर्विधं भोज्यं पुरुषेर्भुज्यते ततः। रेतो भूत्वा पुनस्तेन ऋतौ स्त्रीयोनिसिश्चितः॥२१॥ योनिरक्तेन संयुक्तं जरायुपरिवेष्टितम्। दिनेनैकेन कललं भूत्वा रूढत्वमाप्नुयात्॥२२॥

तत्पुनः पञ्चरात्रेण बुद्धदाकारतामियात्। सप्तरात्रेण तद्पि मांसपेशित्वमाप्नुयात्॥२३॥ पक्षमात्रेण सा पेशी रुधिरेण परिष्ठुता। तस्या एवाङ्करोत्पत्तिः पञ्चविंशतिरात्रिषु॥२४॥ ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोद्रम्। पञ्चधाङ्गानि चैकैकं जायन्ते मासतः क्रमात्॥२५॥ पाणिपादौ तथा पार्श्वः कटिर्जानु तथैव च। मासद्वयात् प्रजायन्ते क्रमेणैव न चान्यथा॥२६॥ त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते अङ्गानां सन्धयः क्रमात्। सर्वाङ्गुल्यः प्रजायन्ते क्रमान्मासचतुष्टये॥२७॥ नासा कर्णों च नेत्रे च जायन्ते पञ्चमासतः। दन्तपङ्किर्नखा गृह्यं पञ्चमे जायते तथा॥२८॥ अवीक् षण्मासतिश्छद्रं कर्णयोर्भवति स्फुटम्। पायुर्मेंद्रमुपस्थं च नाभिश्चापि भवेन्नृणाम्॥२९॥ सप्तमे मासि रोमाणि शिरः केशास्तथैव च। विभक्तावयवत्वं च सर्वं सम्पद्यतेऽष्टमे॥३०॥

जठरे वर्धते गर्भः स्त्रिया एवं विहङ्गम। पञ्चमे मासि चैतन्यं जीवः प्राप्नोति सर्वशः॥३१॥ नाभिसूत्राल्परन्ध्रेण मातृभुक्तान्नसारतः। वर्धते गर्भतः पिण्डो न म्रियेत स्वकर्मतः॥३२॥ स्मृत्वा सर्वाणि जन्मानि पूर्वकर्माणि सर्वशः। जठरानलतप्तोऽयमिदं वचनमब्रवीत्॥३३॥ नानायोनिसहस्रेषु जायमानोऽनुभूतवान्। पुत्रदारादिसम्बन्धं कोटिशः पशुबान्धवान्॥३४॥ कुटुम्बभरणासक्त्या न्यायान्यायैर्धनार्जनम्। कृतं नाकरवं विष्णुचिन्तां स्वप्नेऽपि दुर्भगः॥३५॥ इदानीं तत्फलं भुञ्जे गर्भदुःखं महत्तरम्। अशाश्वते शाश्वतवदेहे तृष्णासमन्वितः॥३६॥ अकार्याण्येव कृतवान्न कृतं हितमात्मनः। इत्येवं बहुधा दुःखमनुभूय स्वकर्मतः॥३७॥ कदा निष्क्रमणं में स्याद्वर्भान्निरयसन्निभात्। इत ऊर्ध्वं नित्यमहं विष्णुमेवानुपूजये॥३८॥

इत्यादि चिन्तयन् जीवो योनियन्त्रप्रपीडितः। जायमानोऽतिदुःखेन नरकात्पातकी यथा॥३९॥ पूतिव्रणान्निपतितः कृमिरेष इवापरः। ततो बाल्यादिदःखानि सर्व एवं विभुञ्जते॥४०॥ त्वया चैवानुभूतानि सर्वत्र विदितानि च। न वर्णितानि मे गृध्र यौवनादिषु सर्वतः॥४१॥ एवं देहोऽहमित्यस्मादभ्यासान्निरयादिकम्। गर्भवासादिदुःखानि भवन्त्यभिनिवेशतः॥४२॥ तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मानं प्रकृतेः परम्। ज्ञात्वा देहादिममतां त्यक्तवाऽऽत्मज्ञानवान् भवेत्॥४३॥ जाग्रदादिविनिर्मुक्तं सत्यज्ञानादिलक्षणम्। शुद्धं बुद्धं सदा शान्तमात्मानमवधारयेत्॥४४॥ चिदात्मनि परिज्ञाते नष्टे मोहेऽज्ञसम्भवे। देहः पतत् वाऽरब्धकर्मवेगेन तिष्ठतु॥४५॥ योगिनो न हि दुःखं वा सुखं वाऽज्ञानसम्भवम्। तस्मादेहेन सहितो यावत्प्रारब्धसङ्खयः॥४६॥

तावत्तिष्ठ सुखेन त्वं धृतकञ्चकसर्पवत्। अन्यद्वक्ष्यामि ते पक्षिन् शृणु मे परमं हितम्॥४७॥

त्रेतायुगे दाशरिथर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः। रावणस्य वधार्थाय दण्डकानागमिष्यति॥४८॥

सीतया भार्यया सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः। तत्राऽश्रमे जनकजां भ्रातृभ्यां रहिते वने॥४९॥

रावणश्चोरवन्नीत्वा लङ्कायां स्थापियष्यति। तस्याः सुग्रीवनिर्देशाद्वानराः परिमार्गणे॥५०॥

आगमिष्यन्ति जलधेस्तीरं तत्र समागमः। त्वया तैः कारणवशाद्भविष्यति न संशयः॥५१॥

तदा सीतास्थितिं तेभ्यः कथयस्व यथार्थतः। तदेव तव पक्षौ द्वावुत्पत्स्येते पुनर्नवौ॥५२॥

सम्पातिरुवाच

बोधयामास मां चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरः। पश्यन्तु पक्षौ मे जातौ नूतनावतिकोमलौ॥५३॥ स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि सीतां द्रक्ष्यथ निश्चयम्।
यत्नं कुरुध्वं दुर्लङ्ख्यसमुद्रस्य विलङ्घने॥५४॥
यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारान्निधिम्
तीर्त्वा गच्छिति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम्।
तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्य भक्ताः प्रिया
यूयं किं न समुद्रमात्रतरणे शक्ताः कथं वानराः॥५५॥
॥इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे
अष्टमः सर्गः॥८॥

॥ नवमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच गते विहायसा गृध्रराजे वानरपुङ्गवाः। हर्षेण महताऽऽविष्टाः सीतादर्शनलालसाः॥१॥ ऊचुः समुद्रं पश्यन्तो नक्रचक्रभयङ्करम्। तरङ्गादिभिरुन्नद्धमाकाशमिव दुर्ग्रहम्॥२॥ परस्परमवोचन् वै कथमेनं तरामहे। उवाच चाङ्गदस्तत्र शृणुध्वं वानरोत्तमाः॥३॥ भवन्तोऽत्यन्तबिलनः शूराश्च कृतिविक्रमाः। को वात्र वारिधिं तीर्त्वा राजकार्यं करिष्यति॥४॥ एतेषां वानराणां स प्राणदाता न संशयः। तदुत्तिष्ठतु मे शीघ्रं पुरतो यो महाबलः॥५॥ वानराणां च सर्वेषां रामसुग्रीवयोरिप। स एव पालको भूयान्नात्र कार्या विचारणा॥६॥ इत्युक्ते युवराजेन तूष्णीं वानरसैनिकाः। आसन्नोचुः किञ्चिद्पि परस्परविलोकिनः॥७॥ अङ्गद उवाच

उच्यतां वै बलं सर्वैः प्रत्येकं कार्यसिद्धये। केन वा साध्यते कार्यं जानीमस्तदनन्तरम्॥८॥ अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वीरा बलं पृथक्। योजनानां दशारभ्य दशोत्तरगुणं जगुः॥९॥

शतादर्वाग्जाम्बवांस्तु प्राह मध्ये वनौकसाम्। पुरा त्रिविक्रमे देवे पादं भूमानलक्षणम्॥१०॥ त्रिःसप्तकृत्वोऽहमगां प्रदक्षिणविधानतः। इदानीं वार्धकग्रस्तो न शकोमि विलिष्ठितुम्॥११॥ अङ्गदोऽप्याह मे गन्तुं शक्यं पारं महोद्धेः। पुनर्लङ्घनसामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा॥१२॥ तमाह जाम्बवान् वीरस्त्वं राजा नो नियामकः। न युक्तं त्वां नियोक्तुं मे त्वं समर्थोऽसि यद्यपि॥१३॥ अङ्गद उवाच

एवं चेत्पूर्ववत्सर्वे स्वप्स्यामो दर्भविष्टरे। केनापि न कृतं कार्यं जीवितुं च न शक्यते॥१४॥

तमाह जाम्बवान् वीरो द्र्शयिष्यामि ते सुत। येनारमाकं कार्यसिद्धिभीविष्यत्यचिरेण च॥१५॥ इत्युक्तवा जाम्बवान् प्राह हनूमन्तमवस्थितम्। हनूमन् किं रहस्तूष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे॥१६॥

प्राप्तेऽज्ञेनेव सामर्थ्यं दर्शयाद्य महाबल। त्वं साक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः॥१७॥

रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना। जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्ट्वोद्यन्तं विभावसुम्॥१८॥ पकं फलं जिघृक्षामीत्युत्सुतं बालचेष्टया। योजनानां पञ्चशतं पतितोऽसि ततो भुवि॥१९॥ अतस्त्वद्बलमाहात्म्यं को वा शक्रोति वर्णितुम्। उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्यं नः पाहि सुव्रत॥२०॥ श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमानतिहर्षितः। चकार नादं सिंहस्य ब्रह्माण्डं स्फोटयन्निव॥२१॥ पर्वताकारस्त्रिविकम इवापरः। लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात्॥२२॥ रावणं सकुलं हत्वाऽऽनेष्ये जनकनन्दिनीम्। यद्वा बद्धा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना॥२३॥ लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम्। यद्वा दृष्ट्वेव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम्॥२४॥ श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं जाम्बवानिदमब्रवीत्। दृष्ट्वैवाऽऽगच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम्॥२५॥ पश्चाद्रामेण सहितो दर्शियष्यसि पौरुषम्। कल्याणं भवताद्भद्र गच्छतस्ते विहायसा॥२६॥ गच्छन्तं रामकार्यार्थं वायुस्त्वामनुगच्छतु। इत्याशीर्भिः समामन्त्र्य विसृष्टः प्लवगाधिपैः॥२७॥ महेन्द्राद्विशिरो गत्वा बभूवाद्भृतदर्शनः॥२८॥

महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवऋः। महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः॥२९॥ ॥इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे नवमः सर्गः॥९॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे किष्किन्धाकाण्डः समाप्तः॥

॥सुन्दरकाण्डः॥

॥ प्रथमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम्। लिलङ्वयिषुरानन्दसन्दोहो मारुतात्मजः॥१॥

ध्यात्वा रामं परात्मानमिदं वचनमब्रवीत्। पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा॥२॥ अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिलाः। पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम्॥३॥ कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम्। प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत्स्मरन्॥४॥ नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम्। किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिकः॥५॥ तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम्। इत्युक्तवा हनुमान् बाह्र प्रसार्यायतवालधिः॥६॥ ऋज्ग्रीवोर्ध्वदृष्टिः सन्नाकुश्चितपदृद्वयः। दक्षिणाभिमुखस्तूर्णं पुष्ठुवेऽनिलविक्रमः॥७॥ आकाशात्त्वरितं देवैर्वीक्ष्यमाणो जगाम सः। दृष्ट्वाऽनिलसुतं देवा गच्छन्तं वायुवेगतः॥८॥ परीक्षणार्थं सत्त्वस्य वानरस्येदमब्रुवन्। गच्छत्येष महासत्त्वो वानरो वायुविक्रमः॥९॥

लङ्कां प्रवेष्टुं शक्तो वा न वा जानीमहे बलम्। एवं विचार्य नागानां मातरं सुरसाभिधाम्॥१०॥ अबवीद्देवतावृन्दः कौतूहलसमन्वितः। गच्छ त्वं वानरेन्द्रस्य किञ्चिद्विघ्नं समाचर॥११॥ ज्ञात्वा तस्य बलं बुद्धं पुनरेहि त्वरान्विता। इत्युक्ता सा ययौ शीघ्रं हनुमद्विघ्नकारणात्॥१२॥ आवृत्य मार्गं पुरतः स्थित्वा वानरमब्रवीत्। एहि मे वदनं शीघ्रं प्रविशस्व महामते॥१३॥ देवैस्त्वं कल्पितो भक्ष्यः क्षुधासम्पीडितात्मनः। तामाह हनुमान् मातरहं रामस्य शासनात्॥१४॥ गच्छामि जानकीं द्रष्टुं पुनरागम्य सत्वरः। रामाय कुशलं तस्याः कथयित्वा त्वदाननम्॥१५॥ निवेक्ष्ये देहि मे मार्गं सुरसायै नमोऽस्तु ते। इत्युक्ता पुनरेवाह सुरसा क्षुधिति।ऽस्म्यहम्॥१६॥ प्रविश्य गच्छ मे वक्रं नो चेत्त्वां भक्षयाम्यहम्। इत्युक्तो हनुमानाह मुखं शीघ्रं विदारय॥१७॥

प्रविश्य वद्नं तेऽद्य गच्छामि त्वरयान्वितः। इत्युक्तवा योजनायामदेहो भूत्वा पुरः स्थितः॥१८॥ दृष्ट्वा हनूमतो रूपं सुरसा पञ्चयोजनम्। मुखं चकार हनुमान् द्विगुणं रूपमाद्धत्॥ १९॥ ततश्वकार सुरसा योजनानां च विंदातिम्। वक्रं चकार हनुमान्स्रिंशद्योजनसम्मितम्॥२०॥ ततश्रकार सुरसा पञ्चाशद्योजनायतम्। वक्रं तदा हनूमांस्तु बभूवाङ्ग्रष्टसन्निभः॥२१॥ प्रविश्य वदनं तस्याः पुनरेत्य पुरः स्थितः। प्रविष्टो निर्गतोऽहं ते वदनं देवि ते नमः॥२२॥ एवं वदन्तं दृष्ट्वा सा हनूमन्तमथाब्रवीत्। गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वर॥२३॥ देवैः सम्प्रेषिताऽहं ते बलं जिज्ञासुभिः कपे। दृष्ट्वा सीतां पुनर्गत्वा रामं द्रक्ष्यसि गच्छ भोः॥२४॥ इत्युक्त्वा सा ययौ देवलोकं वायुसुतः पुनः। जगाम वायुमार्गेण गरुत्मानिव पक्षिराटु॥२५॥

समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणिकाश्चनपर्वतम्। गच्छत्येष महासत्त्वो हनुमान्मारुतात्मजः॥२६॥ रामस्य कार्यसिद्धर्थं तस्य त्वं सचिवो भव। सगरैर्वर्द्धितो यस्मात्पुराहं सागरोऽभवम्॥२७॥ तस्यान्वये बभूवासौ रामो दाशरथिः प्रभुः। तस्य कार्यार्थसिखर्थं गच्छत्येष महाकिपः॥ २८॥ त्वमुत्तिष्ठ जलात्तूणं त्विय विश्रम्य गच्छतु। स तथेति प्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नतः॥२९॥ नानामणिमयैः श्रङ्गेस्तस्योपरि नराकृतिः। प्राह यान्तं हनूमन्तं मैनाकोऽहं महाकपे॥३०॥ समुद्रेण समादिष्टस्त्वद्विश्रामाय मारुते। आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्रफलानि मे॥ ३१॥ विश्रम्यात्र क्षणं पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम्। एवमुक्तोऽथ तं प्राह हनुमान्मारुतात्मजः॥३२॥ गच्छतो रामकार्यार्थं भक्षणं मे कथं भवेत्। विश्रामो वा कथं मे स्याद्गन्तव्यं त्वरितं मया॥३३॥

इत्युक्तवा स्पृष्टिशखरः कराग्रेण ययौ कपिः। किञ्चिद्रं गतस्यास्य छायां छायाग्रहोऽग्रहीत्॥ ३४॥ सिंहिका नाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा। आकाशगामिनां छायामाक्रम्याऽऽकृष्य भक्षयेत्॥३५॥ तया गृहीतो हनुमान्श्रिन्तयामास वीर्यवान्। केनेदं मे कृतं वेगरोधनं विघ्नकारिणा॥३६॥ दृश्यते नैव कोऽप्यत्र विस्मयो मे प्रजायते। एवं विचिन्त्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयत्॥३७॥ तत्र दृष्ट्वा महाकायां सिंहिकां घोररूपिणीम्। पपात सिलले तूर्णं पन्धामेवाहनदुषा॥३८॥ पुनरुत्युत्य हनुमान् दक्षिणाभिमुखो ययौ। ततो दक्षिणमासाद्य कूलं नानाफलद्भमम्॥३९॥ नानापक्षिमृगाकीर्णं नानापुष्पलतावृतम्। ततो ददर्श नगरं त्रिकूटाचलमूर्धनि॥४०॥ प्राकारैर्बहुभिर्युक्तं परिखाभिश्च सर्वतः। प्रवेक्ष्यामि कथं लङ्कामिति चिन्तापरोऽभवत्॥४१॥

रात्रौ वेक्ष्यामि सूक्ष्मोऽहं लङ्कां रावणपालिताम्। एवं विचिन्त्य तत्रैव स्थित्वा लङ्कां जगाम सः॥४२॥ धृत्वा सूक्ष्मं वपुर्द्वारं प्रविवेश प्रतापवान्। तत्र लङ्कापुरी साक्षाद्राक्षसीवेषधारिणी॥४३॥ प्रविशन्तं हनूमन्तं दृष्ट्वा लङ्का व्यतर्जयत्। कस्त्वं वानररूपेण मामनादृत्य लङ्किनीम्॥४४॥ प्रविश्य चोरवद्रात्रौ किं भवान् कर्तुमिच्छति। इत्युत्तवा रोषताम्राक्षी पादेनाभिजघान तम्॥४५॥ हनुमानपि तां वाममुष्टिनाऽवज्ञयाऽहनत्। तदैव पतिता भूमौ रक्तमुद्धमती भृशम्॥४६॥ उत्थाय प्राह सा लङ्का हनूमन्तं महाबलम्। हनूमन् गच्छ भद्रं ते जिता लङ्का त्वयाऽनघ॥४७॥ पुराहं ब्रह्मणा प्रोक्ता ह्यष्टाविंदातिपर्यये। त्रेतायुगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्ययः॥४८॥ जनिष्यते योगमाया सीता जनकवेश्मनि। भूभारहरणार्थाय प्रार्थितोऽयं मया कचित्॥४९॥

सभार्यो राघवो भ्रात्रा गमिष्यति महावनम्। तत्र सीतां महामायां रावणोऽपहरिष्यति॥५०॥

पश्चाद्रामेण साचिव्यं सुग्रीवस्य भविष्यति। सुग्रीवो जानकीं द्रष्टुं वानरान् प्रेषियष्यति॥५१॥

तत्रैको वानरो रात्रावागमिष्यति तेऽन्तिकम्। त्वया च भर्त्सितः सोऽपि त्वां हनिष्यति मुष्टिना॥५२॥

तेनाहता त्वं व्यथिता भविष्यसि यदाऽनघे। तदैव रावणस्यान्तो भविष्यति न संशयः॥५३॥

तस्मात् त्वया जिता लङ्का जितं सर्वं त्वयाऽनघ। रावणान्तःपुरवरे क्रीडाकाननमुत्तमम्॥५४॥

तन्मध्येऽशोकवनिका दिव्यपादपसङ्कला। अस्ति तस्यां महावृक्षः शिंशपा नाम मध्यगः॥५५॥

तत्राऽऽस्ते जानकी घोरराक्षसीभिः सुरक्षिता। दृष्ट्वेव गच्छ त्वरितं राघवाय निवेदय॥५६॥ धन्याऽहमप्यद्य चिराय राघव-स्मृतिर्ममाऽऽसीद्भवपाशमोचिनी। तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम प्रसीदतां दाशरिथः सदा हृदि॥५७॥ उल्लिक्षितेऽब्यौ पवनात्मजेन धरासुतायाश्च दशाननस्य। पुरस्भोर वामाक्षि भुजश्च तीव्रम् रामस्य दक्षाङ्गमतीन्द्रियस्य॥५८॥ ॥इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे

॥द्वितीयः सर्गः॥

प्रथमः सर्गः॥१॥

श्रीमहादेव उवाच ततो जगाम हनुमान् लङ्कां परमशोभनाम्। रात्रौ सूक्ष्मतनुर्भूत्वा बभ्राम परितः पुरीम्॥१॥ सीतान्वेषणकार्यार्थीं प्रविवेश नृपालयम्। तत्र सर्वप्रदेशेषु विविच्य हनुमान् कपिः॥२॥

नापश्यज्ञानकीं स्मृत्वा ततो लङ्काभिभाषितम्। जगाम हनुमान् शीघ्रमशोकवनिकां शुभाम्॥३॥ सुरपादपसम्बाधां रत्नसोपानवापिकाम्। नानापक्षिमृगाकीर्णां स्वर्णप्रासादशोभिताम्॥४॥ फलैरानम्रशाखाग्रपादपैः परिवारिताम्। विचिन्वन् जानकीं तत्र प्रतिवृक्षं मरुत्सुतः॥५॥ दुर्शाभ्रंलिहं तत्र चैत्यप्रासाद्मुत्तमम्। दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो मणिस्तम्भशतान्वितम्॥६॥ समतीत्य पुनर्गत्वा किश्चिद्दरं स मारुतिः। दुर्द्रा शिंशपावृक्षमत्यन्तनिबिडच्छदुम्॥७॥ अदृष्टातपमाकीणं स्वर्णवर्णविहङ्गमम्। तन्मूले राक्षसीमध्ये स्थितां जनकनन्दिनीम्॥८॥ दुद्रा हुनुमान् वीरो देवतामिव भूतले। एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम्॥९॥ भूमौ रायानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम्। त्रातारं नाधिगच्छन्तीमुपवासकृशां शुभाम्॥१०॥

शाखान्तच्छदमध्यस्थो दुद्रशं कपिकुञ्जरः। कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम्॥११॥ मयैव साधितं कार्यं रामस्य परमात्मनः। ततः किलकिलाशब्दो बभूवान्तःपुराद्वहिः॥१२॥ किमेतदिति सँह्वीनो वृक्षपत्रेषु मारुतिः। आयान्तं रावणं तत्र स्त्रीजनैः परिवारितम्॥१३॥ दशास्यं विंशतिभुजं नीलाञ्जनचयोपमम्। दृष्ट्वा विस्मयमापन्नः पत्रखण्डेष्वलीयत॥१४॥ रावणो राघवेणाञ्च मरणं मे कथं भवेत्। सीतार्थमपि नाऽऽयाति रामः किं कारणं भवेत्॥१५॥ इत्येवं चिन्तयन्नित्यं राममेव सदा हृदि। तस्मिन् दिनेऽपररात्रौ रावणो राक्षसाधिपः॥१६॥ स्वप्ने रामेण सन्दिष्टः कश्चिदागत्य वानरः। कामरूपधरः सूक्ष्मो वृक्षग्रस्थोऽनुपदयति॥१७॥ इति दृष्ट्वाऽद्भृतं स्वप्नं स्वात्मन्येवानुचिन्त्य सः। स्वप्तः कदाचित्सत्यः स्यादेवं तत्र करोम्यहम्॥१८॥

जानकीं वाक्शरैर्विद्धा दुःखितां नितरामहम्। करोमि दृष्ट्वा रामाय निवेद्यतु वानरः॥१९॥ इत्येवं चिन्तयन् सीतासमीपमगमद्रुतम्। नूपुराणां किङ्किणीनां श्रुत्वा शिञ्जितमङ्गना॥२०॥ सीता भीता लीयमाना स्वात्मन्येव सुमध्यमा। अधोमुख्यश्रुनयना स्थिता रामार्पितान्तरा॥२१॥ रावणोऽपि तदा सीतामालोक्याऽऽह सुमध्यमे। मां दृष्ट्वा किं वृथा सुभ्रु स्वात्मन्येव विलीयसे॥२२॥ रामो वनचराणां हि मध्ये तिष्ठति सानुजः। कदाचिद्दरयते कैश्चित्कदाचिन्नेव दृश्यते॥२३॥ मया तु बहुधा लोकाः प्रेषितास्तस्य दर्शने। न पश्यन्ति प्रयत्नेन वीक्षमाणाः समन्ततः॥२४॥ किं करिष्यसि रामेण निःस्पृहेण सदा त्विय। त्वया सदाऽऽलिङ्गितोऽपि समीपस्थोऽपि सर्वदा॥२५॥ हृदयेऽस्य न च स्नेहस्त्विय रामस्य जायते। त्वत्कृतान् सर्वभोगांश्च त्वद्गुणानपि राघवः॥२६॥

भुञ्जानोऽपि न जानाति कृतघ्नो निर्गुणोऽधमः। त्वमानीता मया साध्वी दुःखशोकसमाकुला॥२७॥ इदानीमपि नाऽऽयाति भक्तिहीनः कथं व्रजेत्। निःसत्त्वो निर्ममो मानी मूढः पण्डितमानवान्॥ २८॥ नराधमं त्वद्विमुखं किं करिष्यसि भामिनि। त्वय्यतीव समासक्तं मां भजस्वासुरोत्तमम्॥ २९॥ देवगन्धर्वनागानां यक्षिक्तरयोषिताम्। भविष्यसि नियोक्री त्वं यदि मां प्रतिपद्यसे॥३०॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा सीताऽमर्षसमन्विता। उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे॥३१॥ राघवाद्विभ्यता नूनं भिक्षुरूपं त्वया धृतम्। रहिते राघवाभ्यां त्वं शुनीव हविरध्वरे॥३२॥ हृतवानिस मां नीच तत्फलं प्राप्स्यसेऽचिरात्। रामशराघातविदारितवपुर्भवान्॥३३॥ यदा ज्ञास्यसेऽमानुषं रामं गमिष्यसि यमान्तिकम्। समुद्रं शोषयित्वा वा शरैर्बद्धाऽथ वारिधिम्॥३४॥

हन्तुं त्वां समरे रामो लक्ष्मणेन समन्वितः। आगमिष्यत्यसन्देहो द्रक्ष्यसे राक्षसाधम॥३५॥ त्वां सपुत्रं सहबलं हत्वा नेष्यति मां पुरम्। श्रुत्वा रक्षःपतिः कुद्धो जानक्याः परुषाक्षरम्॥३६॥

वाक्यं क्रोधसमाविष्टः खङ्गमुद्यम्य सत्वरः। हन्तुं जनकराजस्य तनयां ताम्रलोचनः॥३७॥

मन्दोदरी निवार्याह पतिं पतिहिते रता। त्यजैनां मानुषीं दीनां दुःखितां कृपणां कृशाम्॥३८॥

देवगन्धर्वनागानां बह्ध्यः सन्ति वराङ्गनाः। त्वामेव वरयन्त्युचैर्मदमत्तविलोचनाः॥३९॥

ततोऽब्रवीद्दशयीवो राक्षसीर्विकृताननाः। यथा मे वशगा सीता भविष्यति सकामना। तथा यतध्वं त्वरितं तर्जनाद्रणादिभिः॥४०॥

द्विमासाभ्यन्तरे सीता यदि मे वशगा भवेत्। तदा सर्वसुखोपेता राज्यं भोक्ष्यति सा मया॥४१॥ यदि मासद्वयादूर्ध्वं मच्छय्यां नाभिनन्दति। तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषीम्॥४२॥

इत्युक्तवा प्रययौ स्त्रीभी रावणोऽन्तःपुरालयम्। राक्षस्यो जानकीमेत्य भीषयन्त्यः स्वतर्जनैः॥४३॥

तत्रैका जानकीमाह यौवनं ते वृथा गतम्। रावणेन समासाद्य सफलं तु भविष्यति॥४४॥

अपरा चाह कोपेन किं विलम्बेन जानकि। इदानीं छेद्यतामङ्गं विभज्य च पृथक् पृथक्॥४५॥

अन्या तु खङ्गमुद्यम्य जानकीं हन्तुमुद्यता। अन्या करालवदना विदार्यास्यमभीषयत्॥४६॥

एवं तां भीषयन्तीस्ता राक्षसीर्विकृताननाः। निवार्य त्रिजटा वृद्धा राक्षसी वाक्यमब्रवीत्॥४७॥ शृणुध्वं दृष्टराक्षस्यो महाक्यं वो हितं भवेत्॥४८॥

न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम्। इदानीमेव मे स्वप्ने रामः कमललोचनः॥४९॥ आरुह्येरावतं शुभ्रं लक्ष्मणेन समागतः। दग्ध्वा लङ्कापुरीं सर्वां हत्वा रावणमाहवे॥५०॥

आरोप्य जानकीं स्वाङ्के स्थितो दृष्टोऽगमूर्घीन। रावणो गोमयहृदे तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः॥५१॥

अगाहत्पुत्रपौत्रेश्च कृत्वा वदनमालिकाम्। विभीषणस्तु रामस्य सन्निधौ हृष्टमानसः॥५२॥

सेवां करोति रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः। सर्वथा रावणं रामो हत्वा सकुलमञ्जसा॥५३॥

विभीषणायाधिपत्यं दत्त्वा सीतां शुभाननाम्। अङ्के निधाय स्वपुरीं गमिष्यति न संशयः॥५४॥

त्रिजटाया वचः श्रुत्वा भीतास्ता राक्षसिस्त्रयः। तूष्णीमासंस्तत्र तत्र निद्रावशमुपागताः॥५५॥

तर्जिता राक्षसीभिः सा सीता भीतातिविह्नला। त्रातारं नाधिगच्छन्ती दुःखेन परिमूर्च्छिता॥५६॥ अश्रुभिः पूर्णनयना चिन्तयन्तीदमब्रवीत्। प्रभाते भक्षयिष्यन्ति राक्षस्यो मां न संशयः। इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत्॥५७॥

एवं सुदुःखेन परिष्ठुता सा विमुक्तकण्ठं रुद्ती चिराय। आलम्ब्य शाखां कृतनिश्चया मृतौ न जानती कश्चिदुपायमङ्गना॥५८॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २॥

॥ तृतीयः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

उद्धन्धनेन वा मोक्ष्ये शरीरं राघवं विना। जीवितेन फलं किं स्यान्मम रक्षोऽधिमध्यतः॥१॥

दीर्घा वेणी ममात्यर्थमुद्धन्याय भविष्यति। एवं निश्चितबुद्धिं तां मरणायाथ जानकीम्॥२॥ विलोक्य हनुमान् किश्चिद्विचार्यैतदभाषत। शनैः शनैः सूक्ष्मरूपो जानक्याः श्रोत्रगं वचः॥३॥ इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो राजा दशरथो महान्। अयोध्याधिपतिस्तस्य चत्वारो लोकविश्रुताः॥४॥

पुत्रा देवसमाः सर्वे लक्षणैरुपलक्षिताः। रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा॥५॥

ज्येष्ठो रामः पितुर्वाक्याद्दण्डकारण्यमागतः। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह॥६॥ उवास गौतमीतीरे पञ्चवट्यां महामनाः। तत्र नीता महाभागा सीता जनकनन्दिनी॥७॥

रिंते रामचन्द्रेण रावणेन दुरात्मना। ततो रामोऽतिदुःखार्तो मार्गमाणोऽथ जानकीम्॥८॥

जटायुषं पक्षिराजमपश्यत्पतितं भुवि। तस्मै दत्त्वा दिवं शीघ्रमृष्यमूकमुपागमत्॥९॥

सुग्रीवेण कृता मैत्री रामस्य विदितात्मनः। तद्भार्याहारिणं हत्वा वालिनं रघुनन्दनः॥१०॥

राज्येऽभिषिच्य सुग्रीवं मित्रकार्यं चकार सः। सुग्रीवस्तु समानाय्य वानरान् वानरप्रभुः॥११॥ प्रेषयामास परितो वानरान् परिमार्गणे। सीतायास्तत्र चैकोऽहं सुग्रीवसचिवो हरिः॥१२॥ सम्पातिवचनाच्छीघ्रमुल्रह्य शतयोजनम्। समुद्रं नगरीं लङ्कां विचिन्वन् जानकीं शुभाम्॥१३॥ रानैरशोकवनिकां विचिन्वन् शिंशपातरुम्। अद्राक्षं जानकीमत्र शोचन्तीं दुःखसम्प्रुताम्॥१४॥ रामस्य महिषीं देवीं कृतकृत्योऽहमागतः। इत्युक्तवोपररामाथ मारुतिर्बुद्धिमत्तरः॥१५॥ सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा विस्मयमाययौ। किमिदं मे श्रुतं व्योम्नि वायुना समुदीरितम्॥ १६॥ स्वप्नो वा मे मनोभ्रान्तिर्यदि वा सत्यमेव तत्। निद्रा मे नास्ति दुःखेन जानाम्येतत्कृतो भ्रमः॥१७॥ येन मे कर्णपीयुषं वचनं समुदीरितम्। स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः॥१८॥

श्रुत्वा तज्जानकीवाक्यं हनुमान् पत्रखण्डतः। अवतीर्य शनैः सीतापुरतः समवस्थितः॥१९॥ कलविङ्कप्रमाणाङ्गो रक्तास्यः पीतवानरः। ननाम शनकैः सीतां प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः॥२०॥ दृष्ट्वा तं जानकी भीता रावणोऽयमुपागतः। मां मोहयितुमायातो मायया वानराकृतिः॥२१॥ इत्येवं चिन्तयित्वा सा तूष्णीमासीद्धोमुखी। पुनरप्याह तां सीतां देवि यत्त्वं विशङ्कसे॥२२॥ नाहं तथाविधो मातस्त्यज शङ्कां मिय स्थिताम्। दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः॥२३॥ सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे। वायोः पुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्य शोभने॥२४॥ तच्छुत्वा जानकी प्राह हनूमन्तं कृताञ्जलिम्। वानराणां मनुष्याणां सङ्गतिर्घटते कथम्॥२५॥ यथा त्वं रामचन्द्रस्य दासोऽहमिति भाषसे। तामाह मारुतिः प्रीतो जानकीं पुरतः स्थितः॥२६॥

ऋष्यमूकमगाद्रामः शबर्या नोदितः सुधीः। सुग्रीवो ऋष्यमूकस्थो दृष्टवान् रामलक्ष्मणौ॥२७॥ भीतो मां प्रेषयामास ज्ञातुं रामस्य हृद्गतम्। ब्रह्मचारिवपुर्घृत्वा गतोऽहं रामसन्निधिम्॥२८॥

ज्ञात्वा रामस्य सद्भावं स्कन्धोपरि निधाय तौ। नीत्वा सुग्रीवसामीप्यं सख्यं चाकरवं तयोः॥२९॥

सुग्रीवस्य हृता भार्या वालिना तं रघूत्तमः। जघानैकेन बाणेन ततो राज्येऽभ्यषेचयत्॥३०॥

सुग्रीवं वानराणां स प्रेषयामास वानरान्। दिग्भ्यो महाबलान् वीरान् भवत्याः परिमार्गणे॥३१॥

गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा मामभाषत साद्रम्॥३२॥

त्विय कार्यमशेषं मे स्थितं मारुतनन्दन। ब्रूहि मे कुशलं सर्वं सीतायै लक्ष्मणस्य च॥३३॥

अङ्गुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम्। सीतायै दीयतां साधु मन्नामाक्षरमुद्रितम्॥ ३४॥

इत्युक्तवा प्रददौ मह्यं कराग्रादङ्गुलीयकम्। प्रयत्नेन मयाऽऽनीतं देवि पश्याङ्गुलीयकम्॥३५॥ इत्युत्तवा प्रददौ देव्यै मुद्रिकां मारुतात्मजः। नमस्कृत्य स्थितो दूराद्वखाञ्जलिपुटो हरिः॥३६॥ दृष्ट्वा सीता प्रमुदिता रामनामाङ्कितां तदा। मुद्रिकां शिरसा धृत्वा स्रवदानन्दनेत्रजा॥३७॥ कपे मे प्राणदाता त्वं बुद्धिमानसि राघवे। भक्तोऽसि प्रियकारी त्वं विश्वासोऽस्ति तवैव हि॥३८॥ नो चेन्मत्सन्निधिं चान्यं पुरुषं प्रेषयेत्कथम्। हनूमन् दृष्टमिखलं मम दुःखादिकं त्वया॥३९॥ सर्वं कथय रामाय यथा मे जायते दया। मासद्वयावधि प्राणाः स्थास्यन्ति मम सत्तम ॥४०॥ नाऽऽगमिष्यति चेद्रामो भक्षयिष्यति मां खलः। अतः शीघ्रं कपीन्द्रेण सुग्रीवेण समन्वितः॥४१॥ वानरानीकपैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे। सपुत्रं सबलं रामो यदि मां मोचयेत्प्रभुः॥४२॥

तत्तस्य सदृशं वीर्यं वीर वर्णय वर्णितम। यथा मां तारयेद्रामो हत्वा शीघ्रं दशाननम्॥४३॥ तथा यतस्व हनुमन् वाचा धर्ममवाप्नुहि। हनुमानपि तामाह देवि दृष्टो यथा मया॥४४॥ रामः सलक्ष्मणः शीघ्रमागमिष्यति सायुधः। सुग्रीवेण ससैन्येन हत्वा दशमुखं बलात्॥४५॥ समानेष्यति देवि त्वामयोध्यां नात्र संशयः। तमाह जानकी रामः कथं वारिधिमाततम्॥४६॥ तीर्त्वाऽऽयास्यत्यमेयात्मा वानरानीकपैः सह। हनुमानाह में स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ॥४७॥ आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः। विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम्॥४८॥ निर्देहिष्यति रक्षौघांस्त्वत्कृते नात्र संशयः। अनुज्ञां देहि मे देवि गच्छामि त्वरयान्वितः॥४९॥ द्रष्टुं रामं सह भ्रात्रा त्वरयामि तवान्तिकम्। देवि किञ्चिदभिज्ञानं देहि मे येन राघवः॥५०॥

विश्वसेन्मां प्रयत्नेन ततो गन्ता समृत्सुकः।
ततः किञ्चिद्विचार्याथ सीता कमललोचना॥५१॥
विमुच्य केशपाशान्ते स्थितं चूडामणिं ददौ।
अनेन विश्वसेद्रामस्त्वां कपीन्द्र सलक्ष्मणः॥५२॥
अभिज्ञानार्थमन्यच वदामि तव सुव्रत।
चित्रकूटिगरौ पूर्वमेकदा रहिस स्थितः।
मदङ्के शिर आधाय निद्राति रघुनन्दनः॥५३॥
ऐन्द्रः काकस्तदाऽऽगत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत्।
मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया॥५४॥

ततो रामः प्रबुद्धाथ दृष्ट्वा पादं कृतव्रणम्। केन भद्रे कृतं चैतद्विप्रियं मे दुरात्मना॥५५॥ इत्युक्तवा पुरतोऽपश्यद्वायसं मां पुनः पुनः। अभिद्रवन्तं रक्ताक्तनखतुण्डं चुकोप ह॥५६॥ तृणमेकमुपादाय दिव्यास्त्रेणाभियोज्य तत्। चिक्षेप लीलया रामो वायसोपरि तज्ज्वलन्॥५७॥ अभ्यद्रवद्वायसश्च भीतो लोकान् भ्रमन् पुनः। इन्द्रब्रह्मादिभिश्चापि न शक्यो रक्षितुं तदा॥५८॥ रामस्य पाद्योरग्रेऽपतद्भीत्या द्यानिधेः। शरणागतमालोक्य रामस्तमिद्मब्रवीत्॥५९॥ अमोघमेतदस्त्रं मे दत्वैकाक्षिमितो व्रज। सव्यं दत्त्वा गतः काक एवं पौरुषवानिप॥६०॥ उपेक्षते किमर्थं मामिदानीं सोऽपि राघवः। हनुमानिप तामाह श्रुत्वा सीतानुभाषितम्॥६१॥ देवि त्वां यदि जानाित स्थितामत्र रघूत्तमः। करिष्यति क्षणाद्भस्म लङ्कां राक्षसमण्डिताम्॥६२॥ जानकी प्राह तं वत्स कथं त्वं योत्स्यसेऽसुरैः। अतिसूक्ष्मवपुः सर्वे वानराश्च भवादृशाः॥६३॥

श्रुत्वा तद्वचनं देव्यै पूर्वरूपमद्र्शयत्। मेरुमन्द्रसङ्काशं रक्षोगणविभीषणम्॥६४॥ दृष्ट्वा सीता हनूमन्तं महापर्वतसन्निभम्। हर्षेण महताऽऽविष्टा प्राह तं कपिकुञ्जरम्॥६५॥

समर्थोऽसि महासत्त्व द्रक्ष्यन्ति त्वां महाबलम्। राक्षस्यस्ते शुभः पन्था गच्छ रामान्तिकं द्रुतम्॥६६॥ बुभुक्षितः कपिः प्राह दर्शनात्पारणं मम। भविष्यति फलैः सर्वैस्तव दृष्टौ स्थितैर्हि मे॥६७॥

तथेत्युक्तः स जानक्या भक्षयित्वा फलं किपः। ततः प्रस्थापितोऽगच्छज्जानकीं प्रणिपत्य सः। किञ्चिद्दरमथो गत्वा स्वात्मन्येवान्वचिन्तयत्॥६८॥

कार्यार्थमागतो दूतः स्वामिकार्याविरोधतः। अन्यत्किश्चिदसम्पाद्य गच्छत्यधम एव सः॥६९॥

अतोऽहं किञ्चिद्न्यच कृत्वा दृष्ट्वाऽथ रावणम्। सम्भाष्य च ततो रामदर्शनार्थं व्रजाम्यहम्॥७०॥

इति निश्चित्य मनसा वृक्षखण्डान् महाबलः। उत्पाट्याशोकवनिकां निर्वृक्षामकरोत्क्षणात्॥७१॥

सीताऽऽश्रयनगं त्यक्त्वा वनं शून्यं चकार सः। उत्पाटयन्तं विपिनं दृष्ट्वा राक्षसयोषितः॥७२॥ अपृच्छन् जानकीं कोऽसौ वानराकृतिरुद्धटः॥७३॥

जानक्युवाच

भवत्य एव जानिन्त मायां राक्षसिनिर्मिताम्। नाहमेनं विजानामि दुःखशोकसमाकुला॥७४॥ इत्युक्तास्त्वरितं गत्वा राक्षस्यो भयपीडिताः। हनूमता कृतं सर्वं रावणाय न्यवेदयन्॥७५॥ देव कश्चिन्महासत्त्वो वानराकृतिदेहभृत्। सीतया सह सम्भाष्य द्यशोकविनकां क्षणात्। उत्पाट्य चैत्यप्रासादं बभञ्जामितिवक्रमः॥७६॥ प्रासादरिक्षणः सर्वान् हत्वा तत्रैव तस्थिवान्। तच्छुत्वा तूर्णमुत्थाय वनभङ्गं महाऽप्रियम्॥७७॥

किङ्करान् प्रेषयामास नियुतं राक्षसाधिपः। निभग्नचैत्यप्रासादप्रथमान्तरसंस्थितः ॥७८॥

हनुमान् पर्वताकारो लोहस्तम्भकृतायुधः। किञ्चिल्लाङ्गूलचलनो रक्तास्यो भीषणाकृतिः॥७९॥

आपतन्तं महासङ्घं राक्षसानां ददर्श सः। चकार सिंहनादं च श्रुत्वा ते मुमुहुर्भृशम्॥८०॥ हनुमन्तमथो दृष्ट्वा राक्षसा भीषणाकृतिम्। निर्जघ्ठविविधास्त्रोधैः सर्वराक्षसघातिनम्॥८१॥

तत उत्थाय हनुमान् मुद्गरेण समन्ततः। निष्पिपेष क्षणादेव मशकानिव यूथपः॥८२॥

निहतान् किङ्करान् श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः। पञ्च सेनापतींस्तत्र प्रेषयामास दुर्मदान्॥८३॥

हनूमानिप तान् सर्वां छोहस्तम्भेन चाहनत्। ततः कुद्धो मन्त्रिसुतान् प्रेषयामास सप्त सः॥८४॥

आगतानिप तान् सर्वान् पूर्ववद्वानरेश्वरः। क्षणान्निःशेषतो हत्वा लोहस्तम्भेन मारुतिः॥८५॥

पूर्वस्थानमुपाश्रित्य प्रतीक्षन् राक्षसान् स्थितः। ततो जगाम बलवान् कुमारोऽक्षः प्रतापवान्॥८६॥

तमुत्पपात हनुमान् दृष्ट्वाऽऽकाशे समुद्गरः। गगनात्त्वरितो मूर्धि मुद्गरेण व्यताख्यत्॥८७॥ हत्वा तमक्षं निःशेषं बलं सर्वं चकार सः॥८८॥

ततः श्रुत्वा कुमारस्य वधं राक्षसपुङ्गवः। क्रोधेन महताऽऽविष्ट इन्द्रजेतारमब्वीत्॥८९॥ पुत्र गच्छाम्यहं तत्र यत्राऽऽस्ते पुत्रहा रिपुः। हत्वा तमथवा बद्धा आनयिष्यामि तेऽन्तिकम्॥९०॥ इन्द्रजित्पितरं प्राह त्यज शोकं महामते। मिय स्थिते किमर्थं त्वं भाषसे दुःखितं वचः॥९१॥ बद्धाऽऽनेष्ये द्रुतं तात वानरं ब्रह्मपाशतः। इत्युत्तवा रथमारुद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृतः॥९२॥ जगाम वायुपुत्रस्य समीपं वीरविक्रमः। ततोऽतिगर्जितं श्रुत्वा स्तम्भमुद्यस्य वीर्यवान्॥९३॥ उत्पपात नभोदेशं गरुत्मानिव मारुतिः। ततो भ्रमन्तं नभसि हनूमन्तं शिलीमुखैः॥९४॥ विद्धा तस्य शिरोभागमिषुभिश्चाष्टभिः पुनः। हृदयं पाद्युगलं षङ्गिरेकेन वालधिम्॥९५॥ भेदयित्वा ततो घोरं सिंहनादमथाकरोत्। ततोऽतिहर्षाद्धनुमान् स्तम्भमुद्यस्य वीर्यवान्॥९६॥

जघान सारथिं साश्वं रथं चाचूर्णयत्क्षणात्। ततोऽन्यं रथमादाय मेघनादो महाबलः॥९७॥ शीघं ब्रह्मास्त्रमादाय बद्धा वानरपुङ्गवम्। निनाय निकटं राज्ञो रावणस्य महाबलः॥९८॥ यस्य नाम सततं जपन्ति ये-ऽज्ञानकर्मकृतबन्धनं क्षणात्। सद्य एव परिमुच्य तत्पदम् यान्ति कोटिरविभासुरं शिवम्॥९९॥ तस्यैव रामस्य पदाम्बुजं सदा हृत्पद्ममध्ये सुनिधाय मारुतिः। सदैव निर्मुक्तसमस्तबन्धनः किं तस्य पाशैरितरैश्च बन्धनैः॥१००॥ ॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः॥३॥

> ॥ **चतुर्थः सर्गः॥** श्रीमहादेव उवाच

यान्तं कपीन्द्रं धृतपाशबन्धनम् विलोकयन्तं नगरं विभीतवत्। अताडयन्मुष्टितलैः सुकोपनाः पौराः समन्तादनुयान्त ईक्षितुम्॥१॥

ब्रह्मास्त्रमेनं क्षणमात्रसङ्गमम् कृत्वा गतं ब्रह्मवरेण सत्वरम्। ज्ञात्वा हनूमानिप फल्गुरज्जुभिः धृतो ययौ कार्यविशेषगौरवात्॥२॥

सभान्तरस्थस्य च रावणस्य तम् पुरो निधायाऽऽह बलारिजित्तदा। बद्धो मया ब्रह्मवरेण वानरः समागतोऽनेन हता महासुराः॥३॥

यदुक्तमत्रार्य विचार्य मन्त्रिभिः विधीयतामेष न लौकिको हरिः। ततो विलोक्याऽऽह स राक्षसेश्वरः प्रहस्तमग्रे स्थितमञ्जनाद्विभम्॥४॥ प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागतः किमत्र कार्यं कुत एव वानरः। वनं किमर्थं सकलं विनाशितम् हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात्॥५॥

ततः प्रहस्तो हनुमन्तमाद्रात् पप्रच्छ केन प्रहितोऽसि वानर। भयं च ते माऽस्तु विमोक्ष्यसे मया सत्यं वदस्वाखिलराजसन्निधौ॥६॥

ततोऽतिहर्षात्पवनात्मजो रिपुम् निरीक्ष्य लोकत्रयकण्टकासुरम्। वक्तुं प्रचके रघुनाथसत्कथाम् क्रमेण रामं मनसा स्मरन्मुहुः॥७॥

शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र हे रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः। यस्याखिलेशस्य हृताऽधुना त्वया भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धविः॥८॥ स राघवोऽभ्येत्य मतङ्गपर्वतम् सुग्रीवमैत्रीमनलस्य सन्निधौ। कृत्वैकबाणेन निहत्य वालिनम् सुग्रीवमेवाधिपतिं चकार तम्॥९॥

स वानराणामिधपो महाबली महाबलैर्वानरयूथकोटिभिः। रामेण सार्धं सह लक्ष्मणेन भोः प्रवर्षणेऽमर्षयुतोऽवतिष्ठते ॥१०॥

सञ्चोदितास्तेन महाहरीश्वरा धरासुतां मार्गियतुं दिशो दश। तत्राहमेकः पवनात्मजः किपः सीतां विचिन्वन् शनकैः समागतः॥११॥

दृष्टा मया पद्मपलाशलोचना सीता कपित्वाद्विपिनं विनाशितम्। दृष्ट्वा ततोऽहं रभसा समागतान् मां हन्तुकामान् धृतचापसायकान्॥१२॥ मया हतास्ते परिरक्षितं वपुः प्रियो हि देहोऽखिलदेहिनां प्रभो। ब्रह्मास्त्रपारोन निबध्य मां ततः समागमन्मेघनिनादनामकः ॥१३॥

स्पृष्ट्वैव मां ब्रह्मवरप्रभावतः त्यक्त्वा गतं सर्वमवैमि रावण। तथाऽप्यहं बद्ध इवाऽऽगतो हितम् प्रवक्तुकामः करुणारसार्द्रधीः॥१४॥

विचार्य लोकस्य विवेकतो गतिम् न राक्षसीं बुद्धिमुपैहि रावण। दैवीं गतिं संसृतिमोक्षहैतुकीम् समाश्रयात्यन्तहिताय देहिनः॥१५॥

त्वं ब्रह्मणो ह्युत्तमवंशसम्भवः पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धवः। देहात्मबुद्धाऽपि च पश्य राक्षसो नास्यात्मबुद्धा किमु राक्षसो नहि॥१६॥ शरीरबुद्धीन्द्रियदुःखसन्तितः न ते न च त्वं तव निर्विकारतः। अज्ञानहेतोश्च तथैव सन्ततेः असत्त्वमस्याः स्वपतो हि दृश्यवत्॥१७॥

इदं तु सत्यं तव नास्ति विकिया विकारहेतुर्न च तेऽद्वयत्वतः। यथा नभः सर्वगतं न लिप्यते तथा भवान् देहगतोऽपि सूक्ष्मकः॥१८॥

देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गतः त्वात्मेति बद्धाखिलबन्धभाग्भवेत्। चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरो ह्यानन्दभावोऽहमिति प्रमुच्यते॥१९॥

देहोऽप्यनात्मा पृथिवीविकारजो न प्राण आत्माऽनिल एष एव सः। मनोऽप्यहङ्कारविकार एव नो न चापि बुद्धिः प्रकृतेर्विकारजा॥२०॥ आत्मा चिदानन्दमयोऽविकारवान् देहादिसङ्घाद्यतिरिक्त ईश्वरः। निरञ्जनो मुक्त उपाधितः सदा ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते॥२१॥

अतोऽहमात्यन्तिकमोक्षसाधनम् वक्ष्ये शृणुष्वावहितो महामते। विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धियः ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम्॥२२॥

विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत्ततः सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत्। अतो भजस्वाद्य हरि रमापतिम् रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम्॥२३॥

विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनाम् भजस्व रामं शरणागतप्रियम्। सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात्॥२४॥ रामं परात्मानमभावयन् जनो भक्त्या हृदिस्थं सुखरूपमद्वयम्। कथं परं तीरमवाप्नुयाज्जनो भवाम्बुधेर्दुःखतरङ्गमालिनः ॥२५॥

नो चेत्त्वमज्ञानमयेन विह्ना ज्वलन्तमात्मानमरक्षितारिवत्। नयस्यधोऽधः स्वकृतैश्च पातकैः विमोक्षशङ्का न च ते भविष्यति॥२६॥

श्रुत्वाऽमृतास्वादसमानभाषितम् तद्वायुसूनोर्दशकन्धरोऽसुरः। अमृष्यमाणोऽतिरुषा कपीश्वरम् जगाद रक्तान्तविलोचनो ज्वलन्॥२७॥

कथं ममाग्रे विलपस्यभीतवत् स्रवङ्गमानामधमोऽसि दुष्टधीः। क एष रामः कतमो वनेचरो निहन्मि सुग्रीवयुतं नराधमम्॥२८॥ त्वां चाद्य हत्वा जनकात्मजां ततो निहन्मि रामं सहलक्ष्मणं ततः। सुग्रीवमग्रे बलिनं कपीश्वरम् सवानरं हन्म्यचिरेण वानर॥२९॥

श्रुत्वा दशग्रीववचः स मारुतिः विवृद्धकोपेन दहन्निवासुरम्। न मे समा रावणकोटयोऽधम रामस्य दासोऽहमपारविकमः॥३०॥

श्रुत्वाऽतिकोपेन हनूमतो वचो दशाननो राक्षसमेवमब्रवीत्। पार्श्वे स्थितं मारय खण्डशः कपिम् पश्यन्तु सर्वेऽसुरमित्रबान्धवाः॥३१॥

निवारयामास ततो विभीषणो महासुरं सायुधमुद्यतं वधे। राजन् वधार्हों न भवेत्कथञ्चन प्रतापयुक्तैः परराजवानरः॥३२॥ हतेऽस्मिन् वानरे दूते वार्ता को वा निवेदयेत्। रामाय त्वं यमुद्दिश्य वधाय समुपस्थितः॥३३॥ अतो वधसमं किश्चिदन्यचिन्तय वानरे। सचिह्नो गच्छतु हरिर्यं दृष्ट्वाऽऽयास्यित द्वतम्॥३४॥

रामः सुग्रीवसहितस्ततो युद्धं भवेत्तव। विभीषणवचः श्रुत्वा रावणोऽप्येतद्ब्रवीत्॥३५॥ वानराणां हि लाङ्गूले महामानो भवेत्किल। अतो वस्त्रादिभिः पुच्छं वेष्टियत्वा प्रयत्नतः॥३६॥ विह्नना योजियत्वैनं भ्रामियत्वा पुरेऽभितः। विसर्जयत पश्यन्तु सर्वे वानरयूथपाः॥३७॥ तथेति शणपट्टैश्च वस्त्रेरन्येरनेकशः। तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लाङ्गूलं मारुतेर्द्द्दम्॥३८॥

पुच्छाग्रे किश्चिदनलं दीपयित्वाऽथ राक्षसाः। रज्जभिः सुदृढं बद्धा धृत्वा तं बलिनोऽसुराः॥३९॥ समन्ताद्भामयामासुश्चोरोऽयमिति वादिनः। तूर्यघोषैर्घोषयन्तस्ताडयन्तो मुहुर्मुहुः॥४०॥

हनूमताऽपि तत्सर्वं सोढं किञ्चिचिकीर्षुणा। गत्वा तु पश्चिमद्वारसमीपं तत्र मारुतिः॥४१॥ सूक्ष्मो बभूव बन्धेभ्यो निःसृतः पुनरप्यसौ। बभूव पर्वताकारस्तत उत्स्रुत्य गोपुरम्॥४२॥ तत्रैकं स्तम्भमादाय हत्वा तान् रक्षिणः क्षणात्। विचार्य कार्यरोषं स प्रासादाग्राद्गृहाद्गृहम्॥४३॥ उत्स्रत्योष्ट्रत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः। ददाह लङ्कामिखलां साट्टप्रासादतोरणाम्॥४४॥ हा तात पुत्र नाथेति कन्दमानाः समन्ततः। व्याप्ताः प्रासाद्शिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः॥४५॥ देवता इव दृश्यन्ते पतन्त्यः पावकेऽखिलाः। विभीषणगृहं त्यक्तवा सर्वं भस्मीकृतं पुरम्॥४६॥ तत उत्सुत्य जलधौ हनुमान्मारुतात्मजः। लाङ्गूलं मज्जयित्वाऽन्तः स्वस्थचित्तो बभूव सः॥४७॥ वायोः प्रियसखित्वाच सीतया प्रार्थितोऽनलः। न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः॥४८॥

यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापाः तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः। तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः सन्तप्यते कथमसौ प्रकृताऽनलेन॥४९॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥४॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

ततः सीतां नमस्कृत्य हनूमानब्रवीद्वचः। आज्ञापयतु मां देवि भवती रामसिन्निधिम्॥१॥ गच्छामि रामस्त्वां द्रष्टुमागमिष्यति सानुजः। इत्युक्तवा त्रिःपरिक्रम्य जानकीं मारुतात्मजः॥२॥ प्रणम्य प्रस्थितो गन्तुमिदं वचनमब्रवीत्। देवि गच्छामि भद्रं ते तूर्णं द्रक्ष्यसि राघवम्॥३॥ लक्ष्मणं च ससुग्रीवं वानरायुतकोटिभिः। ततः प्राह हनूमन्तं जानकी दुःखकिर्शिता॥४॥ त्वां दृष्ट्वा विस्मृतं दुःखिमदानीं त्वं गिमष्यिस। इतः परं कथं वर्ते रामवार्ताश्रुतिं विना॥५॥

मारुतिरुवाच

यद्येवं देवि मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रतः। रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानिक॥६॥

सीतोवाच

रामः सागरमाशोष्य बद्धा वा शरपञ्जरैः।
आगत्य वानरैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे॥७॥
मां नयेद्यदि रामस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती।
अतो गच्छ कथं चापि प्राणान् सन्धारयाम्यहम्॥८॥
इति प्रस्थापितो वीरः सीतया प्रणिपत्य ताम्।
जगाम पर्वतस्याग्रे गन्तुं पारं महोद्धेः॥९॥
तत्र गत्वा महासत्त्वः पादाभ्यां पीडयन् गिरिम्।
जगाम वायुवेगेन पर्वतश्च महीतलम्॥१०॥
गतो महीसमानत्वं त्रिंशद्योजनमुच्छितः।
मारुतिर्गगनान्तःस्थो महाशब्दं चकार सः॥११॥

तं श्रुत्वा वानराः सर्वे ज्ञात्वा मारुतिमागतम्। हर्षेण महताऽऽविष्टाः शब्दं चकुर्महास्वनम्॥१२॥ शब्देनैव विजानीमः कृतकार्यः समागतः। हनूमानेव पश्यध्वं वानरा वानरर्षभम्॥१३॥ एवं ब्रुवत्सु वीरेषु वानरेषु स मारुतिः। अवतीर्य गिरेर्मूर्धि वानरानिदमब्रवीत्॥१४॥ दृष्टा सीता मया लङ्का धर्षिता च सकानना। सम्भाषितो दशायीवस्ततोऽहं पुनरागतः॥१५॥ इदानीमेव गच्छामो रामसुग्रीवसन्निधिम्। इत्युक्ता वानराः सर्वे हर्षेणालिङ्ग्य मारुतिम्॥१६॥ केचिचुचुम्बुर्लाङ्गलं ननृतुः केचिदुत्सुकाः। हनूमता समेतास्ते जग्मुः प्रस्रवणं गिरिम्॥ १७॥ गच्छन्तो दृहशुर्वीरा वनं सुग्रीवरक्षितम्। मधुसंज्ञं तदा प्राहुरङ्गदं वानरर्षभाः॥१८॥ क्षुधिताः स्मो वयं वीर देह्यनुज्ञां महामते। भक्षयामः फलान्यद्य पिबामोऽमृतवन्मधु॥ १९॥

सन्तुष्टा राघवं द्रष्टुं गच्छामोऽद्यैव सानुजम्॥२०॥ अङ्गद उवाच

हुनुमान् कृतकार्योऽयं पिबतैतत्प्रसाद्तः। जक्षध्वं फलमूलानि त्वरितं हरिसत्तमाः॥२१॥ ततः प्रविश्य हरयः पातुमारेभिरे मधु। रक्षिणस्ताननादृत्य द्धिवक्रेण नोदितान्॥२२॥ पिबतस्ताडयामासुर्वानरान् वानरर्षभाः। ततस्तान् मुष्टिभिः पादैश्रूणीयत्वा पपुर्मधु॥२३॥ ततो दिधमुखः कुद्धः सुग्रीवस्य स मातुलः। जगाम रक्षिभिः सार्धं यत्र राजा कपीश्वरः॥२४॥ गत्वा तमब्रवीद्देव चिरकालाभिरक्षितम्। नष्टं मधुवनं तेऽद्य कुमारेण हनूमता॥२५॥ श्रुत्वा दिधमुखेनोक्तं सुग्रीवो हृष्टमानसः। दृष्ट्वाऽऽगतो न सन्देहः सीतां पवननन्दनः॥२६॥ नो चेन्मधुवनं द्रष्टुं समर्थः को भवेन्मम। तत्रापि वायुपुत्रेण कृतं कार्यं न संशयः॥२७॥

श्रुत्वा सुग्रीववचनं हृष्टो रामस्तमब्रवीत्। किमुच्यते त्वया राजन् वचः सीताकथान्वितम्॥ २८॥ सुग्रीवस्त्वबवीद्वाक्यं देव दृष्टाऽवनीसुता। हनुमत्प्रमुखाः सर्वे प्रविष्टा मधुकाननम्॥२९॥ भक्षयन्ति स्म सकलं ताडयन्ति स्म रक्षिणः। अकृत्वा देवकार्यं ते द्रष्टुं मधुवनं मम॥३०॥ न समर्थास्ततो देवी दृष्टा सीतेति निश्चितम्। रक्षिणो वो भयं माऽस्तु गत्वा ब्रुत ममाऽऽज्ञया॥३१॥ वानरानङ्गदमुखानानयध्वं ममान्तिकम्। श्रुत्वा सुग्रीववचनं गत्वा ते वायुवेगतः॥३२॥ हन्मत्प्रमुखानूचुर्गच्छतेश्वरशासनात् द्रष्ट्रमिच्छति सुग्रीवः सरामो लक्ष्मणान्वितः॥३३॥ युष्मानतीव हृष्टास्ते त्वरयन्ति महाबलाः। तथेत्यम्बरमासाद्य ययुस्ते वानरोत्तमाः॥३४॥ हनूमन्तं पुरस्कृत्य युवराजं तथाऽङ्गदम्। रामसुग्रीवयोरग्रे निपेतुर्भुवि सत्वरम्॥३५॥

हनुमान् राघवं प्राह दृष्टा सीता निरामया। साष्टाङ्गं प्रणिपत्याग्रे रामं पश्चाद्धरीश्वरम्॥३६॥ कुशलं प्राह राजेन्द्र जानकी त्वां शुचान्विता। अशोकविनकामध्ये शिंशपामूलमाश्रिता॥३७॥ राक्षसीभिः परिवृता निराहारा कृशा प्रभो। हा राम राम रामेति शोचन्ती मिलनाम्बरा॥३८॥ एकवेणी मया दृष्टा शनैराश्वासिता शुभा। वृक्षशाखान्तरे स्थित्वा सूक्ष्मरूपेण ते कथाम्॥३९॥

जन्मारभ्य तवात्यर्थं दण्डकागमनं तथा। दशाननेन हरणं जानक्या रहिते त्विय॥४०॥ सुग्रीवेण यथा मैत्री कृत्वा वालिनिबर्हणम्। मार्गणार्थं च वैदेह्या सुग्रीवेण विसर्जिताः॥४१॥ महाबला महासत्त्वा हरयो जितकाशिनः। गताः सर्वत्र सर्वे वै तत्रैकोऽहिमहागतः॥४२॥ अहं सुग्रीवसिचवो दासोऽहं राघवस्य हि। दृष्टा यज्ञानकी भाग्यात्प्रयासः फलितोऽद्य मे॥४३॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य सीता विस्फारितेक्षणा। केन वा कर्णपीयुषं श्रावितं मे शुभाक्षरम्॥४४॥ यदि सत्यं तदायातु मद्दर्शनपथं तु सः। ततोऽहं वानराकारः सूक्ष्मरूपेण जानकीम्॥४५॥ प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा दूरादेव स्थितः प्रभो। पृष्टोऽहं सीतया कस्त्वमित्यादि बहुविस्तरम्॥४६॥ मया सर्वं क्रमेणैव विज्ञापितमरिन्दम। पश्चान्मयाऽर्पितं देव्यै भवद्दत्ताङ्गुलीयकम्॥४७॥ तेन मामतिविश्वस्ता वचनं चेदमब्रवीत। यथा दृष्टाऽस्मि हनुमन् पीड्यमाना दिवानिशम्॥४८॥ राक्षसीनां तर्जनैस्तत्सर्वं कथय राघवे। मयोक्तं देवि रामोऽपि त्विचन्तापरिनिष्ठितः॥४९॥ परिशोचत्यहोरात्रं त्वद्वार्तां नाधिगम्य सः। इदानीमेव गत्वाऽहं स्थितिं रामाय ते ब्रुवे॥५०॥ रामः श्रवणमात्रेण सुग्रीवेण सलक्ष्मणः। वानरानीकपैः सार्धमागमिष्यति तेऽन्तिकम्॥५१॥

रावणं सकुलं हत्वा नेष्यति त्वां स्वकं पुरम्। अभिज्ञां देहि मे देवि यथा मां विश्वसेद्विभुः॥५२॥ इत्युक्ता सा शिरोरत्नं चूडापाशे स्थितं प्रियम्। दत्त्वा काकेन यद्भृतं चित्रकूटगिरौ पुरा॥५३॥ तद्प्याहाश्रुपूर्णाक्षी कुरालं ब्रहि राघवम्। लक्ष्मणं ब्रूहि मे किञ्चिद्दुरुक्तं भाषितं पुरा॥५४॥ तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषितं कुलनन्दन। तारयेन्मां यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वितः॥५५॥ इत्युत्तवा रुद्ती सीता दुःखेन महताऽऽवृता। मयाऽप्याश्वासिता राम वदता सर्वमेव ते॥५६॥ ततः प्रस्थापितो राम त्वत्समीपमिहागतः। तदागमनवेलायामशोकवनिकां प्रियाम्॥५७॥ उत्पाट्य राक्षसांस्तत्र बहून् हत्वा क्षणादहम्। रावणस्य सुतं हत्वा रावणेनाभिभाष्य च॥५८॥ लङ्कामशेषतो दग्ध्वा पुनरप्यागमं क्षणात्। श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामोऽत्यन्तप्रहृष्ट्यीः॥५९॥

हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्। उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः॥६०॥

इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते। इत्यालिङ्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम्॥६१॥

सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः। हनूमन्तमुवाचेदं राघवो भक्तवत्सलः॥६२॥

परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः। अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव॥६३॥

यत्पाद्पद्मयुगलं तुलसीद्लाद्यैः सम्पूज्य विष्णुपद्वीमतुलां प्रयान्ति। तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः॥६४॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥५॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे सुन्दरकाण्डः समाप्तः॥

॥ युद्धकाण्डः ॥

॥प्रथमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

यथावद्भाषितं वाक्यं श्रुत्वा रामो हनूमतः। उवाचानन्तरं वाक्यं हर्षेण महताऽऽवृतः॥१॥ कार्यं कृतं हनुमता देवैरपि सुदुष्करम्। मनसाऽपि यदन्येन स्मर्तुं शक्यं न भूतले॥२॥ शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत्कः पयोनिधिम्। लङ्कां च राक्षसौर्गुप्तां को वा धर्षयितुं क्षमः॥३॥ भृत्यकार्यं हनुमता कृतं सर्वमशेषतः। सुग्रीवस्पेदशो लोके न भूतो न भविष्यति॥४॥ अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च कपीश्वरः। जानक्या दर्शनेनाद्य रक्षिताः स्मो हनूमता॥५॥ सर्वथा सुकृतं कार्यं जानक्याः परिमार्गणम्। समुद्रं मनसा स्मृत्वा सीद्तीव मनो मम॥६॥ कथं नक्रझषाकीर्णं समुद्रं शतयोजनम्। लङ्घियत्वा रिपुं हन्यां कथं द्रक्ष्यामि जानकीम्॥७॥ श्रुत्वा तु रामवचनं सुग्रीवः प्राह राघवम्। समुद्रं लङ्घियध्यामो महानक्रझषाकुलम्॥८॥ लङ्कां च विधमिष्यामो हिनष्यामोऽद्य रावणम्। चिन्तां त्यज रघुश्रेष्ठ चिन्ता कार्यविनाशिनी॥९॥ एतान् पश्य महासत्त्वान् श्रूरान् वानरपुङ्गवान्। त्वित्रियार्थं समुद्युक्तान् प्रवेष्ट्रमपि पावकम्॥१०॥

समुद्रतरणे बुद्धिं कुरुष्व प्रथमं ततः।
द्वष्ट्वा लङ्कां दशग्रीवो हत इत्येव मन्महे॥११॥
निह पश्याम्यहं किञ्चित्तिषु लोकेषु राघव।
गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदिभमुखो रणे॥१२॥
सर्वथा नो जयो राम भविष्यति न संशयः।
निमित्तानि च पश्यामि तथा भूतानि सर्वशः॥१३॥
सुग्रीववचनं श्रुत्वा भक्तिवीर्यसमन्वितम्।
अङ्गीकृत्याबवीद्रामो हनूमन्तं पुरःस्थितम्॥१४॥

येन केन प्रकारेण लङ्घयामो महार्णवम्। लङ्कास्वरूपं मे ब्रहि दुःसाध्यं देवदानवैः॥१५॥ ज्ञात्वा तस्य प्रतीकारं करिष्यामि कपीश्वर। श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान् विनयान्वितः॥१६॥ उवाच प्राञ्जलिर्देव यथा दृष्टं ब्रवीमि ते। लङ्का दिव्या पुरी देव त्रिकूटिशखरे स्थिता॥१७॥ स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाट्टालकसंयुता। परिखाभिः परिवृता पूर्णाभिर्निर्मलोदकैः॥१८॥ नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता। गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तम्भमयैः शुभैः॥१९॥ पश्चिमद्वारमासाद्य गजवाहाः सहस्रदाः। उत्तरे द्वारि तिष्ठन्ति साश्ववाहाः सपत्तयः॥२०॥ तिष्ठन्त्यर्बुदसङ्खाकाः प्राच्यामपि तथैव च। रक्षिणो राक्षसा वीरा द्वारं दक्षिणमाश्रिताः॥२१॥ मध्यकक्षेऽप्यसङ्खाता गजाश्वरथपत्तयः। रक्षयन्ति सदा लङ्कां नानास्त्रकुशलाः प्रभो॥२२॥

सङ्कमैर्विविधैर्लङ्का शतन्नीभिश्च संयुता। एवं स्थितेऽपि देवेश शृणु मे तत्र चेष्टितम्॥२३॥ द्शाननबलौघस्य चतुर्थांशो मया हतः। दग्ध्वा लङ्कां पुरीं स्वर्णप्रासादो धर्षितो मया॥२४॥ रातध्यः सङ्क्रमाश्चैव नाशिता मे रघूत्तम। देव त्वद्दर्शनादेव लङ्का भस्मीकृता भवेत्॥२५॥ प्रस्थानं कुरु देवेश गच्छामो लवणाम्बुधेः। तीरं सह महावीरैर्वानरौधैः समन्ततः॥२६॥ श्रुत्वा हनूमतो वाक्यमुवाच रघुनन्दनः। सुग्रीव सैनिकान् सर्वान् प्रस्थानायाभिनोद्य॥२७॥ इदानीमेव विजयो मुहूर्तः परिवर्तते। अस्मिन्मुहूर्ते गत्वाऽहं लङ्कां राक्षससङ्कलाम्॥ २८॥ सप्राकारां सुदुर्धर्षां नारायामि सरावणाम्। आनेष्यामि च सीतां मे दक्षिणाक्षि स्फुरत्यधः॥२९॥ प्रयातु वाहिनी सर्वा वानराणां तरस्विनाम्। रक्षन्तु यूथपाः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः॥३०॥

हनूमन्तमथारुह्य गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः। आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीव त्वं मया सह॥३१॥ गजो गवाक्षो गवयो मैन्दो द्विविद एव च। नलो नीलः सुषेणश्च जाम्बवांश्च तथाऽपरे॥३२॥ सर्वे गच्छन्त सर्वत्र सेनायाः शत्रुघातिनः। इत्याज्ञाप्य हरीन् रामः प्रतस्थे सहलक्ष्मणः॥३३॥ सुग्रीवसहितो हर्षात्सेनामध्यगतो विभुः। वारणेन्द्रनिभाः सर्वे वानराः कामरूपिणः॥३४॥ क्ष्वेलन्तः परिगर्जन्तो जग्मुस्ते दक्षिणां दिशम्। भक्षयन्तो ययुः सर्वे फलानि च मधूनि च॥३५॥ ब्रुवन्तो राघवस्याग्रे हिनष्यामोऽद्य रावणम्। एवं ते वानरश्रेष्ठा गच्छन्त्यतुलविक्रमाः॥३६॥ हरिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते रघूत्तमौ। नक्षत्रेः सेवितौ यद्वचन्द्रसूर्याविवाम्बरे॥३७॥ आवृत्य पृथिवीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः। प्रस्फोटयन्तः पुच्छायानुद्वहन्तश्च पादपान्॥३८॥

शैलानारोहयन्तश्च जग्मुर्मारुतवेगतः। असञ्चाताश्च सर्वत्र वानराः परिपूरिताः॥३९॥ हृष्टास्ते जग्मुरत्यर्थं रामेण परिपालिताः। गता चमूर्दिवारात्रं कचिन्नासज्जत क्षणम्॥४०॥ काननानि विचित्राणि पश्यन्मलयसह्ययोः। ते सह्यं समितकम्य मलयं च तथा गिरिम्॥४१॥ आययुश्चानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम्। अवतीर्य हनूमन्तं रामः सुग्रीवसंयुतः॥४२॥ सिललाभ्याशमासाद्य रामो वचनमब्रवीत्। आगताः स्मो वयं सर्वे समुद्रं मकरालयम्॥४३॥ इतो गन्तुमशक्यं नो निरुपायेन वानराः। अत्र सेनानिवेशोऽस्तु मन्त्रयामोऽस्य तारणे॥४४॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः सागरान्तिके। सेनां न्यवेशयत् क्षिप्रं रिक्षतां किपकुञ्जरैः॥४५॥ ते पश्यन्तो विषेदुस्तं सागरं भीमद्र्शनम्। महोन्नततरङ्गाढ्यं भीमनकभयङ्करम्॥४६॥

अगाधं गगनाकारं सागरं वीक्ष्य दुःखिताः। तरिष्यामः कथं घोरं सागरं वरुणालयम्॥४७॥

हन्तव्योऽस्माभिरद्यैव रावणो राक्षसाधमः। इति चिन्ताकुलाः सर्वे रामपार्श्वे व्यवस्थिताः॥४८॥

रामः सीतामनुस्मृत्य दुःखेन महताऽऽवृतः। विलप्य जानकीं सीतां बहुधा कार्यमानुषः॥४९॥

अद्वितीयश्चिदात्मैकः परमात्मा सनातनः। यस्तु जानाति रामस्य स्वरूपं तत्त्वतो जनः॥५०॥

तं न स्पृश्चाति दुःखादि किमुतानन्दमव्ययम्। दुःखहर्षभयक्रोधलोभमोहमदादयः॥५१॥

अज्ञानिलङ्गान्येतानि कुतः सन्ति चिदात्मिन। देहाभिमानिनो दुःखं न देहस्य चिदात्मनः॥५२॥

सम्प्रसादे द्वयाभावात्सुखमात्रं हि दृश्यते। बुद्धाद्यभावात्संशुद्धे दुःखं तत्र न दृश्यते। अतो दुःखादिकं सर्वं बुद्धेरेव न संशयः॥५३॥ रामः परात्मा पुरुषः पुराणो नित्योदितो नित्यसुखो निरीहः। तथाऽपि मायागुणसङ्गतोऽसौ सुखीव दुःखीव विभाव्यतेऽबुधैः॥५४॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे प्रथमः सर्गः॥ १॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

लङ्कायां रावणो दृष्ट्वा कृतं कर्म हनूमता। दुष्करं दैवतैर्वाऽपि ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः॥१॥

आहूय मन्त्रिणः सर्वानिदं वचनमब्रवीत्। हनूमता कृतं कर्म भवद्भिर्दृष्टमेव तत्॥२॥

प्रविश्य लङ्कां दुर्धर्षां दृष्ट्वा सीतां दुरासदाम्। हत्वा च राक्षसान् वीरानक्षं मन्दोद्रीसुतम्॥३॥ दग्धा लङ्कामशेषेण लङ्गियत्वा च सागरम्। युष्मान् सर्वानतिक्रम्य स्वस्थोऽगात्पुनरेव सः॥४॥ किं कर्तव्यमितोऽस्माभिर्यूयं मन्त्रविशारदाः। मन्त्रयध्वं प्रयत्नेन यत्कृतं मे हितं भवेत्॥५॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा राक्षसास्तमथाब्रुवन्। देव राङ्का कुतो रामात्तव लोकजितो रणे॥६॥ इन्द्रस्तु बद्धा निक्षिप्तः पुत्रेण तव पत्तने। जित्वा कुबेरमानीय पुष्पकं भुज्यते त्वया॥७॥ यमो जितः कालदण्डाद्भयं नाभूत्तव प्रभो। वरुणो हुङ्कतेनैव जितः सर्वेऽपि राक्षसाः॥८॥ मयो महासुरो भीत्या कन्यां दत्त्वा स्वयं तव। त्वद्वरो वर्ततेऽद्यापि किमुतान्ये महासुराः॥९॥ हनूमद्धर्षणं यत्तु तदवज्ञाकृतं च नः। वानरोऽयं किमस्माकमस्मिन् पौरुषदर्शने॥१०॥ इत्युपेक्षितमस्माभिर्घर्षणं तेन किं भवेत्।

वयं प्रमत्ताः किं तेन विश्वताः स्मो हनूमता॥११॥

जानीमो यदि तं सर्वे कथं जीवन् गमिष्यति। जगत्कृत्स्नमवानरममानुषम्॥१२॥ आज्ञापय कृत्वाऽऽयास्यामहे सर्वे प्रत्येकं वा नियोजय। क्रम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसंश्वरम्॥१३॥ आरब्धं यत्त्वया कर्म स्वात्मनाशाय केवलम्। न दृष्टोऽसि तदा भाग्यात्त्वं रामेण महात्मना॥१४॥ यदि पश्यति रामस्त्वां जीवन्नायासि रावण। रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः॥१५॥ सीता भगवती लक्ष्मी रामपत्नी यशस्विनी। राक्षसानां विनाशाय त्वयाऽऽनीता सुमध्यमा॥१६॥ विषपिण्डमिवागीर्य महामीनो यथा तथा। आनीता जानकी पश्चात्त्वया किं वा भविष्यति॥१७॥ यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता। सर्वं समं करिष्यामि स्वस्थिचत्तो भव प्रभो॥१८॥ कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा वाक्यमिन्द्रजिद्बवीत्। देहि देव ममानुज्ञां हत्वा रामं सलक्ष्मणम्। सुग्रीवं वानरांश्चेव पुनर्यास्यामि तेऽन्तिकम्॥१९॥

तत्राऽऽगतो भागवतप्रधानो विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः। श्रीरामपादद्वय एकतानः प्रणम्य देवारिमुपोपविष्टः॥२०॥

विलोक्य कुम्भश्रवणादिदैत्यान् मत्तप्रमत्तानितविस्मयेन । विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो दशाननं प्राह विशुद्धबुद्धिः॥२१॥

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजन् तथा महापार्श्वमहोद्रौ तौ। निकुम्भकुम्भौ च तथाऽतिकायः स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥२२॥

सीताभिधानेन महाग्रहेण ग्रस्तोऽसि राजन् न च ते विमोक्षः। तामेव सत्कृत्य महाधनेन दत्त्वाऽभिरामाय सुखी भव त्वम्॥२३॥ यावन्न रामस्य शिताः शिलीमुखा लङ्कामभिव्याप्य शिरांसि रक्षसाम्। छिन्दन्ति तावद्रघुनायकस्य भो-स्तां जानकीं त्वं प्रतिदातुमर्हसि॥२४॥

यावन्नगाभाः कपयो महाबला हरीन्द्रतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः। लङ्कां समाकम्य विनाशयन्ति ते तावद्भृतं देहि रघूत्तमाय ताम्॥२५॥

जीवन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वम् गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शङ्करेण। न देवराजाङ्कगतो न मृत्योः पाताललोकानपि सम्प्रविष्टः॥२६॥

शुभं हितं पवित्रं च विभीषणवचः खलः। प्रतिजग्राह नैवासौ म्रियमाण इवौषधम्॥२७॥

कालेन नोदितो दैत्यो विभीषणमथाब्रवीत्। मदत्तभोगैः पुष्टाङ्गो मत्समीपे वसन्नपि॥२८॥ प्रतीपमाचरत्येष ममैव हितकारिणः। मित्रभावेन शत्रुमें जातो नास्त्यत्र संशयः॥२९॥

अनार्येण कृतघ्नेन सङ्गतिर्मे न युज्यते। विनाशमभिकाङ्गन्ति ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा॥३०॥

योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेकं निशाचरः। हन्मि तस्मिन् क्षणे एव धिक् त्वां रक्षःकुलाधमम्॥ ३१॥

रावणेनैवमुक्तः सन् परुषं स विभीषणः। उत्पपात सभामध्याद्भदापाणिर्महाबलः॥३२॥

चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गगनस्थोऽब्रवीद्वचः। क्रोधेन महताऽऽविष्टो रावणं दशकन्धरम्। मा विनाशमुपैहि त्वं प्रियवादिनमेव माम्॥३३॥

धिक्करोषि तथाऽपि त्वं ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः। कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये॥३४॥

काली सीताभिधानेन जाता जनकनन्दिनी। तावुभावागतावत्र भूर्मभारापनुत्तये॥३५॥ तेनैव प्रेरितस्त्वं तु न शृणोषि हितं मम। श्रीरामः प्रकृतेः साक्षात्परस्तात्सर्वदा स्थितः॥३६॥

बिहरन्तश्च भूतानां समः सर्वत्र संस्थितः। नामरूपादिभेदेन तत्तन्मय इवामलः॥३७॥ यथा नानाप्रकारेषु वृक्षेष्वेको महानलः।

यथा नानाप्रकारषु वृक्षष्वका महानलः। तत्तदाकृतिभेदेन भिद्यतेऽज्ञानचक्षुषाम्॥३८॥

पञ्चकोशादिभेदेन तत्तन्मय इवाबभौ। नीलपीतादियोगेन निर्मलः स्फटिको यथा॥३९॥

स एव नित्यमुक्तोऽपि स्वमायागुणबिम्बितः। कालः प्रधानं पुरुषोऽव्यक्तं चेति चतुर्विधः॥४०॥

प्रधानपुरुषाभ्यां स जगत्कृत्स्नं सृजत्यजः। कालरूपेण कलनां जगतः कुरुतेऽव्ययः॥४१॥ कालरूपी स भगवान् रामरूपेण मायया॥४२॥

ब्रह्मणा प्रार्थितो देवस्त्वद्वधार्थमिहागतः। तदन्यथा कथं कुर्यात्सत्यसङ्कल्प ईश्वरः॥४३॥ हिनष्यति त्वां रामस्तु सपुत्रबलवाहनम्। हन्यमानं न शकोमि द्रष्टुं रामेण रावण॥४४॥

त्वां राक्षसकुलं कृत्स्नं ततो गच्छामि राघवम्। मयि याते सुखीभूत्वा रमस्व भवने चिरम्॥४५॥

विभीषणो रावणवाक्यतः क्षणा-द्विसृज्य सर्वं सपरिच्छदं गृहम्। जगाम रामस्य पदारविन्दयोः सेवाभिकाङ्की परिपूर्णमानसः॥४६॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २॥

॥ तृतीयः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणो महाभागश्चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सह। आगत्य गगने रामसम्मुखं समवस्थितः॥१॥ उचैरुवाच भोः स्वामिन राम राजीवलोचन। रावणस्यानुजोऽहं ते दारहर्तुर्विभीषणः॥२॥ नाम्ना भ्रात्रा निरस्तोऽहं त्वामेव शरणं गतः। हितमुक्तं मया देव तस्य चाविदितात्मनः॥३॥ सीतां रामाय वैदेहीं प्रेषयेति पुनः पुनः। उक्तोऽपि न शृणोत्येव कालपाशवशं गतः॥४॥ हन्तुं मां खङ्गमादाय प्राद्रवद्राक्षसाधमः। ततोऽचिरेण सचिवैश्रतुर्भिः सहितो भयात्॥५॥ त्वामेव भवमोक्षाय मुमुक्षुः शरणं गतः। विभीषणवचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत्॥६॥ विश्वासार्हों न ते राम मायावी राक्षसाधमः। सीताहर्तुर्विशेषेण रावणस्यानुजो बली॥७॥ मन्त्रिभिः सायुधेरस्मान् विवरे निहनिष्यति। तदाज्ञापय मे देव वानरैर्हन्यतामयम्॥८॥ ममैवं भाति मे राम बुद्या किं निश्चितं वद। श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः सस्मितमबवीत्॥९॥

यदीच्छामि कपिश्रेष्ठ लोकान् सर्वान् सहेश्वरान्। निमिषार्धेन संहन्यां सृजामि निमिषार्धतः॥१०॥ अतो मयाऽभयं दत्तं शीघ्रमानय राक्षसम्॥११॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्वतं मम॥१२॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो हृष्टमानसः। विभीषणमथानाय्य दृशयामास राघवम्॥१३॥

विभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्य रघूत्तमम्। हर्षगद्भद्वया वाचा भक्त्या च परयान्वितः॥१४॥

रामं श्यामं विशालाक्षं प्रसन्नमुखपङ्कजम्। धनुर्बाणधरं शान्तं लक्ष्मणेन समन्वितम्॥१५॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे॥१६॥

विभीषण उवाच

नमस्ते राम राजेन्द्र नमः सीतामनोरम। नमस्ते चण्डकोदण्ड नमस्ते भक्तवत्सल॥१७॥

नमोऽनन्ताय शान्ताय रामायामिततेजसे। सुग्रीवमित्राय च ते रघूणां पतये नमः॥१८॥ जगदुत्पत्तिनाशानां कारणाय महात्मने। त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थाय नमो नमः॥१९॥ त्वमादिर्जगतां राम त्वमेव स्थितिकारणम्। त्वमन्ते निधनस्थानं स्वेच्छाचारस्त्वमेव हि॥२०॥ चराचराणां भूतानां बहिरन्तश्च राघव। व्याप्यव्यापकरूपेण भवान् भाति जगन्मयः॥२१॥ त्वन्मायया हृतज्ञाना नष्टात्मानो विचेतसः। गतागतं प्रपद्यन्ते पापपुण्यवशात्सदा॥२२॥ तावत्सत्यं जगद्भाति शक्तिकारजतं यथा। यावन्न ज्ञायते ज्ञानं चेतसाऽनन्यगामिना॥२३॥ त्वद्ज्ञानात्सदा युक्ताः पुत्रदारगृहादिषु। रमन्ते विषयान् सर्वानन्ते दुःखप्रदान् विभो॥२४॥ त्विमन्द्रोऽग्निर्यमो रक्षो वरुणश्च तथाऽनिलः। कुबेरश्च तथा रुद्रस्त्वमेव पुरुषोत्तम॥२५॥

त्वमणोरप्यणीयांश्च स्थूलात् स्थूलतरः प्रभो। त्वं पिता सर्वलोकानां माता धाता त्वमेव हि॥२६॥ आदिमध्यान्तरहितः परिपूर्णोऽच्युतोऽव्ययः। पाणिपादरहितश्रक्षःश्रोत्रविवर्जितः॥२७॥ श्रोता द्रष्टा ग्रहीता च जवनस्त्वं खरान्तक। कोशेभ्यो व्यतिरिक्तस्त्वं निर्गुणो निरुपाश्रयः॥ २८॥ निर्विकल्पो निर्विकारो निराकारो निरीश्वरः। षङ्गावरहितोऽनादिः पुरुषः प्रकृतेः परः॥२९॥ मायया गृह्यमाणस्त्वं मनुष्य इव भाव्यसे। ज्ञात्वा त्वां निर्गुणमजं वैष्णवा मोक्षगामिनः॥३०॥ अहं त्वत्पादसद्धित्तिनिःश्रेणीं प्राप्य राघव। इच्छामि ज्ञानयोगाख्यं सौधमारोढुमीश्वर॥३१॥ नमः सीतापते राम नमः कारुणिकोत्तम। रावणारे नमस्तुभ्यं त्राहि मां भवसागरात्॥३२॥ ततः प्रसन्नः प्रोवाच श्रीरामो भक्तवत्सलः। वरं वृणीष्व भद्रं ते वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम्॥३३॥

विभीषण उवाच धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कृतकार्योऽस्मि राघव। त्वत्पाददर्शनादेव विमुक्तोऽस्मि न संशयः॥३४॥ नास्ति मत्सदृशो धन्यो नास्ति मत्सदृशः शुचिः। नास्ति मत्सदृशो लोके राम त्वन्मूर्तिदुर्शनात्॥३५॥ कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम्। त्वद्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन॥३६॥ न याचे राम राजेन्द्र सुखं विषयसम्भवम्। त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे॥३७॥ ओमित्युत्तवा पुनः प्रीतो रामः प्रोवाच राक्षसम्। शृणु वक्ष्यामि ते भद्रं रहस्यं मम निश्चितम्॥३८॥ मद्भक्तानां प्रशान्तानां योगिनां वीतरागिणाम्। हृदये सीतया नित्यं वसाम्यत्र न संशयः॥३९॥ तस्मात्त्वं सर्वदा शान्तः सर्वकल्मषवर्जितः। मां ध्यात्वा मोक्ष्यसे नित्यं घोरसंसारसागरात्॥४०॥ स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु लिखेद्यः शृणुयादपि। मत्त्रीतये ममाभीष्टं सारूप्यं समवाप्नुयात्॥४१॥

इत्युक्तवा लक्ष्मणं प्राह श्रीरामो भक्तभिक्तमान्। पश्यत्विदानीमेवैष मम सन्दर्शने फलम्॥४२॥ लङ्काराज्येऽभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात्। यावचन्द्रश्च सूर्यश्च यावित्तष्ठिति मेदिनी॥४३॥ यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं करोत्वसौ। इत्युक्तवा लक्ष्मणेनाम्बु ह्यानाय्य कलशेन तम्॥४४॥

लङ्काराज्याधिपत्यार्थमभिषेकं रमापतिः। कारयामास सचिवैर्लक्ष्मणेन विशेषतः॥४५॥ साधु साध्विति ते सर्वे वानरास्तुष्टुवुर्भृशम्। सुग्रीवोऽपि परिष्वज्य विभीषणमथाब्रवीत्॥४६॥

विभीषण वयं सर्वे रामस्य परमात्मनः। किङ्करास्तत्र मुख्यस्त्वं भक्त्या रामपरिग्रहात्। रावणस्य विनाशे त्वं साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥४७॥

विभीषण उवाच

अहं कियान् सहायत्वे रामस्य परमात्मनः। किं तु दास्यं करिष्येऽहं भक्त्या शक्त्या ह्यमायया॥४८॥

द्शग्रीवेण सन्दिष्टः शुको नाम महासुरः। संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीविमदमब्रवीत्॥४९॥ त्वामाह रावणो राजा भ्रातरं राक्षसाधिपः। महाकुलप्रसूतस्त्वं राजाऽसि वनचारिणाम्॥५०॥ मम भ्रातसमानस्त्वं तव नास्त्यर्थविष्ठवः। अहं यदहरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव॥५१॥ किष्किन्धां याहि हरिभिर्लङ्का शक्या न दैवतैः। किं मानवैरल्पसत्त्वैर्वानरयूथपैः॥५२॥ प्राप्तं तं प्रापयन्तं वचनं तूर्णमुत्स्रत्य वानराः। प्रापद्यन्त तदा क्षिप्रं निहन्तुं दृढमुष्टिभिः॥५३॥ वानरैर्हन्यमानस्तु शुको राममथाब्रवीत्। न दूतान् घ्नन्ति राजेन्द्र वानरान् वारय प्रभो॥५४॥ रामः श्रुत्वा तदा वाक्यं शुकस्य परिदेवितम्। मा विधष्टेति रामस्तान् वारयामास वानरान्॥५५॥ पुनरम्बरमासाद्य शुकः सुग्रीवमब्रवीत्। ब्रूहि राजन् द्शायीवं किं वक्ष्यामि व्रजाम्यहम्॥५६॥

सुग्रीव उवाच

यथा वाली मम भ्राता तथा त्वं राक्षसाधम। हन्तव्यस्त्वं मया यत्नात्सपुत्रबलवाहनः॥५७॥ ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्यां हृत्वा क यास्यसि। ततो रामाज्ञया धृत्वा शुकं बध्वाऽन्वरक्षयत्॥५८॥ शार्दूलोऽपि ततः पूर्वं दृष्ट्वा कपिबलं महत्। यथावत्कथयामास रावणाय स राक्षसः॥५९॥ दीर्घचिन्तापरो भूत्वा निःश्वसन्नास मन्दिरे। ततः समुद्रमावेक्ष्य रामो रक्तान्तलोचनः॥६०॥ पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम्। नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ॥६१॥ जानाति मानुषोऽयं मे किं करिष्यति वानरैः।

पादेनैव गमिष्यन्ति वानरा विगतज्वराः। इत्युक्तवा क्रोधताम्राक्ष आरोपितधर्नुर्धरः॥६३॥

अद्य पश्य महाबाहो शोषयिष्यामि वारिधिम्॥६२॥

तूणीराद्वाणमादाय कालाग्निसदशप्रभम्। सन्धाय चापमाकृष्य रामो वाक्यमथाब्रवीत्॥६४॥ पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम्। इदानीं भस्मसात्कुर्यां समुद्रं सरितां पतिम्॥६५॥ एवं ब्रवति रामे तु सशैलवनकानना। चचाल वसुधा द्यौश्च दिशश्च तमसावृताः॥६६॥ चुक्षुभे सागरो वेलां भयाद्योजनमत्यगात्। तिमिनक्रझषा मीनाः प्रतप्ताः परितत्रसुः॥६७॥ एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपधुक्। दिव्याभरणसम्पन्नः स्वभासा भासयन् दिशः॥६८॥ स्वान्तःस्थिद्व्यरत्नानि कराभ्यां परिगृह्य सः। पादयोः पुरतः क्षिप्त्वा रामस्योपायनं बहु॥६९॥ दण्डवत्प्रणित्याह रामं रक्तान्तलोचनम्। त्राहि त्राहि जगन्नाथ राम त्रैलोक्यरक्षक॥७०॥ जडोऽहं राम ते सृष्टः सृजता निखिलं जगत्। स्वभावमन्यथा कर्तुं कः शक्तो देवनिर्मितम्॥७१॥ स्थूलानि पञ्चभूतानि जडान्येव स्वभावतः। सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञां लङ्घयन्ति न॥७२॥ तामसादहमो राम भूतानि प्रभवन्ति हि। कारणानुगमात्तेषां जडत्वं तामसं स्वतः॥७३॥

निर्गुणस्त्वं निराकारो यदा मायागुणान् प्रभो। लीलयाऽङ्गीकरोषि त्वं तदा वैराजनामवान्॥७४॥

गुणात्मनो विराजश्च सत्त्वाद्देवा बभूविरे। रजोगुणात्प्रजेशाद्या मन्योर्भृतपतिस्तव॥७५॥ त्वामहं मायया छन्नं लीलया मानुषाकृतिम्॥७६॥

जडबुद्धिर्जडो मूर्कः कथं जानामि निर्गुणम्। दण्ड एव हि मूर्काणां सन्मार्गप्रापकः प्रभो॥७७॥

भूतानाममरश्रेष्ठ पशूनां लगुडो यथा। शरणं ते व्रजामीशं शरण्यं भक्तवत्सल। अभयं देहि मे राम लङ्कामार्गं ददामि ते॥७८॥

श्रीराम उवाच

अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन् देशे निपात्यताम्। लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यामोघपातिनः॥७९॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा करे दृष्ट्वा महाशरम्। महोद्धिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत्॥८०॥ रामोत्तरप्रदेशे तु द्रुमकुल्य इति श्रुतः। प्रदेशस्तत्र बहवः पापात्मानो दिवानिशम्॥८१॥ बाधन्ते मां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पात्यतां शरः। रामेण सृष्टो बाणस्तु क्षणादाभीरमण्डलम्॥८२॥ हत्वा पुनः समागत्य तूणीरे पूर्ववित्स्थितः।

नलः सेतुं करोत्वस्मिन् जले मे विश्वकर्मणः। सृतो धीमान् समर्थोऽस्मिन् कार्ये लब्धवरो हरिः॥८४॥

ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सागरो विनयान्वितः॥८३॥

कीर्तिं जानन्तु ते लोकाः सर्वलोकमलापहाम्। इत्युक्तवा राघवं नत्वा ययौ सिन्धुरदृश्यताम्॥८५॥ ततो रामस्तु सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः। नलमाज्ञापयच्छीघ्रं वानरैः सेतुबन्धने॥८६॥ ततोऽतिहृष्टः प्लवगेन्द्रयूथपैर्-महानगेन्द्रप्रतिमैर्युतो नलः। बबन्ध सेतुं शतयोजनायतम् सुविस्तृतं पर्वतपादपैर्दृढम्॥८७॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३॥

॥ चतुर्थः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच संतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वरं शिवम्। संस्थाप्य पूजियत्वाऽऽह रामो लोकहिताय च॥१॥ प्रणमेत्सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम्। ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात्॥२॥ संतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम्। सङ्कल्पिनयतो भूत्वा गत्वा वाराणसीं नरः॥३॥ आनीय गङ्गासलिलं रामेशमिषिच्य च। समुद्रे क्षिप्ततद्भारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम्॥४॥

कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश। द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानि तु विंशतिः॥५॥ तृतीयेन तथा चाह्ना योजनान्येकविंशतिः। चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरिति श्रुतम्॥६॥ पञ्चमेन त्रयोविंशद्योजनानि समन्ततः। बबन्ध सागरे सेतुं नलो वानरसत्तमः॥७॥ तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम्। असङ्खाताः सुवेलाद्रिं रुरुधुः प्रवगोत्तमाः॥८॥ आरुह्य मारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यङ्गदं तथा। दिदृक्षू राघवो लङ्कामारुरोहाचलं महत्॥९॥ दृष्ट्वा लङ्कां सुविस्तीर्णां नानाचित्रध्वजाकुलाम्। चित्रप्रासादसम्बाधां स्वर्णप्राकारतोरणाम्॥१०॥ परिखाभिः शतघ्नीभिः सङ्कमेश्च विराजिताम्। प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरः॥११॥ मित्रिभिः सिहतो वीरैः किरीटदशकोज्ज्वलः। नीलाद्रिशिखराकारः कालमेघसमप्रभः॥१२॥

रत्नदृण्डैः सितच्छत्रैरनेकैः परिशोभितः। एतस्मिन्नन्तरे बद्धो मुक्तो रामेण वै शुकः॥१३॥

वानरैस्ताडितः सम्यग् दशाननमुपागतः। प्रहसन् रावणः प्राह पीडितः किं परैः शुक्र॥१४॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा शुको वचनमब्रवीत्। सागरस्योत्तरे तीरेऽब्रवं ते वचनं यथा। तत उत्सुत्य कपयो गृहीत्वा मां क्षणात्ततः॥१५॥

मुष्टिभिर्नखदन्तैश्च हन्तुं लोप्तुं प्रचक्रमुः। ततो मां राम रक्षेति क्रोशन्तं रघुपुङ्गवः॥१६॥

विसृज्यतामिति प्राह विसृष्टोऽहं कपीश्वरैः। ततोऽहमागतो भीत्या दृष्ट्वा तद्वानरं बलम्॥१७॥

राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च। नैतयोर्विद्यते सन्धिर्देवदानवयोरिव॥१८॥

पुरप्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु। सीतां वाऽस्मै प्रयच्छाऽऽशु युद्धं वा दीयतां प्रभो॥१९॥

मामाह रामस्त्वं ब्रूहि रावणं मद्वचः शुक। यद्बलं च समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि॥२०॥ तदृशय यथाकामं ससैन्यः सहबान्धवः। श्वःकाले नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम्॥२१॥ राक्षसं च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया। घोररोषमहं मोक्ष्ये बलं धारय रावण॥२२॥ इत्युक्त्वोपररामाथ रामः कमललोचनः। एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः॥२३॥ श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव सुग्रीवश्च विभीषणः। एत एव समर्थास्ते लङ्कां नाशयितुं प्रभो॥२४॥ उत्पाट्य भस्मीकरणे सर्वे तिष्ठन्तु वानराः। तस्य यादग्बलं दृष्टं रूपं प्रहरणानि च॥२५॥ वधिष्यति पुरं सर्वमेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः। पश्य वानरसेनां तामसङ्खातां प्रपूरिताम्॥२६॥ गर्जन्ति वानरास्तत्र पश्य पर्वतसन्निभाः। न शक्यास्ते गणयितुं प्राधान्येन ब्रवीमि ते॥ २७॥

एष योऽभिमुखो लङ्कां नदंस्तिष्ठति वानरः। यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः॥२८॥ सुग्रीवसेनाधिपतिर्नीलो नामाग्निनन्दनः। एष पर्वतशृङ्गाभः पद्मिकञ्जल्कसन्निभः॥२९॥ स्फोटयत्यभिसंरब्धो लाङ्ग्लं च पुनः पुनः। युवराजोऽङ्गदो नाम वालिपुत्रोऽतिवीर्यवान्॥३०॥ येन दृष्टा जनकजा रामस्यातीववल्लभा। हनूमानेष विख्यातो हतो येन तवाऽऽत्मजः॥३१॥ श्वेतो रजतसङ्काशो महाबुद्धिपराकमः। तूर्णं सुग्रीवमागत्य पुनर्गच्छति वानरः॥३२॥ यस्त्वेष सिंहसङ्काशः पश्यत्यतुलविक्रमः। रम्भो नाम महासत्त्वो लङ्कां नाशयितुं क्षमः॥३३॥ एष पश्यति वै लङ्कां दिधक्षन्निव वानरः। शरभो नाम राजेन्द्र कोटियूथपनायकः॥ ३४॥ पनसश्च महावीर्यों मैन्दश्च द्विविदस्तथा। नलश्च सेतुकर्ताऽसौ विश्वकर्मसुतो बली॥३५॥

वानराणां वर्णने वा सङ्खाने वा क ईश्वरः। शूराः सर्वे महाकायाः सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः॥३६॥ शक्ताः सर्वे चूर्णयितुं लङ्कां रक्षोगणैः सह। एतेषां बलसङ्खानं प्रत्येकं विचम ते शृणु॥३७॥ एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च। तथा राह्वसहस्राणि तथाऽर्बुद्रातानि च॥३८॥ सुग्रीवसचिवानां ते बलमेतत्प्रकीर्तितम्। अन्येषां तु बलं नाहं वक्तं शक्तोऽस्मि रावण॥३९॥ रामो न मानुषः साक्षादादिनारायणः परः। सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका॥४०॥ ताभ्यामेव समुत्पन्नं जगत्स्थावरजङ्गमम्। तस्माद्रामश्च सीता च जगतस्तस्थुषश्च तौ॥४१॥ पितरौ पृथिवीपाल तयोर्वैरी कथं भवेत्। अजानता त्वयाऽऽनीता जगन्मातैव जानकी॥४२॥ क्षणनाशिनि संसारे शरीरे क्षणभङ्गरे। पञ्चभूतात्मके राजंश्चतुर्विशतितत्त्वके॥४३॥

मलमांसास्थिदुर्गन्धभूयिष्ठेऽहङ्कतालये कैवास्था व्यतिरिक्तस्य काये तव जडात्मके॥४४॥ यत्कृते ब्रह्महत्यादिपातकानि कृतानि च। भोगभोक्ता तु यो देहः स देहोऽत्र पतिष्यति॥४५॥ पुण्यपापे समायातो जीवेन सुखदुःखयोः। कारणे देहयोगादिनाऽऽत्मनः कुरुतोऽनिशम्॥४६॥ यावदेहोऽस्मि कर्ताऽस्मीत्यात्माऽहं कुरुतेऽवशः। अध्यासात्तावदेव स्याज्जन्मनाशादिसम्भवः॥४७॥ तस्मात्त्वं त्यज देहादावभिमानं महामते। आत्मातिऽनिर्मलः शुद्धो विज्ञानात्माऽचलोऽव्ययः॥४८॥ स्वाज्ञानवरातो बन्धं प्रतिपद्य विमुह्यति। तस्मात्त्वं शुद्धभावेन ज्ञात्वाऽऽत्मानं सदा स्मर॥४९॥ विरतिं भज सर्वत्र पुत्रदारगृहादिषु। निरयेष्वपि भोगः स्याच्छ्वशूकरतनावपि॥५०॥ देहं लब्ध्वा विवेकाढ्यं द्विजत्वं च विशेषतः।

तत्रापि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम्॥५१॥

को विद्वानात्मसात्कृत्वा देहं भोगानुगो भवेत्। अतस्त्वं ब्राह्मणो भूत्वा पौलस्त्यतनयश्च सन्॥५२॥

अज्ञानीव सदा भोगाननुधाविस किं मुधा। इतः परं वा त्यक्तवा त्वं सर्वसङ्गं समाश्रय॥५३॥

राममेव परात्मनं भक्तिभावेन सर्वदा। सीतां समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव॥५४॥

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं प्रयास्यसि। नो चेद्गमिष्यसेऽघोऽघः पुनरावृत्तिवर्जितः। अङ्गीकुरुष्य मद्वाक्यं हितमेव वदामि ते॥५५॥

सत्सङ्गतिं कुरु भजस्व हरि शरण्यम् श्रीराघवं मरकतोपलकान्तिकान्तम्। सीतासमेतमनिशं धृतचापबाणम् सुग्रीवलक्ष्मणविभीषणसेविताङ्किम् ॥५६॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा शुकमुखोद्गीतं वाक्यमज्ञाननाशनम्। रावणः क्रोधताम्राक्षो दहन्निव तमब्रवीत्॥१॥ अनुजीव्य सुदुर्बुद्धे गुरुवद्भाषसे कथम्। शासिताऽहं त्रिजगतां त्वं मां शिक्षन्न लज्जसे॥२॥ इदानीमेव हन्मि त्वां किन्तु पूर्वकृतं तव। रमरामि तेन रक्षामि त्वां यद्यपि वधोचितम्॥३॥ इतो गच्छ विमूढ त्वमेवं श्रोतुं न मे क्षमम्। महाप्रसाद इत्युक्तवा वेपमानो गृहं ययौ॥४॥ शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवित्तमः। वानप्रस्थविधानेन वने तिष्ठन् स्वकर्मकृत्॥५॥ देवानामभिवृद्धर्थं विनाशाय सुरद्विषाम्। चकार यज्ञविततिमविच्छिन्नां महामतिः॥६॥ राक्षसानां विरोधोऽभूच्छुको देवहितोद्यतः। वज्रदृंष्ट्र इति ख्यातस्तत्रैको राक्षसो महान्॥७॥

प्रेप्सुरातिष्ठच्छुकापकरणोद्यतः। अन्तरं कदाचिदागतोऽगस्त्यस्तस्याऽऽश्रमपदं मुनेः॥८॥ तेन सम्पूजितोऽगस्त्यो भोजनार्थं निमन्त्रितः। गते स्नातुं मुनौ कुम्भसम्भवे प्राप्य चान्तरम्॥९॥ अगस्त्यरूपधुक् सोऽपि राक्षसः शुकमब्रवीत्। यदि दास्यसि मे ब्रह्मन् भोजनं देहि सामिषम्॥१०॥ बहुकालं न भुक्तं मे मांसं छागाङ्गसम्भवम्। तथेति कारयामास मांसभोज्यं सविस्तरम्॥११॥ उपविष्टे मुनौ भोक्तं राक्षसोऽतीव सुन्दरम्। शुकभार्यावपुर्धृत्वा तां चान्तर्मोहयन् खलः॥१२॥ नरमांसं ददौ तस्मै सुपक्कं बहुविस्तरम्। दत्त्वैवान्तर्द्धे रक्षस्ततो दृष्ट्वा चुकोप सः॥ १३॥ अमेध्यं मानुषं मांसमगस्त्यः शुकमब्रवीत्। अभक्ष्यं मानुषं मांसं दत्तवानिस दुर्मते॥१४॥ मह्यं त्वं राक्षसो भूत्वा तिष्ठ त्वं मानुषाशनः। इति शप्तः शुको भीत्या प्राहागस्त्यं मुने त्वया॥१५॥

इदानीं भाषितं मेऽद्य मांसं देहीति विस्तरम्। तथैव दत्तं भो देव किं मे शापं प्रदास्यसि॥१६॥ श्रुत्वा शुकस्य वचनं मुहूर्तं ध्यानमास्थितः। ज्ञात्वा रक्षःकृतं सर्वं ततः प्राह शुकं सुधीः॥१७॥ तवापकारिणा सर्वं राक्षसेन कृतं त्विदम्। अविचार्यैव मे दत्तः शापस्ते मुनिसत्तम॥१८॥ तथाऽपि मे वचोऽमोघमेवमेव भविष्यति। राक्षसं वपुरास्थाय रावणस्य सहायकृत्॥१९॥ तिष्ठ तावद्यदा रामो दशाननवधाय हि। आगमिष्यति लङ्कायाः समीपं वानरैः सह॥२०॥ प्रेषितो रावणेन त्वं चारो भूत्वा रघूत्तमम्। दृष्ट्वा शापाद्विनिर्मुक्तो बोधियत्वा च रावणम्॥२१॥ तत्त्वज्ञानं ततो मुक्तः परं पदमवाप्स्यसि। इत्युक्तोऽगस्त्यमुनिना शुको ब्राह्मणसत्तमः॥२२॥ बभूव राक्षसः सद्यो रावणं प्राप्य संस्थितः। इदानीं चाररूपेण दृष्ट्वा रामं सहानुजम्॥२३॥

रावणं तत्त्वविज्ञानं बोधयित्वा पुनुर्द्रतम्। पूर्ववद्वाह्मणो भूत्वा स्थितो वैखानसैः सह॥२४॥ ततः समागमद्भुद्धो माल्यवान् राक्षसो महान्। बुद्धिमान्नीतिनिपुणो राज्ञो मातुः प्रियः पिता॥२५॥ प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशान्तेनान्तरात्मना। शृणु राजन् वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम्॥२६॥ यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा। तदादि पुर्यां दृश्यन्ते निमित्तानि दृशानन॥२७॥ घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदतः शृणु। खरस्तनितनिर्घोषा मेघा अतिभयङ्कराः॥२८॥ शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वदा। रुद्गित देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलन्ति च॥२९॥ कालिका पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसत्यय्रतः स्थिता। खरा गोषु प्रजायन्ते मूषका नकुलैः सह॥३०॥ मार्जारेण तु युद्धन्ति पन्नगा गरुडेन तु। करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः॥३१॥

कालो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते। एतान्यन्यानि दृश्यन्ते निमित्तान्युद्भवन्ति च॥३२॥

अतः कुलस्य रक्षार्थं शान्तिं कुरु दशानन। सीतां सत्कृत्य सधनां रामायाऽऽशु प्रयच्छ भोः॥३३॥

रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे। यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम्॥३४॥ तरन्ति भक्तिपूतान्तास्ततो रामो न मानुषः। भजस्व भक्तिभावेन रामं सर्वहृदालयम्॥३५॥ यद्यपि त्वं दुराचारो भक्त्या पूतो भविष्यसि। महाक्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे॥३६॥ तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः। न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः॥३७॥ मानवं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम्। समर्थं मन्यसे केन हीनं पित्रा मुनिप्रियम्॥३८॥

रामेण प्रेषितो नूनं भाषसे त्वमनर्गलम्। गच्छ वृद्धोऽसि बन्धुस्त्वं सोढं सर्वं त्वयोदितम्॥३९॥ इतो मत्कर्णपद्वीं दहत्येतद्वचस्तव। इत्युक्तवा सर्वसचिवैः सिहतः प्रस्थितस्तदा॥४०॥ प्रासादाग्रे समासीनः पश्चन् वानरसैनिकान्। युद्धायाऽऽयोजयत्सर्वराक्षसान् समुपस्थितान्॥४१॥ रामोऽपि धनुरादाय लक्ष्मणेन समाहृतम्। दृष्ट्वा रावणमासीनं कोपेन कलुषीकृतः॥४२॥ किरीटिनं समासीनं मित्रिभिः परिवृष्टितम्। श्वाराङ्कार्धनिभेनव बाणेनैकेन राघवः॥४३॥ श्वेतच्छत्रसहस्राणि किरीटद्शकं तथा। चिच्छेद् निमिषार्धेन तद्द्भुतमिवाभवत्॥४४॥

लिज्जितो रावणस्तूर्णं विवेश भवनं स्वकम्। आहूय राक्षसान् सर्वान् प्रहस्तप्रमुखान् खलः॥४५॥

वानरैः सह युद्धाय नोदयामास सत्वरः। ततो भेरीमृदङ्गाद्यैः पणवानकगोमुखैः॥४६॥ महिषोष्ट्रैः खरैः सिंहैर्द्वीपिभिः कृतवाहनाः। खङ्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः॥४७॥

लिक्षताः सर्वतो लङ्कां प्रतिद्वारमुपाययुः। तत्पूर्वमेव रामेण नोदिता वानरर्षभाः॥४८॥ उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि शिखराणि महान्ति च। तरूश्चोत्पाट्य विविधान् युद्धाय हरियूथपाः॥४९॥ प्रेक्षमाणा रावणस्य तान्यनीकानि भागशः। राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुद्दस्तदा॥५०॥ ते द्रुमेः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्रवङ्गमाः। ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः॥५१॥ कोटीशतयुताश्चान्ये रुरुधुर्नगरं भृशम्। आप्नवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः॥५२॥ रामो जयत्यतिबलो लक्ष्मणश्च महाबलः। राजा जयति सुग्रीवो राघवेणानुपालितः॥५३॥ इत्येवं घोषयन्तश्च समं युयुधिरेऽरिभिः। हनूमानङ्गदश्चैव कुमुदो नील एव च॥५४॥ नलश्च शरभश्चैव मैन्दो द्विविद एव च। जाम्बवान् दिधवऋश्च केसरी तार एव च॥५५॥

अन्ये च बिलनः सर्वे यूथपाश्च प्लवङ्गमाः। द्वाराण्युत्सुत्य लङ्कायाः सर्वतो रुरुधुर्भृशम्। तदा वृक्षेर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः॥५६॥

निजघ्वस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिताः। राक्षसाश्च तदा भीमा द्वारेभ्यः सर्वतो रुषा॥५७॥

निर्गत्य भिन्दिपालैश्च खङ्गैः शूलैः परश्वधैः। निजघ्नुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः॥५८॥

राक्षसांश्च तथा जघ्नुर्वानरा जितकाशिनः। तदा बभूव समरो मांसशोणितकर्दमः॥५९॥

रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः। ते हयेश्च गजेश्चेव रथैः काञ्चनसन्निभैः॥६०॥

रक्षोव्याघ्रा युयुधिरे नादयन्तो दिशो दश। राक्षसाश्च कपीन्द्राश्च परस्परजयैषिणः॥६१॥

राक्षसान् वानरा जघ्नुर्वानरांश्चैव राक्षसाः। रामेण विष्णुना दृष्टा हरयो दिविजांशजाः॥६२॥

बभूवुर्बेलिनो हृष्टास्तदा पीतामृता इव। सीताभिमर्श्रपापेन रावणेनाभिपालितान्॥६३॥ हतश्रीकान् हतबलान् राक्षसान् जघ्नुरोजसा। चतुर्थौशावशेषेण निहतं राक्षसं बलम्॥६४॥ स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादोऽथ दुष्ट्धीः। ब्रह्मदत्तवरः श्रीमानन्तर्धानं गतोऽसुरः॥६५॥ सर्वास्त्रकुशलो व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः। नानाविधानि शस्त्राणि वानरानीकमर्दयन्॥६६॥ ववर्ष शरजालानि तद्दुतमिवाभवत्। रामोऽपि मानयन् ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविद्ां वरः॥६७॥ क्षणं तृष्णीमुवासाथ दुद्शं पतितं बलम्। वानराणां रघुश्रेष्ठश्चकोपानलसन्निभः॥६८॥ चापमानय सौमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुरं क्षणात्। भरमीकरोमि मे पश्य बलमद्य रघूत्तम॥६९॥ मेघनादोऽपि तच्छुत्वा रामवाक्यमतन्द्रितः। तूर्णं जगाम नगरं मायया मायिकोऽसुरः॥७०॥

पतितं वानरानीकं दृष्ट्वा रामोऽतिदुःखितः। उवाच मारुतिं शीघ्रं गत्वा क्षीरमहोद्धिम्॥७१॥ तत्र द्रोणगिरिर्नाम दिव्यौषधिसमुद्भवः। तमानय द्भृतं गत्वा सञ्जीवय महामते॥७२॥ वानरौघान् महासत्त्वान् कीर्तिस्ते सुस्थिरा भवेत्। आज्ञाप्रमाणमित्युक्तवा जगामानिलनन्दनः॥७३॥ आनीय च गिरि सर्वान् वानरान् वानरर्षभः। जीवयित्वा पुनस्तत्र स्थापयित्वाऽऽययौ द्रुतम्॥७४॥ पूर्ववद्भेरवं नादं वानराणां बलौघतः। श्रुत्वा विस्मयमापन्नो रावणो वाक्यमब्रवीत्॥ ७५॥ राघवो मे महान् रात्रः प्राप्तो देवविनिर्मितः। हन्तुं तं समरे शीघ्रं गच्छन्तु मम यूथपाः॥७६॥ मन्त्रिणो बान्धवाः शूरा ये च मत्प्रियकाङ्क्षिणः। सर्वे गच्छन्तु युद्धाय त्वरितं मम शासनात्॥७७॥ ये न गच्छन्ति युद्धाय भीरवः प्राणविष्ठवात्। तान् हनिष्याम्यहं सर्वान् मच्छासनपराङ्मुखान्॥ ७८॥

तच्छुत्वा भयसन्त्रस्ता निर्जग्मू रणकोविदाः। अतिकायः प्रहस्तश्च महानादमहोदरौ॥७९॥

देवरात्रुर्निकुम्भश्च देवान्तकनरान्तकौ। अपरे बलिनः सर्वे ययुर्युद्धाय वानरैः॥८०॥

एते चान्ये च बहवः शूराः शतसहस्रशः। प्रविश्य वानरं सैन्यं ममन्थुर्बलदर्पिताः॥८१॥

भुशुण्डीभिन्दिपालैश्च बाणैः खङ्गैः परश्वधैः। अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुर्हरियूथपान्॥८२॥

ते पादपैः पर्वताग्रैर्नखद्ंष्ट्रेश्च मुष्टिभिः। प्राणैर्विमोचयामासुः सर्वराक्षसयूथपान्॥८३॥

रामेण निहताः केचित्सुग्रीवेण तथाऽपरे। हनूमता चाङ्गदेन लक्ष्मणेन महात्मना। यूथपैर्वानराणां ते निहताः सर्वराक्षसाः॥८४॥

रामतेजः समाविश्य वानरा बलिनोऽभवन्। रामशक्तिविहीनानामेवं शक्तिः कुतो भवेत्॥८५॥ सर्वेश्वरः सर्वमयो विधाता मायामनुष्यत्वविडम्बनेन । सदा चिदानन्दमयोऽपि रामो युद्धादिलीलां वितनोति मायाम्॥८६॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५॥

॥षष्ठः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा युद्धे बलं नष्टमतिकायमुखं महत्। रावणो दुःखसन्तप्तः कोधेन महताऽऽवृतः॥१॥

निधायेन्द्रजितं लङ्कारक्षणार्थं महाद्युतिः। स्वयं जगाम युद्धाय रामेण सह राक्षसः॥२॥

दिव्यं स्यन्दनमारुह्य सर्वशस्त्रास्त्रसंयुतम्। राममेवाभिदुद्राव राक्षसेन्द्रो महाबलः॥३॥

वानरान् बहुशो हत्वा बाणैराशीविषोपमैः। पातयामास सुग्रीवप्रमुखान् यूथनायकान्॥४॥ गदापाणिं महासत्त्वं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम्। उत्ससर्ज महाशक्तिं मयदत्तां विभीषणे॥५॥ तामापतन्तीमालोक्य विभीषणविघातिनीम्। दत्ताभयोऽयं रामेण वधार्हो नायमासुरः॥६॥ इत्युक्तवा लक्ष्मणो भीमं चापमादाय वीर्यवान्। विभीषणस्य पुरतः स्थितोऽकम्प इवाचलः॥७॥ राक्तिर्रुक्ष्मणतनुं विवेशामोघशक्तितः। यावन्त्यः शक्तयो लोके मायायाः सम्भवन्ति हि॥८॥ तासामाधारभूतस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः। मायाशक्त्या भवेत्किं वा शेषांशस्य हरेस्तनोः॥९॥ तथाऽपि मानुषं भावमापन्नस्तदनुव्रतः। मूर्च्छितः पतितो भूमौ तमादातुं दशाननः॥१०॥ हस्तैस्तोलियतुं शक्तो न बभूवातिविस्मितः। सर्वस्य जगतः सारं विराजं परमेश्वरम्॥११॥

कथं लोकाश्रयं विष्णुं तोलयेल्लघुराक्षसः। ग्रहीतुकामं सौमित्रिं रावणं वीक्ष्य मारुतिः॥१२॥ आजघानोरसि कुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना। तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्भवि॥१३॥ आस्यैश्च नेत्रश्रवणैरुद्वमन् रुधिरं बहु। विघूर्णमाननयनो रथोपस्थ उपाविशत्॥ १४॥ अथ लक्ष्मणमादाय हनूमान् रावणादितम्। आनयद्रामसामीप्यं बाहुभ्यां परिगृह्य तम्॥१५॥ हनूमतः सुहृत्त्वेन भक्त्या च परमेश्वरः। लघुत्वमगमदेवो गुरूणां गुरुरप्यजः॥१६॥ सा शक्तिरपि तं त्यक्तवा ज्ञात्वा नारायणांशजम्। रावणस्य रथं प्रागाद्रावणोऽपि शनैस्ततः॥१७॥ संज्ञामवाप्य जग्राह बाणासनमथो रुषा। राममेवाभिदुद्राव दृष्ट्वा रामोऽपि तं क्रुधा॥ १८॥ आरुह्य जगतां नाथो हनूमन्तं महाबलम्। रथस्थं रावणं दृष्ट्वा अभिदुद्राव राघवः॥१९॥

ज्याशब्दमकरोत्तीवं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम्। रामो गम्भीरया वाचा राक्षसेन्द्रमुवाच ह॥२०॥ राक्षसाधम तिष्ठाद्य क गमिष्यसि मे पुरः। कृत्वाऽपराधमेवं मे सर्वत्र समदर्शिनः॥२१॥ येन बाणेन निहता राक्षसास्ते जनालये। तेनैव त्वां हनिष्यामि तिष्ठाद्य मम गोचरे॥२२॥ श्रीरामस्य वचः श्रुत्वा रावणो मारुतात्मजम्। वहन्तं राघवं सङ्खे शरैस्तीक्ष्णैरताडयत्॥२३॥ हतस्यापि शरेस्तीक्ष्णैर्वायुसूनोः स्वतेजसा। व्यवर्धत पुनस्तेजो ननर्द च महाकपिः॥२४॥ ततो दृष्ट्वा हनूमन्तं सव्रणं रघुसत्तमः। क्रोधमाहारयामास कालरुद्र इवापरः॥२५॥ साश्वं रथं ध्वजं सूतं शस्त्रोघं धनुरञ्जसा। छत्रं पताकां तरसा चिच्छेद शितसायकैः॥२६॥ ततो महाशरेणाशु रावणं रघुसत्तमः। विव्याध वज्रकल्पेन पाकारिरिव पर्वतम्॥२७॥

रामबाणहतो वीरश्चचाल च मुमोह च। हस्तान्निपतितश्चापस्तं समीक्ष्य रघूत्तमः॥ २८॥ अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किरीटं रविप्रभम्। अनुजानामि गच्छ त्वमिदानीं बाणपीडितः॥२९॥ प्रविश्य लङ्कामाश्वास्य श्वः पश्यसि बलं मम। रामबाणेन संविद्धो हतदपौंऽथ रावणः॥३०॥ महत्या लज्जया युक्तो लङ्कां प्राविशदातुरः। रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मूर्च्छितं पतितं भुवि॥३१॥ मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलयाऽनुशुशोच ह। ततः प्राह हनूमन्तं वत्स जीवय लक्ष्मणम्॥३२॥ महौषधीः समानीय पूर्ववद्वानरानि। तथेति रघवेणोक्तो जगामाऽऽशु महाकपिः॥३३॥ हनूमान् वायुवेगेन क्षणात्तीर्त्वा महोद्धिम्। एतस्मिन्नन्तरे चारा रावणाय न्यवेदयन्॥३४॥ रामेण प्रेषितो देव हनूमान् क्षीरसागरम्। गतो नेतुं लक्ष्मणस्य जीवनार्थं महौषधीः॥३५॥

श्रुत्वा तच्चारवचनं राजा चिन्तापरोऽभवत्। जगाम रात्रावेकाकी कालनेमिगृहं क्षणात्॥३६॥ गृहागतं समालोक्य रावणं विस्मयान्वितः। कालनेमिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्भयविह्वलः। अर्घ्यादिकं ततः कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः॥३७॥ किं ते करोमि राजेन्द्र किमागमनकारणम्। कालनेमिमुवाचेदं रावणो दुःखपीडितः॥३८॥ ममापि कालवशतः कष्टमेतदुपस्थितम्। मया राक्त्या हतो वीरो लक्ष्मणः पतितो भुवि॥३९॥ तं जीवयितुमानेतुमोषधीर्हनुमान् गतः। यथा तस्य भवेद्विघ्नस्तथा कुरु महामते॥४०॥ मायया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम्। कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वैहि मन्दिरे॥४१॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा कालनेमिरुवाच तम्। रावणेश वचो मेऽद्य शृणु धारय तत्त्वतः॥४२॥ प्रियं ते करवाण्येव न प्राणान् धारयाम्यहम्। मारीचस्य यथाऽरण्ये पुराऽभून्मृगरूपिणः॥४३॥

तथैव मे न सन्देहो भविष्यति दशानन। हताः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा राक्षसाश्च ते॥४४॥ घातियत्वाऽसुरकुलं जीवितेनापि किं तव। राज्येन वा सीतया वा किं देहेन जडात्मना॥४५॥ सीतां प्रयच्छ रामाय राज्यं देहि विभीषणे। वनं याहि महाबाहो रम्यं मुनिगणाश्रयम्॥४६॥

स्नात्वा प्रातः शुभजले कृत्वा सन्ध्यादिकाः कियाः। तत एकान्तमाश्रित्य सुखासनपरिग्रहः॥४७॥

विसृज्य सर्वतः सङ्गमितरान् विषयान् बहिः। बहिःप्रवृत्ताक्षगणं रानैः प्रत्यक् प्रवाहय॥४८॥ प्रकृतेर्भिन्नमात्मानं विचारय सदाऽनघ। चराचरं जगत्कृत्स्नं देहबुद्धीन्द्रियादिकम्॥४९॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दृश्यते श्रूयते च यत्। सेषा प्रकृतिरित्युक्ता सेव मायेति कीर्तिता॥५०॥ सर्गस्थितिविनाशानां जगद्वृक्षस्य कारणम्। लोहितश्वेतकृष्णादि प्रजाः सृजित सर्वदा॥५१॥

कामकोधादिपुत्राद्यान् हिंसात्रष्णादिकन्यकाः। मोहयन्त्यनिशं देवमात्मानं स्वैर्गुणैर्विभुम्॥५२॥ कर्तृत्वभोक्तत्वमुखान् स्वगुणानात्मनीश्वरे। आरोप्य स्ववशं कृत्वा तेन क्रीडित सर्वदा॥५३॥ शुद्धोऽप्यात्मा यया युक्तः पश्यतीव सदा बहिः। विस्मृत्य च स्वमात्मानं मायागुणविमोहितः॥५४॥ यदा सद्गरुणा युक्तो बोध्यते बोधरूपिणा। निवृत्तदृष्टिरात्मानं पश्यत्येव सदा स्फुटम्॥५५॥ जीवन्मुक्तः सदा देही मुच्यते प्राकृतैर्गुणैः। त्वमप्येवं सदाऽऽत्मानं विचार्य नियतेन्द्रियः॥५६॥ प्रकृतेरन्यमात्मानं ज्ञात्वा मुक्तो भविष्यसि। ध्यातुं यद्यसमर्थोऽसि सगुणं देवमाश्रय॥५७॥ हृत्पद्मकर्णिके स्वर्णपीठे मणिगणान्विते। मृदुश्रक्ष्णतरे तत्र जानक्या सह संस्थितम्॥५८॥ वीरासनं विशालाक्षं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम्। किरीटहारकेयूरकौस्तुभादिभिरन्वितम् ॥५९॥

नूपुरैः कटकैर्भान्तं तथैव वनमालया। लक्ष्मणेन धनुर्द्धन्द्वकरेण परिसेवितम्॥६०॥

एवं ध्यात्वा सदाऽऽत्मानं रामं सर्वहृदि स्थितम्। भक्त्या परमया युक्तो मुच्यते नात्र संशयः॥६१॥

शृणु वै चरितं तस्य भक्तैर्नित्यमनन्यधीः। एवं चेत्कृतपूर्वाणि पापानि च महान्त्यपि। क्षणादेव विनश्यन्ति यथाऽग्नेस्तूलराशयः॥६२॥

> भजस्व रामं परिपूर्णमेकम् विहाय वैरं निजभक्तियुक्तः। हृदा सदा भावितभावरूपम् अनामरूपं पुरुषं पुराणम्॥६३॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे षष्ठः सर्गः॥ ६॥

॥सप्तमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

कालनेमिवचः श्रुत्वा रावणोऽमृतसन्निभम्। जज्वाल कोधताम्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निमत्॥१॥ निहन्मि त्वां दुरात्मानं मच्छासनपराङ्मुखम्। परैः किञ्चिद्गहीत्वा त्वं भाषसे रामकिङ्करः॥२॥ कालनेमिरुवाचेदं रावणं देव किं क्रधा। न रोचते मे वचनं यदि गत्वा करोमि तत्॥३॥ इत्युक्तवा प्रययौ शीघ्रं कालनेमिर्महासुरः। नोदितो रावणेनैव हनूमद्विघ्नकारणात्॥४॥ स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत्। तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः खलः॥५॥ गच्छतो मार्गमासाद्य वायुसूनोर्महात्मनः। ततो गत्वा दुद्शीथ हनूमानाश्रमं शुभम्॥६॥ चिन्तयामास मनसा श्रीमान् पवननन्दनः। पुरा न दृष्टमेतन्मे मुनिमण्डलमुत्तमम्॥७॥ मार्गो विभ्रंशितो वा मे भ्रमो वा चित्तसम्भवः। यद्वाऽऽविरुयाऽऽश्रमपदं दृष्ट्वा मुनिमशेषतः॥८॥

पीत्वा जलं ततो यामि द्रोणाचलमनुत्तमम्। इत्युक्तवा प्रविवेशाथ सर्वतो योजनायतम्॥९॥ आश्रमं कदलीशालखर्जूरपनसादिभिः। समावृतं पक्रफलेर्नम्रशाखेश्च पाद्पैः॥१०॥ वैरभावविनिर्मुक्तं शुद्धं निर्मललक्षणम्। तस्मिन्महाश्रमे रम्ये कालनेमिः स राक्षसः॥११॥ इन्द्रयोगं समास्थाय चकार शिवपूजनम्। हनूमानभिवाद्याऽऽह गौरवेण महासुरम्॥१२॥ भगवन् रामदूतोऽहं हनूमान्नाम नामतः। रामकार्येण महता क्षीराब्धिं गन्तुमुद्यतः॥१३॥ तृषा मां बाधते ब्रह्मसुद्कं कुत्र विद्यते। यथेच्छं पातुमिच्छामि कथ्यतां मे मुनीश्वर॥१४॥ तच्छुत्वा मारुतेर्वाक्यं कालनेमिस्तमबवीत्। कमण्डलुगतं तोयं मम त्वं पातुमर्हसि॥१५॥ भुङ्ख चेमानि पक्वानि फलानि तदनन्तरम्। निवसस्व सुखेनात्र निद्रामेहि त्वरास्तु मा॥१६॥

भूतं भव्यं भविष्यं च जानामि तपसा स्वयम्। उत्थितो लक्ष्मणः सर्वे वानरा रामवीक्षिताः॥१७॥ तच्छुत्वा हनुमानाह कमण्डलुजलेन मे। न शाम्यत्यधिका तृष्णा ततो दुर्शय मे जलम्॥१८॥ तथेत्याज्ञापयामास वटुं मायाविकल्पितम्। वटो दर्शय विस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम्॥१९॥ निमील्य चाक्षिणी तोयं पीत्वाऽऽगच्छ ममान्तिकम्। उपदेक्ष्यामि ते मन्त्रं येन द्रक्ष्यसि चौषधीः॥२०॥ तथेति दर्शितं शीघ्रं वटुना सिललाशयम्। प्रविश्य हनुमांस्तोयमपिबन्मीलितेक्षणः॥२१॥ ततश्चाऽऽगत्य मकरी महामाया महाकपिम्। अग्रसत्तं महावेगान्मारुतिं घोररूपिणी॥२२॥ ततो दुद्रो हनुमान् यसन्तीं मकरीं रुषा। दारयामास हस्ताभ्यां वदनं सा ममार ह॥२३॥ ततोऽन्तरिक्षे दृहशे दिव्यरूपधराङ्गना। धान्यमालीति विख्याता हनूमन्तमथाब्रवीत्॥२४॥

त्वत्प्रसादादहं शापाद्विमुक्ताऽस्मि कपीश्वर। शप्ताऽहं मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरे॥२५॥ आश्रमे यस्तु ते दृष्टः कालनेमिर्महासुरः। रावणप्रहितो मार्गे विघ्नं कर्तुं तवानघ॥२६॥ मुनिवेषधरो नासौ मुनिविप्रविहिंसकः। जिह दुष्टं गच्छ शीघ्रं द्रोणाचलमनुत्तमम्॥२७॥ गच्छाम्यहं ब्रह्मलोकं त्वत्स्पर्शाद्धतकल्मषा। इत्युक्तवा सा ययौ स्वर्गं हनूमानप्यथाऽऽश्रमम्॥ २८॥ आगतं तं समालोक्य कालनेमिरभाषत। किं विलम्बेन महता तव वानरसत्तम॥२९॥ गृहाण मत्तो मन्त्रांस्त्वं देहि मे गुरुदक्षिणाम्। इत्युक्तो हनुमान्मुष्टिं दढं बद्धाऽऽह राक्षसम्॥३०॥ गृहाण दक्षिणामेतामित्युत्तवा निजघान तम्। विसृज्य मुनिवेषं स कालनेमिर्महासुरः॥३१॥ युयुधे वायुपुत्रेण नानामायाविधानतः। महामायिकदूतोऽसौ हनूमान्मायिनां रिपुः॥३२॥

जघान मुष्टिना शीर्ष्णि भग्नमूर्धा ममार सः। ततः क्षीरनिधिं गत्वा दृष्ट्वा द्रोणं महागिरिम्॥३३॥ अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वरः। गृहीत्वा वायुवेगेन गत्वा रामस्य सन्निधिम्॥३४॥ उवाच हुनुमान् राममानीतोऽयं महागिरिः। यद्युक्तं कुरु देवेश विलम्बो नात्र युज्यते॥३५॥ श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामः सन्तुष्टमानसः। गृहीत्वा चौषधीः शीघ्रं सुषेणेन महामितः॥३६॥ चिकित्सां कारयामास लक्ष्मणाय महात्मने। ततः सुप्तोत्थित इव बुद्धा प्रोवाच लक्ष्मणः॥३७॥ तिष्ठ तिष्ठ क गन्तासि हन्मीदानीं दशानन। इति ब्रुवन्तमालोक्य मूर्ध्यवघ्राय राघवः॥३८॥ मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे। निरामयं प्रपञ्चामि लक्ष्मणं भ्रातरं मम॥३९॥ इत्युक्तवा वानरैः सार्धं सुग्रीवेण समन्वितः। विभीषणमतेनैव युद्धाय समवस्थितः॥४०॥

पाषाणेः पादपेश्चेव पर्वताग्रेश्च वानराः। युद्धायाभिमुखा भूत्वा ययुः सर्वे युयुत्सवः॥४१॥ रावणो विव्यथे रामबाणैर्विद्धो महासुरः। मातङ्ग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः॥४२॥ अभिभूतोऽगमद्राजा राघवेण महात्मना। सिंहासने समाविदय राक्षसानिदमब्रवीत्॥४३॥ मानुषेणैव मे मृत्युमाह पूर्व पितामहः। मानुषो हि न मां हन्तुं शक्तोऽस्ति भुवि कश्चन॥४४॥ ततो नारायणः साक्षान्मानुषोऽभून्न संशयः। रामो दाशरथिर्भूत्वा मां हन्तुं समुपस्थितः॥४५॥ अनरण्येन यत्पूर्वं शप्तोऽहं राक्षसेश्वर। उत्पत्स्यते च मद्वंशे परमात्मा सनातनः॥४६॥ तेन त्वं पुत्रपौत्रेश्च बान्धवेश्च समन्वितः। हनिष्यसे न सन्देह इत्युक्तवा मां दिवं गतः॥४७॥ स एव रामः सञ्जातो मदर्थे मां हनिष्यति। कुम्भकर्णस्तु मूढात्मा सदा निद्रावशं गतः॥४८॥

तं विबोध्य महासत्त्वमानयन्तु ममान्तिकम्। इत्युक्तास्ते महाकायास्तूर्णं गत्वा तु यत्नतः॥४९॥ विबोध्य कुम्भश्रवणं निन्यू रावणसन्निधिम्। नमस्कृत्य स राजानमासनोपरि संस्थितः॥५०॥ तमाह रावणो राजा भ्रातरं दीनया गिरा। कुम्भकर्ण निबोध त्वं महत्कष्टमुपस्थितम्॥५१॥ रामेण निहताः शूराः पुत्राः पौत्राश्च बान्धवाः। किं कर्तव्यमिदानीं मे मृत्युकाल उपस्थिते॥५२॥ एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली। समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्ति॥५३॥ ये राक्षसा मुख्यतमास्ते हता वानरैर्युधि। वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कदाचन॥५४॥ नाशयस्व महाबाहो यदर्थं परिबोधितः। भ्रातुरर्थे महासत्त्व कुरु कर्म सुदुष्करम्॥५५॥ श्रुत्वा तद्रावणेन्द्रस्य वचनं परिदेवितम्। कुम्भकर्णो जहासोचैर्वचनं चेदमब्रवीत्॥५६॥

पुरा मन्त्रविचारे ते गदितं यन्मया नृप। तद्य त्वामुपगतं फलं पापस्य कर्मणः॥५७॥ पूर्वमेव मया प्रोक्तो रामो नारायणः परः। सीता च योगमायेति बोधितोऽपि न बुध्यसे॥५८॥ एकदाऽहं वने सानौ विशालायां स्थितो निशि। दृष्टो मया मुनिः साक्षान्नारदो दिव्यदर्शनः॥५९॥ तमब्रवं महाभाग कुतो गन्तासि मे वद्। इत्युक्तो नारदः प्राह देवानां मन्त्रणे स्थितः॥६०॥ तत्रोत्पन्नमुदन्तं ते वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः। युवाभ्यां पीडिता देवाः सर्वे विष्णुमुपागताः॥६१॥ ऊचुस्ते देवदेवेशं स्तुत्वा भक्त्या समाहिताः। जिह रावणमक्षोभ्यं देव त्रैलोक्यकण्टकम्॥६२॥ मानुषेण मृतिस्तस्य कल्पिता ब्रह्मणा पुरा। अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जिह रावणकण्टकम्॥६३॥ तथेत्याह महाविष्णुः सत्यसङ्कल्प ईश्वरः। जातो रघुकुले देवो राम इत्यभिविश्रुतः॥६४॥

स हनिष्यति वः सर्वानित्युक्तवा प्रययौ मुनिः। अतो जानीहि रामं त्वं परं ब्रह्म सनातनम्॥६५॥ त्यज वैरं भजस्वाद्य मायामानुषविग्रहम्। भजतो भक्तिभावेन प्रसीद्ति रघूत्तमः॥६६॥ भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी। भक्तिहीनेन यत्किञ्चित्कृतं सर्वमसत्समम्॥६७॥ अवताराः सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः। तेषां सहस्रसदशो रामो ज्ञानमयः शिवः॥६८॥ रामं भजन्ति निपुणा मनसा वचसाऽनिशम्। अनायासेन संसारं तीर्त्वा यान्ति हरेः पदम्॥६९॥ ये राममेव सततं भुवि शुद्धसत्त्वा ध्यायन्ति तस्य चरितानि पठन्ति सन्तः। मुक्तास्त एव भवभोगमहाहिपाशैः सीतापतेः पदमनन्तसुखं प्रयान्ति॥७०॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः॥७॥

॥ अष्टमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा भ्रुकुटीविकटाननः। द्शयीवो जगादेदमासनादुत्पतन्निव॥१॥ त्वमानीतो न मे ज्ञानबोधनाय सुबुद्धिमान्। मया कृतं समीकृत्य युध्यस्व यदि रोचते॥२॥ नो चेद्गच्छ सुषुप्त्यर्थं निद्रा त्वां बाधतेऽधुना। रावणस्य वचः श्रुत्वा कुम्भकर्णो महाबलः॥३॥ रुष्टोऽयमिति विज्ञाय तूर्णं युद्धाय निर्ययौ। स लङ्घियत्वा प्राकारं महापर्वतसन्निभः॥४॥ निर्ययौ नगरात्तूर्णं भीषयन् हरिसैनिकान्। स ननाद महानादं समुद्रमभिनाद्यन्॥५॥ वानरान् कालयामास बाहुभ्यां भक्षयन् रुषा। कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा सपक्षमिव पर्वतम्॥६॥ दुद्रवुर्वानराः सर्वे कालान्तकमिवाखिलाः। भ्रमन्तं हरिवाहिन्यां मुद्गरेण महाबलम्॥७॥

कालयन्तं हरीन् वेगाद्भक्षयन्तं समन्ततः। चूर्णयन्तं मुद्गरेण पाणिपादैरनेकधा॥८॥ क्रम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा गदापाणिर्विभीषणः। ननाम चरणं तस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य बुद्धिमान्॥९॥ विभीषणोऽहं भ्रातुर्मे द्यां कुरु महामते। रावणस्तु मया भ्रातर्बहुधा परिबोधितः॥१०॥ सीतां देहीति रामाय रामः साक्षाज्जनार्दनः। न शृणोति च मां हन्तुं खङ्गमुद्यम्य चोक्तवान्॥११॥ धिक् त्वां गच्छेति मां हत्वा पदा पापिभिरावृतः। चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं रामं शरणमागतः॥१२॥ तच्छुत्वा कुम्भकर्णोऽपि ज्ञात्वा भ्रातरमागतम्। समालिङ्य च वत्स त्वं जीव रामपदाश्रयात्॥१३॥ कुलसंरक्षणार्थाय राक्षसानां हिताय च। महाभागवतोऽसि त्वं पुरा मे नारदाच्छ्रुतम्॥१४॥ गच्छ तात ममेदानीं दृश्यते न च किञ्चन। मदीयो वा परो वाऽपि मदमत्तविलोचनः॥१५॥

इत्युक्तोऽश्रुमुखो भ्रातुश्चरणावभिवन्च सः। रामपार्श्वमुपागत्य चिन्तापर उपस्थितः॥१६॥ कुम्भकर्णोऽपि हस्ताभ्यां पादाभ्यां पेषयन् हरीन्। चचार वानरीं सेनां कालयन् गन्धहस्तिवत्॥१७॥ दृष्ट्वा तं राघवः कुद्धो वायव्यं शस्त्रमाद्रात्। चिक्षेप कुम्भकर्णाय तेन चिच्छेद रक्षसः॥१८॥ समुद्गरं दक्षहस्तं तेन घोरं ननाद सः। स हस्तः पतितो भूमावनेकानर्दयन् कपीन्॥१९॥ पर्यन्तमाश्रिताः सर्वे वानरा भयवेपिताः। रामराक्षसयोर्युद्धं पश्यन्तः पर्यवस्थिताः॥२०॥ कुम्भकर्णिरेछन्नहस्तः शालमुद्यम्य वेगतः। समरे राघवं हन्तुं दुद्राव तमथोऽच्छिनत्॥२१॥ शालेन सहितं वामहस्तमैन्द्रेण राघवः। छिन्नबाहुमथायान्तं नर्दन्तं वीक्ष्य राघवः॥२२॥ द्वावर्धचन्द्रौ निशितावादायास्य पदद्वयम्। चिच्छेद पतितौ पादौ लङ्काद्वारि महास्वनौ॥२३॥

निकृत्तपाणिपादोऽपि कुम्भकर्णोऽतिभीषणः। वडवामुखवद्वऋं व्यादाय रघुनन्दनम्॥२४॥ अभिदुद्राव निनदन् राहुश्चन्द्रमसं यथा। अपूरयच्छिताग्रैश्च सायकैस्तद्रघूत्तमः॥२५॥ शरपूरितवक्रोऽसौ चुक्रोशातिभयङ्करः। अथ सूर्यप्रतीकाशमैन्द्रं शरमनुत्तमम्॥२६॥ वज्राशनिसमं रामश्रिक्षेपासुरमृत्यवे। स तत्पर्वतसङ्काशं स्फुरत्कुण्डलदृष्ट्रकम्॥२७॥ चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरो वृत्रमिवाशनिः। तच्छिरः पतितं लङ्काद्वारि कायो महोदधौ॥२८॥ शिरोऽस्य रोधयद्वारं कायो नक्राद्यचूर्णयत्। ततो देवाः सऋषयो गन्धर्वाः पन्नगाः खगाः॥२९॥ सिद्धा यक्षा गृह्यकाश्च अप्सरोभिश्च राघवम्। कुसुमासारैर्वर्षन्तश्चाभिनन्दिताः॥३०॥ आजगाम तदा रामं द्र्ष्टुं देवमुनीश्वरः। नारदो गगनात्तुर्णं स्वभासा भासयन् दिशः॥३१॥

रामिनन्दीवरश्याममुदाराङ्गं धनुर्धरम्। ईषत्ताम्रविशालाक्षमैन्द्रास्त्राञ्चितबाहुकम्॥३२॥ दयार्द्रदृष्ट्या पश्यन्तं वानराञ्छरपीडितान्। दृष्ट्वा गद्भदया वाचा भक्त्या स्तोतुं प्रचक्रमे॥३३॥

नारद उवाच

देवदेव जगन्नाथ परमात्मन् सनातन। नारायणाखिलाधार विश्वसाक्षिन्नमोऽस्तु ते॥३४॥

विशुद्धज्ञानरूपोऽपि त्वं लोकानतिवश्चयन्। मायया मनुजाकारः सुखदुःखादिमानिव॥३५॥

त्वं मायया गुह्यमानः सर्वेषां हृदि संस्थितः। स्वयञ्ज्योतिः स्वभावस्त्वं व्यक्त एवामलात्मनाम्॥३६॥

उन्मीलयन् सृजस्येतन्नेत्रे राम जगत्त्रयम्। उपसंहियते सर्वं त्वया चक्षुर्निमीलनात्॥३७॥

यस्मिन् सर्वमिदं भाति यतश्चैतचराचरम्। यस्मान्न किश्चिल्लोकेऽस्मिंस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः॥३८॥

प्रकृतिं पुरुषं कालं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम्। यं जानन्ति मुनिश्रेष्ठास्तस्मै रामाय ते नमः॥३९॥ विकाररहितं शुद्धं ज्ञानरूपं श्रुतिर्जगौ। त्वां सर्वजगदाकारमूर्तिं चाप्याह सा श्रुतिः॥४०॥ विरोधो दृश्यते देव वैदिको वेदवादिनाम्। निश्चयं नाधिगच्छन्ति त्वत्प्रसादं विना बुधाः॥४१॥ मायया क्रीडतो देव न विरोधो मनागपि। रिंमजालं रवेर्यद्वहृश्यते जलवदुभ्रमात्॥४२॥ भ्रान्तिज्ञानात्तथा राम त्विय सर्वं प्रकल्प्यते। मनसोऽविषयो देव रूपं ते निर्गुणं परम्॥४३॥ कथं दृश्यं भवेदेव दृश्याभावे भजेत्कथम्। अतस्तवावतारेषु रूपाणि निपुणा भुवि॥४४॥ भजन्ति बुद्धिसम्पन्नास्तरन्त्येव भवार्णवम्। कामक्रोधादयस्तत्र बहवः परिपन्थिनः॥४५॥ भीषयन्ति सदा चेतो मार्जारा मूषकं यथा। त्वन्नाम स्मरतां नित्यं त्वद्रूपमपि मानसे॥४६॥

त्वत्पूजानिरतानां ते कथामृतपरात्मनाम्। त्वद्धक्तसङ्गिनां राम संसारो गोष्पदायते॥४७॥ अतस्ते सगुणं रूपं ध्यात्वाऽहं सर्वदा हृदि। मुक्तश्चरामि लोकेषु पूज्योऽहं सर्वदैवतैः॥४८॥ राम त्वया महत्कार्यं कृतं देवहितेच्छया। क्रम्भकर्णवधेनाद्य भूभारोऽयं गतः प्रभो॥४९॥ श्वो हनिष्यति सौमित्रिरिन्द्रजेतारमाहवे। हनिष्यसेऽथ राम त्वं परश्वो दशकन्धरम्॥५०॥ पश्यामि सर्वं देवेश सिद्धैः सह नभोगतः। अनुगृह्णीष्य मां देव गमिष्यामि सुरालयम्॥५१॥ इत्युक्तवा राममामन्त्र्य नारदो भगवानृषिः। ययौ देवैः पूज्यमानो ब्रह्मलोकमकल्मषम्॥५२॥ भ्रातरं निहतं श्रुत्वा कुम्भकर्णं महाबलम्। रावणः शोकसन्तप्तो रामेणाक्किष्टकर्मणा॥५३॥ मुर्च्छितः पतितो भूमावुत्थाय विललाप ह। पितृव्यं निहतं श्रुत्वा पितरं चातिविह्नलम्॥५४॥

इन्द्रजित्प्राह शोकार्तं त्यज शोकं महामते। व्येतु ते दुःखमखिलं स्वस्थो भव महीपते॥५५॥ सर्वं समीकरिष्यामि हनिष्यामि च वै रिपृन्। गत्वा निकुम्भिलां सद्यस्तर्पयित्वा हुताशनम्॥५६॥ लब्ध्वा रथादिकं तस्मादजेयोऽहं भवाम्यरेः। इत्युक्तवा त्वरितं गत्वा निर्दिष्टं हवनस्थलम्॥५७॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः। निकुम्भिलास्थले मौनी हवनायोपचक्रमे॥५८॥ विभीषणोऽथ तच्छुत्वा मेघनादस्य चेष्टितम्। प्राह रामाय सकलं होमारम्भं दुरात्मनः॥५९॥ समाप्यते चेद्धोमोऽयं मेघनादस्य दुर्मतेः। तदाऽजेयो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः॥६०॥ अतः शीघ्रं लक्ष्मणेन घातियष्यामि रावणिम्। आज्ञापय मया साधैं लक्ष्मणं बलिनां वरम। हनिष्यति न सन्देहो मेघनादं तवानुजः॥६१॥ श्रीरामचन्द्र उवाच

अहमेवागमिष्यामि हन्तुमिन्द्रजितं रिपुम्। आग्नेयेन महास्त्रेण सर्वराक्षसघातिना॥६२॥ विभीषणोऽपि तं प्राह नासावन्यैर्निहन्यते। यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः॥६३॥

तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणाऽस्य दुरात्मनः। लक्ष्मणस्तु अयोध्याया निर्गम्यायात्त्वया सह॥६४॥

तदादि निद्राहारादीन्न जानाति रघूत्तम। सेवार्थं तव राजेन्द्र ज्ञातं सर्वमिदं मया॥६५॥

तदाज्ञापय देवेश लक्ष्मणं त्वरया मया। हनिष्यति न सन्देहः शेषः साक्षाद्धराधरः॥६६॥

त्वमेव साक्षाज्जगतामधीशो नारायणो लक्ष्मण एव शेषः। युवां धराभारनिवारणार्थम् जातौ जगन्नाटकसूत्रधारौ॥६७॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे अष्टमः सर्गः॥८॥

॥ नवमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणवचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत्। जानामि तस्य रौद्रस्य मायां कृत्स्नां विभीषण॥१॥ स हि ब्रह्मास्त्रविच्छूरो मायावी च महाबलः। जानामि लक्ष्मणस्यापि स्वरूपं मम सेवनम्॥२॥ ज्ञात्वैवासमहं तृष्णीं भविष्यत्कार्यगौरवात्। इत्युक्तवा लक्ष्मणं प्राह रामो ज्ञानवतां वरः॥३॥ गच्छ लक्ष्मण सैन्येन महता जिह रावणिम्। हनूमत्प्रमुखैः सर्वैर्यूथपैः सह लक्ष्मण॥४॥ जाम्बवानृक्षराजोऽयं सह सैन्येन संवृतः। विभीषणश्च सचिवैः सह त्वामभियास्यति॥५॥ अभिज्ञस्तस्य देशस्य जानाति विवराणि सः। रामस्य वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः॥६॥ जग्राह कार्मुकं श्रेष्ठमन्यद्गीमपराक्रमः। रामपादाम्बुजं स्पृष्ट्वा हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत्॥७॥

अद्य मत्कार्मुकान्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम्। गमिष्यन्ति हि पातालं स्नातुं भोगवतीजले॥८॥ एवमुत्तवा स सौमित्रिः परिक्रम्य प्रणम्य तम्। इन्द्रजिन्निधनाकाङ्की ययौ त्वरितविक्रमः॥९॥ वानरैर्बहुसाहस्रैर्हनूमान् पृष्ठतोऽन्वगात्। विभीषणश्च सहितो मन्त्रिभिस्त्वरितं ययौ॥१०॥ जाम्बवत्प्रमुखा ऋक्षाः सौमित्रिं त्वरयान्वयुः। गत्वा निकुम्भिलादेशं लक्ष्मणो वानरैः सह॥११॥ अपश्यद्वलसङ्घातं दूराद्राक्षससङ्कलम्। धनुरायम्य सौमित्रिर्यत्तोऽभूद्भरिविक्रमः॥१२॥ अङ्गदेन च वीरेण जाम्बवान् राक्षसाधिपः। तदा विभीषणः प्राह सौमित्रिं पश्य राक्षसान्॥१३॥ यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते। अस्यानीकस्य महतो भेदने यत्नवान् भव॥१४॥ राक्षसेन्द्रसूतोऽप्यस्मिन् भिन्ने दृश्यो भविष्यति। अभिद्रवाऽऽञ्ज यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते॥१५॥ जिह वीर दुरात्मानं हिंसापरमधार्मिकम्। विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्ष्मणः॥१६॥ ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति।

पाषाणैः पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च हरियूथपाः॥१७॥

निर्जघ्नुः सर्वतो दैत्यांस्तेऽपि वानरयूथपान्। परश्वधेः शितैर्बाणैरसिभिर्यष्टितोमरैः॥१८॥ निर्जघ्नुर्वानरानीकं तदा शब्दो महानभूत्। स सम्प्रहारस्तुमुलः सञ्जज्ञे हरिरक्षसाम्॥१९॥

इन्द्रजित्स्वबलं सर्वमर्घमानं विलोक्य सः। निकुम्भिलां च होमं च त्यक्तवा शीघ्रं विनिर्गतः॥२०॥

रथमारुह्य संधनुः क्रोधेन महताऽऽगमत्। समाह्वयन् स सौमित्रिं युद्धाय रणमूर्धिन॥२१॥ सौमित्रे मेघनादोऽहं मया जीवन्न मोक्ष्यसे। तत्र दृष्ट्वा पितृव्यं स प्राह निष्ठुरभाषणम्॥२२॥ इहैव जातः संवृद्धः साक्षाद्भ्राता पितुर्मम। यस्त्वं स्वजनमृत्सृज्य प्रभृत्यत्वमागतः॥२३॥ कथं दुह्यसि पुत्राय पापीयानसि दुर्मतिः। इत्युक्तवा लक्ष्मणं दृष्ट्वा हनूमत्पृष्ठतः स्थितम्॥२४॥

उद्यदायुधनिस्त्रिंशे रथे महति संस्थितः। महाप्रमाणमुद्यम्य घोरं विस्फारयन् धनुः॥२५॥

अद्य वो मामका बाणाः प्राणान् पास्यन्ति वानराः। ततः शरं दाशरथिः सन्धायामित्रकर्षणः॥२६॥

ससर्ज राक्षसेन्द्राय कुद्धः सर्प इव श्वसन्। इन्द्रजिद्रक्तनयनो लक्ष्मणं समुदेक्षत॥२७॥ शकाशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः। मुहूर्तमभवन्मूढः पुनः प्रत्याहृतेन्द्रियः॥२८॥

ददर्शावस्थितं वीरं वीरो दशरथात्मजम्। सोऽभिचकाम सौमित्रिं कोधसंरक्तलोचनः॥२९॥ शरान् धनुषि सन्धाय लक्ष्मणं चेदमब्रवीत्। यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मे पराक्रमः॥३०॥ अद्य त्वां दर्शियष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः। इत्युक्तवा सप्तमिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम्॥३१॥

दशभिश्च हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः। ततः शरशतेनैव सम्प्रयुक्तेन वीर्यवान्॥३२॥ क्रोधद्विगुणसंरब्यो निर्विभेद विभीषणम्। लक्ष्मणोऽपि तथा शत्रुं शरवर्षैरवाकिरत्॥ ३३॥ तस्य बाणैः सुसंविद्धं कवचं काञ्चनप्रभम्। व्यशीर्यत रथोपस्थे तिलशः पतितं भुवि॥३४॥ ततः शरसहस्रेण सङ्कद्धो रावणात्मजः। बिभेद समरे वीरं लक्ष्मणं भीमविक्रमम्॥३५॥ व्यशीर्यतापतिहव्यं कवचं लक्ष्मणस्य च। कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुरभिद्भतौ॥३६॥ अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ तौ युध्येतां तुमुलं पुनः। शरसंवृतसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ॥३७॥ सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः। अयुध्येतां महासत्त्वौ जयाजयविवर्जितौ॥३८॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः। रावणेः सारथिं साश्वं रथं च समचूर्णयत्॥३९॥

चिच्छेद कार्मुकं तस्य दुर्शयन् हस्तलाघवम्। सोऽन्यत्तु कार्मुकं भद्रं सज्यं चके त्वरान्वितः॥४०॥ तचापमपि चिच्छेद लक्ष्मणिस्त्रभिराशुगैः। तमेव छिन्नधन्वानं विव्याधानेकसायकैः॥४१॥ पुनरन्यत्समादाय कार्मुकं भीमविक्रमः। इन्द्रजिल्लक्ष्मणं बाणैः शितैरादित्यसन्निभैः॥४२॥ बिभेद वानरान् सर्वान् बाणैरापूरयन् दिशः। तत ऐन्द्रं समादाय लक्ष्मणो रावणिं प्रति॥४३॥ सन्धायाकृष्य कर्णान्तं कार्मुकं दढिनेष्टुरम्। उवाच लक्ष्मणो वीरः स्मरन् रामपदाम्बुजम्॥४४॥ धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि। त्रिलोक्यामप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जिह रावणिम्॥४५॥ इत्युत्तवा बाणमाकर्णाद्विकृष्य तमजिह्मगम्। लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति॥४६॥ स शरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्विलतकुण्डलम्। प्रमध्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले॥४७॥

ततः प्रमुदिता देवाः कीर्तयन्तो रघूत्तमम्। ववर्षः पुष्पवर्षाणि स्तुवन्तश्च मुहुर्मुहुः॥४८॥ जहर्ष शको भगवान् सह देवैर्महर्षिभिः। आकाशेऽपि च देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः॥४९॥ विमलं गगनं चाऽऽसीत्स्थिराऽभूद्विश्वधारिणी। निहतं रावणिं दृष्ट्वा जयजल्पसमन्वितः॥५०॥ गतश्रमः स सौमित्रिः शङ्खमापूरयद्रणे। सिंहनादं ततः कृत्वा ज्याशब्दमकरोद्विभुः॥५१॥ तेन नादेन संहृष्टा वानराश्च गतश्रमाः। वानरेन्द्रैश्च सहितः स्तुवद्भिर्हप्टमानसैः॥५२॥ लक्ष्मणः परितुष्टात्मा ददर्शाभ्येत्य राघवम्। हनूमद्राक्षसाभ्यां च सहितो विनयान्वितः॥५३॥ ववन्दे भ्रातरं रामं ज्येष्ठं नारायणं विभूम्। त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ हतो रावणिराहवे॥५४॥ श्रुत्वा तल्लक्ष्मणाद्भक्त्या तमालिङ्गा रघूत्तमः। मूर्ध्यवघाय मुदितः सस्नेहमिदमबवीत्॥५५॥

साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म ते दुष्करं कृतम्। मेघनादस्य निधने जितं सर्वमरिन्दम॥५६॥ अहोरात्रैस्त्रिभिवीरः कथित्रदिनिपातितः। निःसपत्नः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः॥५७॥ पुत्रशोकान्मया योद्धं तं हनिष्यामि रावणम्॥५८॥ मेघनादं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महाबलम्। रावणः पतितो भुमौ मूर्च्छितः पुनरुत्थितः। विललापातिदीनात्मा पुत्रशोकेन रावणः॥५९॥ पुत्रस्य गुणकर्माणि संस्मरन् पर्यदेवयत्। अद्य देवगणाः सर्वे लोकपाला महर्षयः॥६०॥ हतमिन्द्रजितं ज्ञात्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः। इत्यादि बहुराः पुत्रलालसो विललाप ह॥६१॥ ततः परमसङ्कद्धो रावणो राक्षसाधिपः। उवाच राक्षसान् सर्वान्निनारायिषुराहवे॥६२॥ स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः। संवीक्ष्य रावणो बुद्धा हन्तुं सीतां प्रदुद्भवे॥६३॥

खङ्गपाणिमथायान्तं कुद्धं दृष्ट्वा द्शाननम्। राक्षसीमध्यगा सीता भयशोकाकुलाभवत्॥६४॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्य सचिवो बुद्धिमान् शुचिः। सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं वाक्यमब्रवीत्॥६५॥

ननु नाम द्राग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुजः। वेद्विद्याव्रतस्नातः स्वकर्मपरिनिष्ठितः॥६६॥

अनेकगुणसम्पन्नः कथं स्त्रीवधिमच्छिति। अस्माभिः सिहतो युद्धे हत्वा रामं च लक्ष्मणम्। प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमित्युक्तः स न्यवर्तत॥६७॥

> ततो दुरात्मा सुहृदा निवेदितम् वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः। गृहं जगामाऽऽशु शुचा विमूहधीः पुनः सभां च प्रययौ सुहृदृतः॥६८॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे नवमः सर्गः॥९॥

॥द्शमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

स विचार्य सभामध्ये राक्षसैः सह मन्त्रिभिः। निर्ययौ येऽविशष्टास्तै राक्षसैः सह राघवम्॥१॥ शलभः शलभैर्युक्तः प्रज्वलन्तमिवानलम्। ततो रामेण निहताः सर्वे ते राक्षसा युधि॥२॥ स्वयं रामेण निहतस्तीक्ष्णबाणेन वक्षसि। व्यथितस्त्वरितं लङ्कां प्रविवेश दशाननः ॥३॥ दृष्ट्वा रामस्य बहुदाः पौरुषं चाप्यमानुषम्। रावणो मारुतेश्चेव शीघ्रं शुक्रान्तिकं ययौ॥४॥ नमस्कृत्य दशग्रीवः शुक्रं प्राञ्जलिरबवीत्। भगवन् राघवेणैवं लङ्का राक्षसयूथपैः॥५॥ विनाशिता महादैत्या निहताः पुत्रबान्धवाः। कथं मे दुःखसन्दोहस्त्विय तिष्ठति सद्गुरौ॥६॥ इति विज्ञापितो दैत्यगुरुः प्राह दशाननम्। होमं कुरु प्रयत्नेन रहिस त्वं द्शानन॥७॥

यदि विघ्नो न चेद्धोमे तर्हि होमानलोत्थितः॥८॥ महान् रथश्च वाहाश्च चापतूणीरसायकाः। सम्भविष्यन्ति तैर्युक्तस्त्वमजेयो भविष्यसि॥९॥ गृहाण मन्त्रान् मदत्तान् गच्छ होमं कुरु द्रुतम्। इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा रावणो राक्षसाधिपः॥१०॥ गुहां पातालसदशीं मन्दिरे स्वे चकार ह। लङ्काद्वारकपाटादि बद्धा सर्वत्र यत्नतः॥११॥ होमद्रव्याणि सम्पाद्य यान्युक्तान्याभिचारिके। गुहां प्रविक्य चैकान्ते मौनी होमं प्रचक्रमे॥१२॥ उत्थितं धूममालोक्य महान्तं रावणानुजः। रामाय दर्शयामास होमधूमं भयाकुलः॥१३॥ पश्य राम दशग्रीवो होमं कर्तुं समारभत्। यदि होमः समाप्तः स्यात्तदाऽजेयो भविष्यति॥१४॥ अतो विघ्नाय होमस्य प्रेषयाऽऽशु हरीश्वरान्। तथेति रामः सुग्रीवसम्मतेनाङ्गदं कपिम्॥१५॥ हनूमत्प्रमुखान् वीरानादिदेश महाबलान्। प्राकारं लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमन्दिरम्॥१६॥

दशकोट्यः प्रवङ्गानां गत्वा मन्दिररक्षकान्। चूर्णयामासुरश्वांश्च गजांश्च न्यहनन् क्षणात्॥ १७॥ ततश्च सरमा नाम प्रभाते हस्तसंज्ञया। विभीषणस्य भार्या सा होमस्थानमसूचयत्॥ १८॥ गुहापिधानपाषाणमङ्गदः पादघट्टनेः। चूर्णयित्वा महासत्त्वः प्रविवेश महागुहाम्॥१९॥ दृष्ट्वा द्शाननं तत्र मीलिताक्षं दृढासनम्। ततोऽङ्गदाज्ञया सर्वे वानरा विविशुर्द्रतम्॥२०॥ तत्र कोलाहलं चक्रस्ताडयन्तश्च सेवकान्। सम्भारांश्चिक्षिपुस्तस्य होमकुण्डे समन्ततः॥२१॥ स्रुवमाच्छिद्य हस्ताच रावणस्य बलाद्भूषा। तेनैव सञ्जघानाशु हनूमान् प्रवगाग्रणीः॥२२॥ घ्नन्ति दन्तैश्च काष्टेश्च वानरास्तमितस्ततः। न जहाँ रावणो ध्यानं हतोऽपि विजिगीषया॥२३॥ प्रविश्यान्तःपुरे वेश्मन्यङ्गदो वेगवत्तरः। समानयत्केशबन्धे धृत्वा मन्दोद्रीं शुभाम्॥२४॥

रावणस्यैव पुरतो विलपन्तीमनाथवत्। विददाराङ्गदस्तस्याः कञ्जुकं रत्नभूषितम्॥२५॥ मुक्ता विमुक्ताः पतिताः समन्ताद्रत्नसञ्चयैः। श्रोणिसूत्रं निपतितं त्रुटितं रत्नचित्रितम्॥२६॥ कटिप्रदेशाद्विस्त्रस्ता नीवी तस्यैव पश्यतः। भूषणानि च सर्वाणि पतितानि समन्ततः॥२७॥ देवगन्धर्वकन्याश्च नीता हृष्टेः प्लवङ्गमैः। मन्दोदरी रुरोदाथ रावणस्याग्रतो भुशम्॥ २८॥ क्रोशन्ती करुणं दीना जगाद दशकन्धरम्। निर्लज्जोऽसि परैरेवं केशपाशे विकृष्यते॥२९॥ भार्या तवैव पुरतः किं जुहोषि न लज्जसे। हन्यते पश्यतो यस्य भार्या पापैश्च शत्रुभिः॥३०॥ मर्तव्यं तेन तत्रैव जीवितान्मरणं वरम्। हा मेघनाद ते माता क्लिश्यते बत वानरैः॥३१॥ त्विय जीवित में दुःखमीदृशं च कथं भवेत्। भार्या लज्जा च सन्त्यक्ता भर्त्रा मे जीविताशया॥३२॥

श्रुत्वा तद्देवितं राजा मन्दोद्यां द्शाननः। उत्तस्थौ खङ्गमादाय त्यज देवीमिति ब्रुवन्॥३३॥ जघानाङ्गदमव्ययः कटिदेशे दशाननः। तदोत्सुज्य ययुः सर्वे विध्वंस्य हवनं महत्॥३४॥ रामपार्श्वमुपागम्य तस्थुः सर्वे प्रहर्षिताः॥३५॥ रावणस्तु ततो भार्यामुवाच परिसान्त्वयन्। दैवाधीनमिदं भद्रे जीवता किं न दृश्यते। त्यज शोकं विशालाक्षि ज्ञानमालम्ब्य निश्चितम्॥३६॥ अज्ञानप्रभवः शोकः शोको ज्ञानविनाशकृत्। अज्ञानप्रभवाहन्धीः शरीरादिष्वनात्मसु॥३७॥ तन्मुलः पुत्रदारादिसम्बन्धः संसृतिस्ततः। हर्षशोकभयक्रोधलोभमोहस्प्रहादयः॥ १८॥ अज्ञानप्रभवा ह्येते जन्ममृत्युजरादयः। आत्मा तु केवलं शुद्धो व्यतिरिक्तो ह्यलेपकः॥३९॥ आनन्दरूपो ज्ञानात्मा सर्वभावविवर्जितः।

न संयोगो वियोगो वा विद्यते केनचित्सतः॥४०॥

एवं ज्ञात्वा स्वमात्मानं त्यज शोकमनिन्दिते। इदानीमेव गच्छामि हत्वा रामं सलक्ष्मणम्॥४१॥ आगमिष्यामि नो चेन्मां दारियष्यति सायकैः। श्रीरामो वज्रकल्पैश्च ततो गच्छामि तत्पदम्॥४२॥ तदा त्वया मे कर्तव्या किया मच्छासनात्प्रिये। सीतां हत्वा मया सार्धं त्वं प्रवेक्ष्यसि पावकम्॥४३॥ एवं श्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्यातिदुःखिता। उवाच नाथ मे वाक्यं शृणु सत्यं तथा कुरु॥४४॥ शक्यों न राघवों जेतुं त्वया चान्यैः कदाचन। रामो देववरः साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः॥४५॥ मत्स्यो भूत्वा पुरा कल्पे मनुं वैवस्वतं प्रभुः। ररक्ष सकलापन्धो राघवो भक्तवत्सलः॥४६॥ रामः कूर्मोऽभवत्पूर्वं लक्षयोजनविस्तृतः। समुद्रमथने पृष्ठे दधार कनकाचलम्॥४७॥ हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तो हतोऽनेन महात्मना। कोडरूपेण वपुषा क्षोणीमुद्धरता कचित्॥४८॥

त्रिलोककण्टकं दैत्यं हिरण्यकिशपुं पुरा। हतवान्नारिसंहेन वपुषा रघुनन्दनः॥४९॥ विक्रमैस्त्रिभिरेवासौ बलिं बद्धा जगत्त्रयम्। आक्रम्यादात्सुरेन्द्राय भृत्याय रघुसत्तमः॥५०॥

राक्षसाः क्षत्रियाकारा जाता भूमेर्भरावहाः। तान् हत्वा बहुशो रामो भुवं जित्वा ह्यदान्मुनेः॥५१॥

स एव साम्प्रतं जातो रघुवंशे परात्परः।
भवदर्थे रघुश्रेष्ठो मानुषत्वमुपागतः॥५२॥
तस्य भार्या किमर्थं वा हता सीता वनाद्वलात्।
मम पुत्रविनाशार्थं स्वस्यापि निधनाय च॥५३॥
इतः परं वा वैदेहीं प्रेषयस्व रघूत्तमे।
विभीषणाय राज्यं तु दत्त्वा गच्छामहे वनम्॥५४॥
मन्दोदरीवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
कथं भद्रे रणे पुत्रान् भ्रातृन् राक्षसमण्डलम्॥५५॥
घातियत्वा राघवेण जीवामि वनगोचरः।
रामेण सह योत्स्यामि रामबाणैः सुशीघ्रगैः॥५६॥

विदार्यमाणो यास्यामि तद्विष्णोः परमं पदम्। जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम्। ज्ञात्वैव जानकी सीता मयाऽऽनीता वनाद्वलात्॥५७॥

रामेण निधनं प्राप्य यास्यामीति परं पदम्। विमुच्य त्वां तु संसाराद्गमिष्यामि सह प्रिये॥५८॥

परानन्दमयी शुद्धा सेव्यते या मुमुक्षुभिः। तां गतिं तु गमिष्यामि हतो रामेण संयुगे॥५९॥

प्रक्षाल्य कल्मषाणीह मुक्तिं यास्यामि दुर्लभाम्॥६०॥

क्रेशादिपश्चकतरङ्गयुतं भ्रमाट्यम् दारात्मजाप्तधनबन्धुझषाभियुक्तम्। और्वानलाभनिजरोषमनङ्गजालम् संसारसागरमतीत्य हरि व्रजामि॥६१॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे द्शमः सर्गः॥ १०॥

॥ एकाद्दाः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तवा वचनं प्रेम्णा राज्ञीं मन्दोदरीं तदा। रावणः प्रययौ योद्धं रामेण सह संयुगे॥१॥

दृढं स्यन्दनमास्थाय वृतो घोरैर्निशाचरैः। चक्रैः षोडशभिर्युक्तं सवरूथं सकूबरम्॥२॥

पिशाचवद्नेघोरैः खरैर्युक्तं भयावहम्। सर्वास्त्रशस्त्रसहितं सर्वोपस्करसंयुतम्॥३॥

निश्चकामाथ सहसा रावणो भीषणाकृतिः। आयान्तं रावणं दृष्ट्वा भीषणं रणकर्कशम्॥४॥ सन्त्रस्ताऽभूत्तदा सेना वानरी रामपालिता॥५॥

हनूमानथ चोत्सुत्य रावणं योद्धमाययौ। आगत्य हनुमान् रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः॥६॥

मुष्टिबन्धं दृढं बद्धा ताडयामास वेगतः। तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्रथे॥७॥

मूर्च्छितोऽथ मुहूर्तेन रावणः पुनरुत्थितः। उवाच च हनूमन्तं शूरोऽसि मम सम्मतः॥८॥ हनूमानाह तं धिङ्मां यस्त्वं जीवसि रावण। त्वं तावन्मुष्टिना वक्षो मम ताडय रावण॥९॥ पश्चान्मया हतः प्राणान्मोक्ष्यसे नात्र संशयः। तथेति मुष्टिना वक्षो रावणेनापि ताडितः॥१०॥ विघूर्णमाननयनः किञ्चित्कश्मलमाययौ। संज्ञामवाप्य कपिराड् रावणं हन्तुमुद्यतः॥११॥ ततोऽन्यत्र गतो भीत्या रावणो राक्षसाधिपः। हनूमानङ्गदश्चेव नलो नीलस्तथैव च॥१२॥ चत्वारः समवेत्याग्रे दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवान्। अग्निवर्णं तथा सर्परोमाणं खङ्गरोमकम्॥१३॥ तथा वृश्चिकरोमाणं निर्जृघः क्रमशोऽसुरान्। चत्वारश्चतुरो हत्वा राक्षसान् भीमविक्रमान्। सिंहनादं पृथक् कृत्वा रामपार्श्वमुपागताः॥१४॥ ततः कुद्धो दशग्रीवः सन्दश्य दशनच्छदम्॥१५॥

विवृत्य नयने क्रूरो राममेवान्वधावत। दशयीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः॥१६॥ आजघान महाघोरैर्घाराभिरिव तोयदः। रामस्य पुरतः सर्वान् वानरानपि विव्यधे॥ १७॥ ततः पावकसङ्कादोः दारैः काञ्चनभूषणेः। अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीवं समाहितः॥१८॥ रथस्थं रावणं दृष्ट्वा भूमिष्ठं रघुनन्दनम्। आहूय मातिलं शको वचनं चेदमब्रवीत्॥१९॥ रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम्। त्वरितं भूतलं गत्वा कुरु कार्यं ममानघ॥२०॥ एवमुक्तोऽथ तं नत्वा मातिलर्देवसारिथः। ततो हयेश्च संयोज्य हरितैः स्यन्दनोत्तमम्॥२१॥ स्वर्गाज्जयार्थं रामस्य ह्यपचकाम मातिलः। प्राञ्जलिर्देवराजेन प्रेषितोऽस्मि रघूत्तम॥२२॥ रथोऽयं देवराजस्य विजयाय तव प्रभो। प्रेषितश्च महाराज धनुरैन्द्रं च भूषितम्॥२३॥

अभेद्यं कवचं खङ्गं दिव्यतूणीयुगं तथा। आरुह्य च रथं राम रावणं जिह राक्षसम्॥२४॥ मया सारथिना देव वृत्रं देवपतिर्यथा। इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य रथोत्तमम्॥२५॥ आरुरोह रथं रामो लोकाँ छक्ष्म्या नियोजयन्। ततोऽभवन्महायुद्धं भैरवं रोमहर्षणम्॥२६॥ महात्मनो राघवस्य रावणस्य च धीमतः। आग्नेयेन च आग्नेयं दैवं दैवेन राघवः॥२७॥ अस्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्रवित्। ततस्तु ससुजे घोरं राक्षसं चास्त्रमस्त्रवित्। क्रोधेन महताऽऽविष्टो रामस्योपरि रावणः॥२८॥ रावणस्य धनुर्मुक्ताः सर्पा भूत्वा महाविषाः। श्राराः काञ्चनपुङ्खाभा राघवं परितोऽपतन्॥२९॥ तैः शरैः सर्पवदनैर्वमद्भिरनलं मुखैः। दिराश्च विदिराश्चेव व्याप्तास्तत्र तदाऽभवन्॥३०॥ रामः सर्पांस्ततो दृष्ट्वा समन्तात्परिपूरितान्। सौपर्णमस्त्रं तदुघोरं पुरः प्रावर्तयद्रणे॥३१॥

रामेण मुक्तास्ते बाणा भूत्वा गरुडरूपिणः। चिच्छिदुः सर्पबाणांस्तान् समन्तात् सर्पशत्रवः॥३२॥ अस्त्रे प्रतिहते युद्धे रामेण दशकन्धरः। अभ्यवर्षत्ततो रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः॥३३॥ ततः पुनः शरानीकै राममक्रिष्टकारिणम्। अर्दियत्वा तु घोरेण मातिलं प्रत्यविध्यत॥३४॥ पातियत्वा रथोपस्थे रथकेतुं च काञ्चनम्। ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावणः कोधमूर्च्छितः॥३५॥ विषेदुर्देवगन्धर्वाश्चारणाः पितरस्तथा। आर्त्ताकारं हरि दृष्ट्वा व्यथिताश्च महर्षयः॥३६॥ व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवः सविभीषणाः। द्शास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः॥३७॥ दृहशे रावणस्तत्र मैनाक इव पर्वतः। रामस्तु भ्रुकुटिं बद्धा क्रोधसंरक्तलोचनः॥३८॥ कोपं चकार सदृशं निर्दहन्निव राक्षसम्। धनुरादाय देवेन्द्रधनुराकारमद्भुतम्॥ ३९॥

गृहीत्वा पाणिना बाणं कालानलसमप्रभम्। निर्दहन्निव चक्षुभ्यां दृदृशे रिपुमन्तिके॥४०॥ पराक्रमं दर्शयितुं तेजसा प्रज्वलन्निव। प्रचक्रमे कालरूपी सर्वलोकस्य पश्यतः॥४१॥ विकृष्य चापं रामस्तु रावणं प्रतिविध्य च। हर्षयन् वानरानीकं कालान्तक इवाबभौ॥४२॥ कुद्धं रामस्य वदनं दृष्ट्वा रात्रुं प्रधावतः। तत्रसुः सर्वभूतानि चचाल च वसुन्धरा॥४३॥ रामं दृष्ट्वा महारौद्रमुत्पातांश्च सुदारुणान्। त्रस्तानि सर्वभूतानि रावणं चाविशद्भयम्॥४४॥ विमानस्था सुरगणाः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः। दृहशुः सुमहायुद्धं लोकसंवर्तकोपमम्। ऐन्द्रमस्त्रं समादाय रावणस्य शिरोऽच्छिनत्॥४५॥ मूर्घानो रावणस्याथ बहवो रुधिरोक्षिताः। गगनात्प्रपतन्ति स्म तालादिव फलानि हि॥४६॥ न दिनं न च वै रात्रिर्न सन्ध्यां न दिशोऽपि वा। प्रकाशन्ते न तद्रूपं दृश्यते तत्र सङ्गरे॥४७॥ ततो रामो बभूवाथ विस्मयाविष्टमानसः। शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां चैकवर्चसाम्॥४८॥

न चैव रावणः शान्तो दृश्यते जीवितक्षयात्। ततः सर्वास्त्रविद्वीरः कौसल्यानन्दवर्धनः॥४९॥

अस्त्रेश्च बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः। यैर्यैर्बाणेर्हता दैत्या महासत्त्वपराक्रमाः॥५०॥ त एते निष्फलं याता रावणस्य निपातने।

उवाच राघवं वाक्यं ब्रह्मदत्तवरो ह्यसौ। विच्छिन्ना बाहवोऽप्यस्य विच्छिन्नानि शिरांसि च॥५२॥

इति चिन्ताकुले रामे समीपस्थो विभीषणः॥५१॥

उत्पत्स्यन्ति पुनः शीघ्रमित्याह भगवानजः। नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम्॥५३॥ तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्। विभीषणवचः श्रुत्वा रामः शीघ्रपराक्रमः॥५४॥ पावकास्त्रेण संयोज्य नाभिं विव्याध रक्षसः। अनन्तरं च चिच्छेद शिरांसि च महाबलः॥५५॥

बाहृनपि च संरब्धो रावणस्य रघूत्तमः। ततो घोरां महाशक्तिमादाय दशकन्धरः॥५६॥ विभीषणवधार्थाय चिक्षेप क्रोधविह्नलः। चिच्छेद राघवो बाणैस्तां शितैर्हेमभूषितैः॥५७॥ दशय्रीवशिरश्छेदात्तदा तेजो विनिर्गतम्। म्रानरूपो बभ्वाथ छिन्नैः शीर्षैर्भयङ्करैः॥५८॥ एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ। रावणस्तु पुनः कुद्धो नानाशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः॥५९॥ ववर्ष रामं तं रामस्तथा बाणैर्ववर्ष च। ततो युद्धमभूदुघोरं तुमुलं लोमहर्षणम्॥६०॥ अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा। विसृजास्त्रं वधायास्य ब्राह्मं शीघ्रं रघूत्तम॥६१॥ विनाशकालः प्रथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते। उत्तमाङ्गं न चैतस्य छेत्तव्यं राघव त्वया॥६२॥ नैव शीर्ष्ण प्रभो वध्यो वध्य एव हि मर्मणि। ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः॥६३॥

जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम्। यस्य पार्श्वे तु पवनः फले भास्करपावकौ॥६४॥ शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ। पर्वस्विप च विन्यस्ता लोकपाला महौजसः॥६५॥ जाज्वल्यमानं वपुषा भातं भास्करवर्चसा। तमुग्रमस्त्रं लोकानां भयनाशनमद्भुतम्॥६६॥ अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाभुजः। वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली॥६७॥ तिस्मन् सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे। सर्वभूतानि वित्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा॥६८॥ स रावणाय सङ्कद्धो भृशमानम्य कार्मुकम्। चिक्षेप परमायत्तस्तमस्त्रं मर्मघातिनम्॥६९॥ स वज्र इव दुर्घर्षो वज्रपाणिविसर्जितः। कृतान्त इव घोरास्यो न्यपतद्रावणोरसि॥७०॥ स निमम्नो महाघोरः शरीरान्तकरः परः। बिभेद हृद्यं तूर्णं रावणस्य महात्मनः॥७१॥

रावणस्याहरत्प्राणान् विवेश धरणीतले। स रारो रावणं हत्वा रामतूणीरमाविशत्॥७२॥ तस्य हस्तात्पपाताशु सशरं कार्मुकं महत्। गतासुर्भ्रमिवेगेन राक्षसेन्द्रोऽपतद्भवि॥७३॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतदोषाश्च राक्षसाः। हतनाथा भयत्रस्ता दुद्रवुः सर्वतोदिशम्॥७४॥ दशग्रीवस्य निधनं विजयं राघवस्य च। ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः॥७५॥ वदन्तो रामविजयं रावणस्य च तद्वधम्। अथान्तरिक्षे व्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः॥७६॥ पपात पुष्पवृष्टिश्च समन्ताद्राघवोपरि। तुष्ट्वर्मुनयः सिद्धाश्चारणाश्च दिवौकसः॥ ७७॥ अथान्तरिक्षे ननृतुः सर्वतोऽप्सरसो मुदा। रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत्॥ ७८॥ प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम्। देवा ऊचुरहो भाग्यं रावणस्य महात्मनः॥७९॥

वयं तु सात्त्विका देवा विष्णोः कारुण्यभाजनाः। भयदुःखादिभिर्व्याप्ताः संसारे परिवर्तिनः॥८०॥

अयं तु राक्षसः कूरो ब्रह्महाऽतीव तामसः। परदाररतो विष्णुद्वेषी तापसहिंसकः॥८१॥

पश्यत्सु सर्वभूतेषु राममेव प्रविष्टवान्। एवं ब्रुवत्सु देवेषु नारदः प्राह सुस्मितः॥८२॥

शृणुतात्र सुरा यूयं धर्मतत्त्वविचक्षणाः। रावणो राघवद्वेषादिनशं हृदि भावयन्॥८३॥

भृत्यैः सह सदा रामचरितं द्वेषसंयुतः। श्रुत्वा रामात्स्विनधनं भयात्सर्वत्र राघवम्॥८४॥

पश्यन्ननुदिनं स्वप्ने राममेवानुपश्यति। क्रोधोऽपि रावणस्याऽऽशु गुरुबोधाधिकोऽभवत्॥८५॥

रामेण निहतश्चान्ते निर्धूताशेषकल्मषः। रामसायुज्यमेवाऽऽप रावणो मुक्तबन्धनः॥८६॥ पापिष्ठो वा दुरात्मा परधनपरदारेषु सक्तो यदि स्यान्-नित्यं स्नेहाद्भयाद्वा रघुकुलतिलकं भावयन् सम्परेतः। भूत्वा शुद्धान्तरङ्गो भवशतजनितानेकदोषैर्विमुक्तः सद्यो रामस्य विष्णोः सुरवरिवनुतं याति वैकुण्ठमाद्यम्॥८७॥ हत्वा युद्धे दशास्यं त्रिभुवनविषमं वामहस्तेन चापम् भुमौ विष्टभ्य तिष्ठन्नितरकरधृतं भ्रामयन् बाणमेकम्। आरक्तोपान्तनेत्रः शरदिलतवपुः सूर्यकोटिप्रकाशो वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपितनुतः पातु मां वीररामः॥८८॥ ॥इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः॥११॥

॥ द्वाद्शः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच रामो विभीषणं दृष्ट्वा हनूमन्तं तथाऽङ्गदम्। लक्ष्मणं कपिराजं च जाम्बवन्तं तथा परान्॥१॥ परितुष्टेन मनसा सर्वानेवाब्रवीद्वचः। भवतां बाहुवीर्येण निहतो रावणो मया॥२॥ कीर्तिः स्थास्यति वः पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ। कीर्तियिष्यन्ति भवतां कथां त्रैलोक्यपावनीम्॥३॥ मयोपेतां कलिहरां यास्यन्ति परमां गतिम्। एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा रावणं पतितं भुवि॥४॥ मन्दोदरीमुखाः सर्वाः स्त्रियो रावणपालिताः। पतिता रावणस्याग्रे शोचन्त्यः पर्यदेवयन्॥५॥ विभीषणः शुशोचार्तः शोकेन महताऽऽवृतः। पतितो रावणस्याग्रे बहुधा पर्यदेवयत्॥६॥ रामस्तु लक्ष्मणं प्राह बोधयस्व विभीषणम्। करोतु भ्रातृसंस्कारं किं विलम्बेन मानद्॥७॥ स्त्रियो मन्दोद्रीमुख्याः पतिता विलपन्ति च। निवारयतु ताः सर्वा राक्षसी रावणप्रियाः॥८॥ एवमुक्तोऽथ रामेण लक्ष्मणोऽगाद्विभीषणम्। उवाच मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम्॥९॥ शोकेन महताऽऽविष्टं सौमित्रिरिदमब्वीत्। यं शोचिस त्वं दुःखेन कोऽयं तव विभीषण॥१०॥

त्वं वास्य कतमः सृष्टेः पुरेदानीमतः परम्। यद्वत्तोयौघपतिताः सिकता यान्ति तद्वशाः॥११॥ संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः। यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च॥१२॥ एवं भूतेषु भूतानि प्रेरितानीशमायया। त्वं चेमे वयमन्ये च तुल्याः कालवशोद्भवाः॥१३॥ जन्ममृत्यू यदा यस्मात्तदा तस्माद्भविष्यतः। ईश्वरः सर्वभूतानि भूतैः सृजति हन्त्यजः॥१४॥ आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रेर्निरपेक्षोऽपि बालवत्। देहेन देहिनो जीवा देहादेहोऽभिजायते॥१५॥ बीजादेव यथा बीजं देहान्य इव शाश्वतः। देहिदेहविभागोऽयमविवेककृतः पुरा॥१६॥ नानात्वं जन्म नाराश्च क्षयो वृद्धिः क्रियाफलम्। द्रष्ट्रराभान्त्यतद्धर्मा यथाग्नेर्दारुविकियाः॥१७॥ त इमे देहसंयोगादात्मना भान्त्यसद्ग्रहात्। यथा यथा तथा चान्यच्चायतोऽसत्सदाग्रहात्॥१८॥

प्रसुप्तस्यानहम्भावात्तदा भाति न संसृतिः। जीवतोऽपि तथा तद्वद्विमुक्तस्यानहङ्कतेः॥१९॥ तस्मान्मायामनोधर्मं जह्यहम्ममताभ्रमम्। रामभद्रे भगवति मनो धेह्यात्मनीश्वरे॥२०॥ सर्वभूतात्मनि परे मायामानुषरूपिणि। बाह्येन्द्रियार्थसम्बन्धात्त्याजयित्वा मनः शनैः॥२१॥ तत्र दोषान् दर्शयित्वा रामानन्दे नियोजय। देहबुद्या भवेद्धाता पिता माता सुहृत्प्रियः॥२२॥ विलक्षणं यदा देहाज्जानात्यात्मानमात्मना। तदा कः कस्य वा बन्धुर्भ्राता माता पिता सुहृत्॥२३॥ मिथ्याज्ञानवशाज्जाता दारागारादयः सदा। राब्दादयश्च विषया विविधाश्चेव सम्पदः॥२४॥ बलं कोशो भृत्यवर्गो राज्यं भूमिः सुतादयः। अज्ञानजत्वात्सर्वे ते क्षणसङ्गमभङ्गुराः॥२५॥ अथोत्तिष्ठ हृदा रामं भावयन् भक्तिभावितम्। अनुवर्तस्व राज्यादि भुञ्जन् प्रारब्धमन्वहम्॥२६॥

भूतं भविष्यद्भजन् वर्तमानमथाचरन्। विहरस्व यथान्यायं भवदोषैर्न लिप्यसे॥२७॥ आज्ञापयति रामस्त्वां यद्भातुः साम्परायिकम्। तत्कुरुष्व यथाशास्त्रं रुद्तीश्चापि योषितः॥२८॥ निवारय महाबुद्धे लङ्कां गच्छन्तु मा चिरम्। श्रुत्वा यथावद्वचनं लक्ष्मणस्य विभीषणः॥२९॥ त्यक्तवा शोकं च मोहं च रामपार्श्वमुपागमत्। विमृश्य बुद्धा धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः॥३०॥ रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरं पर्यभाषत। नृशंसमनृतं कूरं त्यक्तधर्मवतं प्रभो॥३१॥ नाहींऽस्मि देव संस्कर्तुं परदाराभिमिश्निम्। श्रुत्वा तद्वचनं प्रीतो रामो वचनमब्रवीत्॥३२॥ मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्। कियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥३३॥ रामाज्ञां शिरसा धृत्वा शीघ्रमेव विभीषणः। सान्त्ववाक्यैर्महाबुद्धिं राज्ञीं मन्दोद्रीं तदा॥३४॥

सान्त्वयामास धर्मात्मा धर्मबुद्धिर्विभीषणः। त्वरयामास धर्मज्ञः संस्कारार्थं स्वबान्धवान्॥३५॥ चित्यां निवेश्य विधिवत्पितमेधविधानतः। आहिताग्नेर्यथा कार्यं रावणस्य विभीषणः॥३६॥ तथैव सर्वमकरोद्धन्धुभिः सह मन्त्रिभिः। द्दौ च पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः॥३७॥ स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान् दर्भाभिमिश्रितान्। उद्केन च सम्मिश्रान् प्रदाय विधिपूर्वकम्॥३८॥ प्रदाय चोदकं तस्मै मूर्घा चैनं प्रणम्य च। ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वमुत्त्वा पुनः पुनः॥३९॥ गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं तदा। प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु विभीषणः॥४०॥ रामपार्श्वमुपागत्य तदाऽतिष्ठद्विनीतवत। रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः॥४१॥ हर्षं लेभे रिपून् हत्वा यथा वृत्रं शतकतुः। मातलिश्च तदा रामं परिक्रम्याभिवन्द्य च॥४२॥

अनुज्ञातश्च रामेण ययौ स्वर्गं विहायसा। ततो हृष्टमना रामो लक्ष्मणं चेदमब्रवीत्॥४३॥ विभीषणाय मे लङ्काराज्यं दत्तं पुरैव हि। इदानीमपि गत्वा त्वं लङ्कामध्ये विभीषणम्॥४४॥ अभिषेचय विप्रैश्च मन्त्रवद्विधिपूर्वकम्। इत्युक्तो लक्ष्मणस्तूर्णं जगाम सह वानरैः॥४५॥ लङ्कां सुवर्णकलशेः समुद्रजलसंयुतैः। अभिषेकं शुभं चके राक्षसेन्द्रस्य धीमतः॥४६॥ ततः पौरजनैः सार्धं नानोपायनपाणिभिः। विभीषणः ससौमित्रिरुपायनपुरस्कृतः॥४७॥ दण्डप्रणाममकरोद्रामस्याक्किष्टकर्मणः रामो विभीषणं दृष्ट्वा प्राप्तराज्यं मुदान्वितः॥४८॥ कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत सहानुजः। सुग्रीवं च समालिङ्मा रामो वाक्यमथाब्रवीत्॥४९॥ सहायेन त्वया वीर जितो मे रावणो महान। विभीषणोऽपि लङ्कायामभिषिक्तो मयाऽनघ॥५०॥ ततः प्राह हनूमन्तं पार्श्वस्थं विनयान्वितम्। विभीषणस्यानुमतेर्गच्छ त्वं रावणालयम्॥५१॥

जानक्ये सर्वमाख्याहि रावणस्य वधादिकम्। जानक्याः प्रतिवाक्यं मे शीघ्रमेव निवेदय॥५२॥

एवमाज्ञापितो घीमान् रामेण पवनात्मजः। प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः॥५३॥

प्रविश्य रावणगृहं शिंशपामूलमाश्रिताम्। दुदर्श जानकीं तत्र कृशां दीनामनिन्दिताम्॥५४॥

राक्षसीभिः परिवृतां ध्यायन्तीं राममेव हि। विनयावनतो भूत्वा प्रणम्य पवनात्मजः॥५५॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रह्वो भक्त्याऽग्रतः स्थितः। तं दृष्ट्वा जानकी तूष्णीं स्थित्वा पूर्वस्मृतिं ययौ॥५६॥

ज्ञात्वा तं रामदूतं सा हर्षात्सौम्यमुखी बभौ। स तां सौम्यमुखीं दृष्ट्वा तस्यै पवननन्दनः। रामस्य भाषितं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥५७॥

देवि रामः ससुग्रीवो विभीषणसहायवान्। कुशली वानराणां च सैन्यैश्च सहलक्ष्मणः॥५८॥ रावणं ससुतं हत्वा सबलं सह मन्त्रिभिः। त्वामाह कुरालं रामो राज्ये कृत्वा विभीषणम्॥५९॥ श्रुत्वा भर्तुः प्रियं वाक्यं हर्षगद्भद्दया गिरा। किं ते प्रियं करोम्यद्य न पश्यामि जगत्त्वये॥६०॥ समं ते प्रियवाकास्य रत्नान्याभरणानि च। एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः॥६१॥ रलौघाद्विविधाद्वाऽपि देवराज्याद्विशिष्यते। हतरात्रुं विजयिनं रामं परयामि सुस्थिरम्॥६२॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली प्राह मारुतिम्। सर्वे सौम्या गुणा सौम्य त्वय्येव परिनिष्ठिताः॥६३॥ रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रं मामाज्ञापयतु राघवः। तथेति तां नमस्कृत्य ययौ द्रष्टुं रघूत्तमम्॥६४॥ जानक्या भाषितं सर्वं रामस्याये न्यवेदयत। यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां च फलोदयः॥६५॥

तां देवीं शोकसन्तप्तां द्रष्ट्रमर्हिस मैथिलीम्। एवमुक्तो हनुमता रामो ज्ञानवतां वरः॥६६॥ मायासीतां परित्यक्तुं जानकीमनले स्थिताम्। आदातुं मनसा ध्यात्वा रामः प्राह विभीषणम्॥६७॥ गच्छ राजन् जनकजामानयाऽऽशु ममान्तिकम्। विरजवस्त्राढ्यां सर्वाभरणभूषिताम्॥६८॥ विभीषणोऽपि तच्छुत्वा जगाम सहमारुतिः। राक्षसीभिः सुवृद्धाभिः स्नापयित्वा तु मैथिलीम्॥६९॥ सर्वाभरणसम्पन्नामारोप्य शिबिकोत्तमे। याष्टीकैर्बहुभिर्गुप्तां कञ्जकोष्णीषिभिः शुभाम्॥७०॥ तां द्रष्ट्रमागताः सर्वे वानरा जनकात्मजाम्। तान् वारयन्तो बहवः सर्वतो वेत्रपाणयः॥७१॥ कोलाहलं प्रकुर्वन्तो रामपार्श्वमुपाययुः। दृष्ट्वा तां शिबिकारूढां दूराद्थ रघूत्तमः॥७२॥ विभीषण किमर्थं ते वानरान् वारयन्ति हि। पञ्चन्तु वानराः सर्वे मैथिलीं मातरं यथा॥७३॥

पादचारेण साऽऽयातु जानकी मम सन्निधिम्। श्रुत्वा तद्रामवचनं शिबिकादवरुह्य सा॥७४॥ पादचारेण शनकैरागता रामसन्निधिम्। रामोऽपि दृष्ट्वा तां मायासीतां कार्यार्थनिर्मिताम्॥ ७५॥ अवाच्यवादान् बहुशः प्राह् तां रघुनन्दनः। अमृष्यमाणा सा सीता वचनं राघवोदितम्॥७६॥ लक्ष्मणं प्राह मे शीघ्रं प्रज्वालय हुताशनम्। विश्वासार्थं हि रामस्य लोकानां प्रत्ययाय च॥७७॥ राघवस्य मतं ज्ञात्वा लक्ष्मणोऽपि तदैव हि। महाकाष्ठचयं कृत्वा ज्वालयित्वा हुताशनम्॥७८॥ रामपार्श्वमुपागम्य तस्थौ तूष्णीमरिन्दमः॥७९॥ ततः सीता परिक्रम्य राघवं भक्तिसंयुता। पश्यतां सर्वलोकानां देवराक्षसयोषिताम्॥८०॥ प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली। बद्धाञ्जलिपुटा चेद्मुवाचाग्निसमीपगा॥८१॥

यथा मे हृद्यं नित्यं नापसर्पति राघवात्। तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥८२॥ एवमुक्त्वा तदा सीता परिक्रम्य हुताशनम्। विवेश ज्वलनं दीप्तं निर्भयेन हृदा सती॥८३॥ दृष्ट्वा ततो भूतगणाः सिसद्धाः सीतां महाविह्नगतां भृशार्ताः। परस्परं प्राहुरहो स सीताम् रामः श्रियं स्वां कथमत्यजज्ञः॥८४॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे द्वाद्शः सर्गः॥ १२॥

॥त्रयोद्दाः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

ततः शकः सहस्राक्षो यमश्च वरुणस्तथा। कुबेरश्च महातेजाः पिनाकी वृषवाहनः॥१॥ ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो मुनिभिः सिद्धचारणैः। ऋषयः पितरः साध्या गन्धर्वाप्सरसोरगाः॥२॥ एते चान्ये विमानाग्र्यैराजग्मुर्यत्र राघवः। अब्रुवन् परमात्मानं रामं प्राञ्जलयश्च ते॥३॥

कर्ता त्वं सर्वलोकानां साक्षी विज्ञानविग्रहः। वसूनामष्टमोऽसि त्वं रुद्राणां शङ्करो भवान्॥४॥

आदिकर्ताऽसि लोकानां ब्रह्मा त्वं चतुराननः। अश्विनौ घ्राणभूतौ ते चक्षुषी चन्द्रभास्करौ॥५॥

लोकानामादिरन्तोऽसि नित्य एकः सदोदितः। सदा शुद्धः सदा बुद्धः सदा मुक्तोऽगुणोऽद्वयः॥६॥

त्वन्मायासंवृतानां त्वं भासि मानुषविग्रहः। त्वन्नाम स्मरतां राम सदा भासि चिदात्मकः॥७॥

रावणेन हृतं स्थानमस्माकं तेजसा सह। त्वयाऽद्य निहृतो दृष्टः पुनः प्राप्तं पदं स्वकम्॥८॥

एवं स्तुवत्सु देवेषु ब्रह्मा साक्षात्पितामहः। अब्रवीत्प्रणतो भूत्वा रामं सत्यपथे स्थितम्॥९॥

ब्रह्मोवाच वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुम् त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हदि भाव्यम्। हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकम् सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम्॥१०॥ प्राणापानौ निश्चयबुद्या हृदि रुद्धा छित्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान। पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तम् वन्दे रामं रत्निकरीटं रविभासम्॥११॥ मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिम् मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम्। योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णम् वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम्॥१२॥ भावाभावप्रत्ययहीनं भवमुख्यैः योगासकैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम्। नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यम् वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम्॥१३॥

त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी। भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी योगाभ्यासैर्भावितचेतःसहचारी ॥१४॥

त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशम् लोकानां नो लौकिकमानैरिधगम्यम्। भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयम् वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम्॥१५॥

को वा ज्ञातुं त्वामितमानं गतमानम् मायासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम्। वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दम् वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम्॥१६॥

नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यम् नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम्। मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नम् वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम्॥१७॥ श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यम् ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः। रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशम् ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात्॥१८॥

श्रुत्वा स्तुतिं लोकगुरोर्विभावसुः स्वाङ्के समादाय विदेहपुत्रिकाम्। विभ्राजमानां विमलारुणद्युतिम् रक्ताम्बरां दिव्यविभूषणान्विताम्॥१९॥

प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमम् प्रपन्नसर्वार्तिहरं हुताशनः। गृहाण देवीं रघुनाथ जानकीम् पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने॥२०॥

विधाय मायाजनकात्मजां हरे दशाननप्राणविनाशनाय च। हतो दशास्यः सह पुत्रबान्धवैः निराकृतोऽनेन भरो भुवः प्रभो॥२१॥ तिरोहिता सा प्रतिबिम्बरूपिणी कृता यद्र्थं कृतकृत्यतां गता। ततोऽतिहृष्टां परिगृह्य जानकीम् रामः प्रहृष्टः प्रतिपूज्य पावकम्॥२२॥

स्वाङ्के समावेश्य सदाऽनपायिनीम् श्रियं त्रिलोकीजननीं श्रियः पितः। दृष्ट्वाऽथ रामं जनकात्मजायुतम् श्रिया स्फुरन्तं सुरनायको मुदा। भक्त्या गिरा गद्भदया समेत्य कृताञ्जलिः स्तोतुमथोपचक्रमे॥२३॥

इन्द्र उवाच भजेऽहं सदा रामिनन्दीवराभम् भवारण्यदावानलाभाभिधानम्। भवानीहृदा भावितानन्दरूपम् भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम्॥२४॥ सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुम्
नराकारदेहं निराकारमीड्यम्।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यम्
हिर राममीशं भजे भारनाशम्॥ २५॥

प्रपन्नाखिलानन्ददोहं प्रपन्नम् प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम्। तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यम् कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम्॥ २६॥

सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तम् सदा योगभाजामदूरे विभान्तम्। चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशम् विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये॥२७॥

महायोगमायाविशेषानुयुक्तो विभासीश लीलानराकारवृत्तिः। त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके॥२८॥ अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः। इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात् त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः॥२९॥

स्फुरद्रलकेयूरहाराभिरामम् धराभारभूतासुरानीकदावम्। शरचन्द्रवक्रं लसत्पद्मनेत्रम् दुरावारपारं भजे राघवेशम्॥३०॥

सुराधीशनीलाभ्रनीलाङ्गकान्तिम् विराधादिरक्षोवधाल्लोकशान्तिम्। किरीटादिशोभं पुरारातिलाभम् भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम्॥३१॥

लसचन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे समासीनमङ्के समाधाय सीताम्। स्फुरद्वेमवर्णां तिहत्पुञ्जभासाम् भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम्॥३२॥ ततः प्रोवाच भगवान् भवान्या सहितो भवः। रामं कमलपत्राक्षं विमानस्थो नभःस्थले॥३३॥ आगमिष्याम्ययोध्यायां द्रष्टुं त्वां राज्यसत्कृतम्। इदानीं पश्य पितरमस्य देहस्य राघव॥३४॥

ततोऽपश्यद्विमानस्थं रामो दशरथं पुरः। ननाम शिरसा पादौ मुदा भक्त्या सहानुजः॥३५॥

आलिङ्य मूर्ध्यवघ्राय रामं दशरथोऽब्रवीत्। तारितोऽस्मि त्वया वत्स संसारादुःखसागरात्॥३६॥

इत्युक्तवा पुनरालिङ्या ययौ रामेण पूजितः। रामोऽपि देवराजं तं दृष्ट्वा प्राह कृताञ्जलिम्॥३७॥

मत्कृते निहतान् सङ्ख्ये वानरान् पतितान् भुवि। जीवयाऽऽशु सुधावृष्ट्या सहस्राक्ष ममाऽऽज्ञया॥३८॥

तथेत्यमृतवृष्ट्या तान् जीवयामास वानरान्। ये ये मृता मृघे पूर्वं ते ते सुप्तोत्थिता इव। पूर्ववद्वलिनो हृष्टा रामपार्श्वमुपाययुः॥३९॥

नोत्थिता राक्षसास्तत्र पीयूषस्पर्शनादपि। विभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्याब्रवीद्वचः॥४०॥ देव मामनुगृह्णीष्व मिय भक्तिर्यदा तव। मङ्गलस्नानमद्य त्वं कुरु सीतासमन्वितः॥४१॥ अलङ्कत्य सह भ्रात्रा श्वो गमिष्यामहे वयम्। विभीषणवचः श्रुत्वा प्रत्युवाच रघूत्तमः॥४२॥ सुकुमारोऽतिभक्तो मे भरतो मामवेक्षते। जटावल्कलधारी स शब्दब्रह्मसमाहितः॥४३॥ कथं तेन विना स्नानमलङ्कारादिकं मम। अतः सुग्रीवमुख्यांस्त्वं पूजयाऽऽशु विशेषतः॥४४॥ पूजितेषु कपीन्द्रेषु पूजितोऽहं न संशयः। इत्युक्तो राघवेणाञ्ज स्वर्णरलाम्बराणि च॥४५॥ ववर्ष राक्षसश्रेष्ठो यथाकामं यथारुचि। ततस्तान् पूजितान् दृष्ट्वा रामो रत्नेश्च यूथपान्॥४६॥ अभिनन्द्य यथान्यायं विससर्ज हरीश्वरान्। विभीषणसमानीतं पुष्पकं सूर्यवर्चसम्॥४७॥

आरुरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम्। अङ्के निधाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम्॥४८॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता। अब्रवीच विमानस्थः श्रीरामः सर्ववानरान्॥४९॥ सुग्रीवं हरिराजं च अङ्गदं च विभीषणम्। मित्रकार्यं कृतं सर्वं भवद्भिः सह वानरैः॥५०॥ अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ। सुग्रीव प्रतियाह्याशु किष्किन्धां सर्वसैनिकैः॥५१॥ स्वराज्ये वस लङ्कायां मम भक्तो विभीषण। न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः॥५२॥ अयोध्यां गन्तुमिच्छामि राजधानीं पितुर्मम। एवमुक्तास्तु रामेण वानरास्ते महाबलाः॥५३॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः। अयोध्यां गन्तुमिच्छामस्त्वया सह रघूत्तम॥५४॥ दृष्ट्वा त्वामभिषिक्तं तु कौसल्यामभिवाद्य च। पश्चाद्रुणीमहे राज्यमनुज्ञां देहि नः प्रभो॥५५॥

रामस्तथेति सुग्रीव वानरैः सविभीषणः। पुष्पकं सहनूमांश्च शीघ्रमारोह साम्प्रतम्॥५६॥

ततस्तु पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह सेनया। विभीषणश्च सामात्यः सर्वे चारुरुहुर्द्वतम्॥५७॥

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम्। राघवेणाभ्यनुज्ञातमृत्पपात विहायसा॥५८॥

बभौ तेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता। प्रहृष्टश्च तदा रामश्चतुर्मुख इवापरः॥५९॥

ततो बभौ भास्करबिम्बतुल्यम् कुबेरयानं तपसानुलब्धम्। रामेण शोभां नितरां प्रपेदे सीतासमेतेन सहानुजेन॥६०॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे त्रयोदशः सर्गः॥ १३॥

॥ चतुर्द्शः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

पातियत्वा ततश्रक्षः सर्वतो रघुनन्दनः। अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम्॥१॥ त्रिकूटिशखराग्रस्थां पश्य लङ्कां महाप्रभाम्। एतां रणभुवं पश्य मांसकर्दमपङ्किलाम्॥२॥ असुराणां प्रवङ्गानामत्र वैशसनं महत्। अत्र में निहतः शेते रावणो राक्षसेश्वरः॥३॥ कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्याः सर्वे चात्र निपातिताः। एष सेतुर्मया बद्धः सागरे सलिलाशये॥४॥ एतच दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः। सेतुबन्धमिति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्॥५॥ एतत्पवित्रं परमं दर्शनात्पातकापहम्। अत्र रामेश्वरो देवो मया शम्भुः प्रतिष्ठितः॥६॥ अत्र मां शरणं प्राप्तो मन्त्रिभिश्च विभीषणः। एषा सुग्रीवनगरी किष्किन्धा चित्रकानना॥७॥

तत्र रामाज्ञया ताराप्रमुखा हरियोषितः। आनयामास सुग्रीवः सीतायाः प्रियकाम्यया॥८॥ ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः। प्राह चाद्रिमृष्यमूकं पश्य वाल्यत्र मे हतः॥९॥ एषा पञ्चवटी नाम राक्षसा यत्र मे हताः। अगस्त्यस्य सुतीक्ष्णस्य पश्याश्रमपदे शुभे॥१०॥ एते ते तापसाः सर्वे दृश्यन्ते वरवणिंनि। असौ शैलवरो देवि चित्रकूटः प्रकाशते॥११॥ अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसाद्यितुमागतः। भरद्वाजाश्रमं पश्य दृश्यते यमुनातटे॥१२॥ एषा भागीरथी गङ्गा दृश्यते लोकपावनी। एषा सा दृश्यते सीते सरयूयूपमालिनी॥१३॥ एषा सा दृश्यतेऽयोध्या प्रणामं कुरु भामिनि। एवं क्रमेण सम्प्राप्तो भरद्वाजाश्रमं हरिः॥१४॥ पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां रघुनन्दनः। भरद्वाजं मुनिं दृष्ट्वा ववन्दे सानुजः प्रभुः॥१५॥

पप्रच्छ मुनिमासीनं विनयेन रघूत्तमः। शृणोषि कचिद्भरतः कुशल्यास्ते सहानुजः॥१६॥ सुभिक्षा वर्ततेऽयोध्या जीवन्ति च हि मातरः। श्रुत्वा रामस्य वचनं भरद्वाजः प्रहृष्ट्धीः॥१७॥ प्राह सर्वे कुशिलनो भरतस्तु महामनाः। फलमूलकृताहारो जटावल्कलघारकः॥१८॥ पादुके सकलं न्यस्य राज्यं त्वां सुप्रतीक्षते। यद्यत्कृतं त्वया कर्म दण्डके रघुनन्दन॥१९॥ राक्षसानां विनाशं च सीताहरणपूर्वकम्। सर्वं ज्ञातं मया राम तपसा ते प्रसादतः॥२०॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादादिमध्यान्तवर्जितः। त्वमग्रे सिललं सृष्ट्वा तत्र सुप्तोऽसि भूतकृत्॥२१॥ नारायणोऽसि विश्वात्मन्नराणामन्तरात्मकः। त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः॥२२॥ अतस्त्वं जगतामीशः सर्वलोकनमस्कतः। त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शेषोऽयं लक्ष्मणाभिधः॥२३॥

आत्मना सुजसीदं त्वमात्मन्येवाऽऽत्ममायया। न सज्जसे नभोवत्त्वं चिच्छत्त्वा सर्वसाक्षिकः॥२४॥ बहिरन्तश्च भूतानां त्वमेव रघुनन्दन। पूर्णोऽपि मूढदृष्टीनां विच्छिन्न इव लक्ष्यसे॥२५॥ जगत्त्वं जगदाधारस्त्वमेव परिपालकः। त्वमेव सर्वभूतानां भोक्ता भोज्यं जगत्पते॥२६॥ दृश्यते श्रूयते यद्यत्स्मर्यते वा रघूत्तम। त्वमेव सर्वमिखलं त्वद्विनाऽन्यन्न किञ्चन॥२७॥ माया सृजति लोकांश्च स्वगुणैरहमादिभिः। त्वच्छक्तिप्रेरिता राम तस्मात्त्वय्युपचर्यते॥ २८॥ यथा चुम्बकसान्निध्याचलन्त्येवायसादयः। जडास्तथा त्वया दृष्टा माया सृजित वै जगत्॥ २९॥ देहद्वयमदेहस्य तव विश्वं रिरक्षिषोः। विराट् स्थूलं शरीरं ते सूत्रं सूक्ष्ममुदाहृतम्॥३०॥ विराजः सम्भवन्त्येते अवताराः सहस्रराः। कार्यान्ते प्रविशन्त्येव विराजं रघुनन्दन॥३१॥

अवतारकथां लोके ये गायन्ति गृणन्ति च। अनन्यमनसो मुक्तिस्तेषामेव रघूत्तम॥३२॥ त्वं ब्रह्मणा पुरा भूमेर्भारहाराय राघव। प्रार्थितस्तपसा तुष्टस्त्वं जातोऽसि रघोः कुले॥३३॥

देवकार्यमरोषेण कृतं ते राम दुष्करम्। बहुवर्षसहस्राणि मानुषं देहमाश्रितः॥३४॥

कुर्वन् दुष्करकर्माणि लोकद्वयहिताय च। पापहारीणि भुवनं यशसा पूरियष्यसि॥३५॥

प्रार्थयामि जगन्नाथ पवित्रं कुरु मे गृहम्। स्थित्वाऽद्य भुक्तवा सबलः श्वो गमिष्यसि पत्तनम्॥३६॥

तथेति राघवोऽतिष्ठत्तिस्मिन्नाश्रम उत्तमे।
ससैन्यः पूजितस्तेन सीतया लक्ष्मणेन च॥३७॥
ततो रामश्चिन्तियत्वा मुहुर्तं प्राह मारुतिम्।
इतो गच्छ हनूमंस्त्वमयोध्यां प्रति सत्वरः॥३८॥
जानीहि कुशली किच्जनो नृपितमिन्दिरे।
श्वज्जवेरपुरं गत्वा ब्रूहि मित्रं गुहं मम॥३९॥

जानकीलक्ष्मणोपेतमागतं मां निवेदय। नन्दिग्रामं ततो गत्वा भ्रातरं भरतं मम॥४०॥ दृष्ट्वा बृहि सभार्यस्य सभ्रातुः कुश्चलं मम। सीतापहरणादीनि रावणस्य वधादिकम्॥४१॥ ब्रूहि क्रमेण मे भ्रातुः सर्वं तत्र विचेष्टितम्। हत्वा शत्रुगणान् सर्वान् सभार्यः सहलक्ष्मणः॥४२॥ उपयाति समुद्धार्थः सह ऋक्षहरीश्वरैः। इत्युत्तवा तत्र वृत्तान्तं भरतस्य विचेष्टितम्॥४३॥ सर्वं ज्ञात्वा पुनः शीघ्रमागच्छ मम सन्निधिम्। तथेति हनुमांस्तत्र मानुषं वपुरास्थितः॥४४॥ नन्दियामं ययौ तूर्णं वायुवेगेन मारुतिः। गरुत्मानिव वेगेन जिघुक्षन् भुजगोत्तमम्॥४५॥ शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गृहमासाद्य मारुतिः। उवाचा मधुरं वाक्यं प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥४६॥ रामो दारारथिः श्रीमान् सखा ते सह सीतया। सलक्ष्मणस्त्वां धर्मात्मा क्षेमी कुशलमबवीत्॥४७॥

अनुज्ञातोऽद्य मुनिना भरद्वाजेन राघवः। आगमिष्यति तं देवं द्रक्ष्यसि त्वं रघूत्तमम्॥४८॥ एवमुत्तवा महातेजाः सम्प्रहृष्टतनूरुहम्। उत्पपात महावेगो वायुवेगेन मारुतिः॥४९॥ सोऽपश्यद्रामतीर्थं च सरयूं च महानदीम्। तामतिकम्य हनुमान्नन्दिग्रामं ययौ मुदा॥५०॥ कोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम्। ददर्श भरतं दीनं कुशमाश्रमवासिनम्॥५१॥ मलपङ्कविदिग्धाङ्गं जटिलं वल्कलाम्बरम्। फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम्॥५२॥ पादुके ते पुरस्कृत्य शासयन्तं वसुन्धराम्। मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च काषायाम्बरधारिभिः॥५३॥ वृतदेहं मूर्तिमन्तं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम्। उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः॥५४॥ यं त्वं चिन्तयसे रामं तापसं दण्डके स्थितम्। अनुशोचिस काकुत्स्थः स त्वां कुशलमबवीत्॥५५॥

प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम्। अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः॥५६॥ समरे रावणं हत्वा रामः सीतामवाप्य च। उपयाति समृद्धार्थः ससीतः सहलक्ष्मणः॥५७॥ एवमुक्तो महातेजा भरतो हर्षमूर्च्छितः। पपात भुवि चास्वस्थः कैकयीप्रियनन्दनः॥५८॥ आलिङ्गा भरतः शीघ्रं मारुतिं प्रियवादिनम्। आनन्दजैरश्रुजलैः सिषेच भरतः कपिम्॥५९॥ देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः। प्रियाख्यानस्य ते सौम्य दुदामि ब्रुवतः प्रियम्॥६०॥ गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं वरम। सर्वाभरणसम्पन्ना मुग्धाः कन्यास्तु षोडश॥६१॥ एवमुत्तवा पुनः प्राह भरतो मारुतात्मजम्। बहूनीमानि वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम्॥६२॥ शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम्। कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे॥ ६३॥

एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि। राघवस्य हरीणां च कथमासीत्समागमः॥६४॥ तत्त्वमाख्याहि भद्रं ते विश्वसेयं वचस्तव। एवमुक्तोऽथ हनुमान् भरतेन महात्मना॥६५॥ आचचक्षेऽथ रामस्य चरितं कृत्स्नशः क्रमात्। श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतो मारुतात्मजात्॥६६॥ आज्ञापयच्छत्रुहणं मुदा युक्तं मुदान्वितः। दैवतानि च यावन्ति नगरे रघुनन्दन॥६७॥ नानोपहारबलिभिः पूजयन्तु महाधियः। सूता वैतालिकाश्चैव वन्दिनः स्तुतिपाठकाः॥६८॥ वारमुख्याश्च शतशो निर्यान्त्वसैव सङ्घराः। राजदारास्तथाऽमात्याः सेना हस्त्यश्वपत्तयः॥६९॥ ब्राह्मणाश्च तथा पौरा राजानो ये समागताः। निर्यान्तु राघवस्याद्य द्रष्टुं शशिनिभाननम्॥७०॥ भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नपरिचोदिताः। अलञ्चकुश्च नगरीं मुक्तारत्नमयोज्ज्वलैः॥७१॥

पताकाभिर्विचित्राभिरनेकधा। तोरणेश्च अलङ्कर्वन्ति वेश्मानि नानाबलिविचक्षणाः॥७२॥ निर्यान्ति वृन्दशः सर्वे रामदर्शनलालसाः। हयानां रातसाहस्रं गजानामयुतं तथा॥७३॥ रथानां दशसाहस्रं स्वर्णसूत्रविभूषितम्। पारमेष्ठीन्युपादाय द्रव्याण्युचावचानि च॥७४॥ ततस्तु शिबिकारूढा निर्ययू राजयोषितः। भरतः पादुके न्यस्य शिरस्येव कृताञ्जलिः॥७५॥ शत्रुघ्नसहितो रामं पादचारेण निर्ययौ। तदैव दृश्यते दूराद्विमानं चन्द्रसन्निभम्॥७६॥ पुष्पकं सूर्यसङ्काशं मनसा ब्रह्मनिर्मितम्। एतिस्मन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ॥७७॥ सुग्रीवश्च कपिश्रेष्ठो मन्त्रिभिश्च विभीषणः। दृश्यते पश्यत जना इत्याह पवनात्मजः॥७८॥ ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत्। स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तनात्॥ ७९॥

रथकुञ्जरवाजिस्था अवतीर्य महीं गताः। दृहशुस्ते विमानस्थं जनाः सोममिवाम्बरे॥८०॥ प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः। ततो विमानाग्रगतं भरतो राघवं मुदा॥८१॥ ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम्। ततो रामाभ्यनुज्ञातं विमानमपतद्भवि॥८२॥ आरोपितो विमानं तद्भरतः सानुजस्तदा। राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत्॥८३॥ समृत्थाय चिरादृष्टं भरतं रघुनन्दनः। भ्रातरं स्वाङ्कमारोप्य मुदा तं परिषस्वजे॥८४॥ ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं नाम कीर्तयन्। अभ्यवादयत प्रीतो भरतः प्रेमविह्नलः॥८५॥ सुग्रीवं जाम्बवन्तं च युवराजं तथाऽङ्गदम्। मैन्दद्विविदनीलांश्च ऋषमं चैव सस्वजे॥८६॥ सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम्। शरभं पनसं चैव भरतः परिषस्वजे॥८७॥

सर्वे ते मानुषं रूपं कृत्वा भरतमादृताः। पप्रच्छुः कुशलं सौम्याः प्रहृष्टाश्च प्रवङ्गमाः॥८८॥ ततः सुग्रीवमालिञ्च भरतः प्राह भक्तितः। त्वत्सहायेन रामस्य जयोऽभूद्रावणो हतः॥८९॥ त्वमस्माकं चतुर्णां तु भ्राता सुग्रीव पञ्चमः। शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम्॥९०॥ सीतायाश्चरणौ पश्चाद्ववन्दे विनयान्वितः। रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोकविह्वलाम्॥९१॥ जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन्। कैकेयीं च सुमित्रां च ननामेतरमातरौ॥९२॥ भरतः पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते। योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः॥९३॥ राज्यमेतन्त्र्यासभूतं मया निर्यातितं तव। अद्य में सफलं जन्म फलितों में मनोरथः॥९४॥ यत्पश्यामि समायातमयोध्यां त्वामहं प्रभो। कोष्ठागारं बलं कोशं कृतं दशगुणं मया॥९५॥ त्वत्तेजसा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम्। इति ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा सर्वे कपीश्वराः॥९६॥

मुमुचुर्नेत्रजं तोयं प्रशशंसुर्मुदान्विताः। ततो रामः प्रहृष्टात्मा भरतं स्वाङ्कगं मुदा॥९७॥

ययौ तेन विमानेन भरतस्याश्रमं तदा। अवरुह्य तदा रामो विमानाग्र्यान्महीतलम्॥९८॥

अब्रवीत्पुष्पकं देवो गच्छ वैश्रवणं वह। अनुगच्छानुजानामि कुबेरं धनपालकम्॥९९॥

रामो विसष्ठस्य गुरोः पदाम्बुजम् नत्वा यथा देवगुरोः शतकतुः। दत्त्वा महार्हासनमुत्तमं गुरो-रुपाविवेशाथ गुरोः समीपतः॥१००॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे चतुर्द्शः सर्गः॥ १४॥

॥पश्चद्दाः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच ततस्तु कैकयीपुत्रो भरतो भक्तिसंयुतः। शिरस्यञ्जलिमाधाय ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत्॥१॥ माता मे सत्कृता राम दत्तं राज्यं त्वया मम। द्दामि तत्ते च पुनर्यथा त्वमद्दा मम॥२॥ इत्युत्तवा पादयोर्भक्त्या साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च। बहुधा प्रार्थयामास कैकेय्या गुरुणा सह॥३॥ तथेति प्रतिजग्राह भरताद्राज्यमीश्वरः। मायामाश्रित्य सकलां नरचेष्टामुपागतः॥४॥ स्वाराज्यानुभवो यस्य सुखज्ञानैकरूपिणः। निरस्तातिशयानन्दरूपिणः परमात्मनः॥५॥ मानुषेण तु राज्येन किं तस्य जगदीशितुः। यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण त्रिलोकी नश्यति क्षणात्॥६॥ यस्यानुग्रहमात्रेण भवन्त्याखण्डलश्रियः। लीलासृष्टमहासृष्टेः कियदेतद्रमापतेः॥७॥

तथाऽपि भजतां नित्यं कामपूरविधित्सया। लीलामानुषदेहेन सर्वमप्यनुवर्तते॥८॥

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणः श्मश्रुकृन्तकः। सम्भाराश्चाभिषेकार्थमानीता राघवस्य हि॥९॥ पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महात्मनि।

पूर्व तु भरत स्नात लक्ष्मण च महात्मान। सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे॥१०॥

विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः। महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन्॥११॥

प्रतिकर्म च रामस्य लक्ष्मणश्च महामितः। कारयामास भरतः सीताया राजयोषितः॥१२॥

महार्हवस्त्राभरणैरलञ्चकुः सुमध्यमाम्। ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभना॥१३॥ अकारयत कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला। ततः स्यन्दनमादाय शत्रुघ्नवचनात्सुधीः॥१४॥

सुमन्त्रः सूर्यसङ्काशं योजयित्वाऽग्रतः स्थितः। आरुरोह रथं रामः सत्यधर्मपरायणः॥१५॥ सुग्रीवो युवराजश्च हनुमांश्च विभीषणः। स्नात्वा दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिताः॥१६॥ राममन्वीयुरग्रे च रथाश्वगजवाहनाः। सुग्रीवपल्यः सीता च ययुर्यानैः पुरं महत्॥१७॥ वज्रपाणिर्यथा देवैर्हरिताश्वरथे स्थितः। प्रययौ रथमास्थाय तथा रामो महत्पुरम्॥ १८॥ सारथ्यं भरतश्रके रत्नदण्डं महाद्यतिः। श्वेतातपत्रं शत्रुघ्नो लक्ष्मणो व्यजनं दुधे॥ १९॥ चामरं च समीपस्थो न्यवीजयदरिन्दमः। राशिप्रकाशं त्वपरं जग्राहासुरनायकः॥२०॥ दिविजैः सिद्धसङ्घेश्च ऋषिभिर्दिव्यदर्शनैः। स्त्रयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः॥२१॥ मानुषं रूपमास्थाय वानरा गजवाहनाः। भेरीशङ्खनिनादैश्च मृदङ्गपणवानकैः॥२२॥ प्रययौ राघवश्रेष्ठस्तां पुरीं समलङ्कृताम्। दृहशुस्ते समायान्तं राघवं पुरवासिनः॥२३॥

दूर्वादलश्यामतनुं महार्ह-किरीटरत्नाभरणाश्चिताङ्गम्। आरक्तकञ्जायतलोचनान्तम् दृष्ट्वा ययुर्मोद्मतीव पुण्याः॥२४॥

विचित्ररलाश्चितसूत्रनद्ध-पीताम्बरं पीनभुजान्तरालम्। अनर्घ्यमुक्ताफलदिव्यहारैः विरोचमानं रघुनन्दनं प्रजाः॥२५॥

सुग्रीवमुख्यैर्हरिभिः प्रशान्तैः निषेव्यमाणं रवितुल्यभासम्। कस्तूरिकाचन्दनलिप्तगात्रम् निवीतकल्पद्रमपुष्पमालम् ॥२६॥

श्रुत्वा स्त्रियो राममुपागतं मुदा प्रहर्षवेगोत्किलताननिश्रयः । अपास्य सर्वं गृहकार्यमाहितम् हर्म्याणि चैवारुरुहुः स्वलङ्कृताः॥२७॥ दृष्ट्वा हरि सर्वदृगुत्सवाकृतिम् पुष्पेः किरन्त्यः स्मितशोभिताननाः।

दृग्भिः पुनर्नेत्रमनोरसायनम्

स्वानन्दमूर्तिं मनसाभिरेभिरे॥ २८॥

रामः स्मितस्निग्धदृशा प्रजास्तथा पश्यन् प्रजानाथ इवापरः प्रभुः।

शनैर्जगामाथ पितुः स्वलङ्कृतम्

गृहं महेन्द्रालयसन्निभं हरिः॥२९॥

प्रविश्य वेश्मान्तरसंस्थितो मुदा रामो ववन्दे चरणौ स्वमातुः। क्रमेण सर्वाः पितृयोषितः प्रभुः

ननाम भक्त्या रघुवंशकेतुः॥३०॥

ततो भरतमाहेदं रामः सत्यपराक्रमः। सर्वसम्पत्समायुक्तं मम मन्दिरमुत्तमम्॥३१॥

मित्राय वानरेन्द्राय सुग्रीवाय प्रदीयताम्। सर्वैभ्यः सुखवासार्थं मन्दिराणि प्रकल्पय॥३२॥

रामेणैवं समादिष्टो भरतश्च तथाऽकरोत्। उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः॥३३॥ राघवस्याभिषेकार्थं चतुःसिन्धुजलं शुभम्। आनेतुं प्रेषयस्वाऽऽशु दूतांस्त्वरितविक्रमान्॥३४॥ प्रेषयामास सुग्रीवो जाम्बवन्तं मरुत्सुतम्। अङ्गदं च सुषेणं च ते गत्वा वायुवेगतः॥३५॥ जलपूर्णान् शातकुम्भकलशांश्च समानयन्। आनीतं तीर्थसिललं रात्रुघ्नो मन्त्रिभिः सह॥३६॥ राघवस्याभिषेकार्थं वसिष्ठाय न्यवेदयत्। ततस्तु प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह॥३७॥ रामं रत्नमये पीठे ससीतं सन्न्यवेशयत्। वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिगौतमस्तथा॥३८॥ वाल्मीकिश्च तथा चकुः सर्वे रामाभिषेचनम्। कुशायतुलसीयुक्तपुण्यगन्धजलैर्मुदा 113911 अभ्यषिञ्चन् रघुश्रेष्ठं वासवं वसवो यथा। ऋत्विग्भिर्बाह्मणैः श्रेष्ठैः कन्याभिः सह मन्त्रिभिः॥४०॥

सर्वौषधिरसैश्चेव दैवतैर्नभिस स्थितैः। चतुर्भिर्लोकपालैश्च स्तुवद्भिः सगणैस्तथा॥४१॥ छत्रं च तस्य जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्। सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ तौ दधतुः श्वेतचामरे॥४२॥ मालां च काञ्चनीं वायुर्ददौ वासवचोदितः। सर्वरत्नसमायुक्तं मणिकाञ्चनभूषितम्॥४३॥ ददौ हारं नरेन्द्राय स्वयं शकस्तु भक्तितः। प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥४४॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात खात्। नवदूर्वाद्लइयामं पद्मपत्रायतेक्षणम्॥४५॥ रविकोटिप्रभायुक्तिकरीटेन विराजितम्। कोटिकन्दर्पलावण्यं पीताम्बरसमावृतम्॥४६॥ दिव्याभरणसम्पन्नं दिव्यचन्दनलेपनम्। अयुतादित्यसङ्काशं द्विभुजं रघुनन्दनम्॥४७॥ वामभागे समासीनां सीतां काञ्चनसन्निभाम्। सर्वाभरणसम्पन्नां वामाङ्के समुपस्थिताम्॥४८॥ रक्तोत्पलकराम्भोजां वामेनाऽऽलिङ्य संस्थितम्। सर्वातिशयशोभाढ्यं दृष्ट्वा भक्तिसमन्वितः॥४९॥ उमया सहितो देवः शङ्करो रघुनन्दनम्। सर्वदेवगणैर्युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे॥५०॥ श्रीमहादेव उवाच नमोऽस्तु रामाय सशक्तिकाय नीलोत्पलश्यामलकोमलाय।

किरीटहाराङ्गदभूषणाय सिंहासनस्थाय महाप्रभाय॥५१॥ त्वमादिमध्यान्तविहीन एकः

सृजस्यवस्यत्सि च लोकजातम्। स्वमायया तेन न लिप्यसे त्वम् यत्स्वे सुखेऽजस्त्ररतोऽनवद्यः॥५२॥

लीलां विधत्से गुणसंवृतस्त्वम्

प्रपन्नभक्तानुविधानहेतोः ।

नानावतारैः सुरमानुषाद्यैः प्रतीयसे ज्ञानिभिरेव नित्यम्॥५३॥ स्वांशेन लोकं सकलं विधाय तम् बिभर्षि च त्वं तद्धः फणीश्वरः। उपर्यधो भान्वनिलोडुपौषधि-प्रवर्षरूपोऽवसि नैकधा जगत्॥५४॥

त्विमह देहभृतां शिखिरूपः
पचिस भुक्तमशेषमजस्त्रम्।
पवनपञ्चकरूपसहायो
जगदखण्डमनेन बिभर्षि॥५५॥

चन्द्रसूर्यशिखिमध्यगतं यत् तेज ईश चिदशेषतनृनाम्। प्राभवत्तनुभृतामिव धेर्यम् शौर्यमायुरखिलं तव सत्त्वम्॥५६॥

त्वं विरिश्चिशिवविष्णुविभेदात् कालकर्मशशिसूर्यविभागात्। वादिनां पृथगिवेश विभासि ब्रह्म निश्चितमनन्यदिहैकम्॥५७॥ मत्स्यादिरूपेण यथा त्वमेकः श्रुतौ पुराणेषु च लोकसिद्धः। तथैव सर्वं सदसद्विभाग-स्त्वमेव नान्यद्भवतो विभाति॥५८॥

यद्यत्समृत्पन्नमनन्तसृष्टा-वुत्पत्स्यते यच भवच यच। न दृश्यते स्थावरजङ्गमादौ त्वया विनातःपरतः परस्त्वम्॥५९॥

तत्त्वं न जानन्ति परात्मनस्ते जनाः समस्तास्तव माययातः। त्वद्भक्तसेवाऽमलमानसानाम् विभाति तत्त्वं परमेकमैशम्॥६०॥

ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपम् चिदात्मतत्त्वं बहिरर्थभावाः। ततो बुधस्त्वामिदमेव रूपम् भक्त्या भजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखः॥६१॥ अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थों वसामि काश्यामिनशं भवान्या। मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहम् दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥६२॥

इमं स्तवं नित्यमनन्यभक्त्या शृण्वन्ति गायन्ति लिखन्ति ये वै। ते सर्वसौख्यं परमं च लब्ध्वा भवत्पदं यान्तु भवत्प्रसादात्॥६३॥

इन्द्र उवाच रक्षोऽधिपेनाखिलदेव सौख्यम् हृतं च मे ब्रह्मवरेण देव। पुनश्च सर्वं भवतः प्रसादात् प्राप्तं हृतो राक्षसदृष्टशत्रुः॥६४॥

देवा ऊचुः

हृता यज्ञभागा धरादेवदत्ता मुरारे खलेनादिदैत्येन विष्णो। हृतोऽद्य त्वया नो वितानेषु भागाः पुरावद्भविष्यन्ति युष्मत्प्रसादात्॥६५॥

पितर ऊचुः

हतोऽद्य त्वया दुष्टदैत्यो महात्मन् गयादौ नरैर्दत्तिपण्डादिकान्नः। बलादित्त हत्वा गृहीत्वा समस्ता-निदानीं पुनर्लब्धसत्त्वा भवामः॥६६॥

यक्षा ऊचुः

सदा विष्टिकर्मण्यनेनाभियुक्ता वहामो दशास्यं बलादुःखयुक्ताः। दुरात्मा हतो रावणो राघवेश त्वया ते वयं दुःखजाताद्विमुक्ताः॥ ६७॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं सङ्गीतनिपुणा गायन्तस्ते कथामृतम्। आनन्दामृतसन्दोहयुक्ताः पूर्णाः स्थिताः पुरा॥६८॥

पश्चाद्दुरात्मना राम रावणेनाभिविद्धताः। तमेव गायमानाश्च तदाराधनतत्पराः॥६९॥

स्थितास्त्वया परित्राता हतोऽयं दुष्टराक्षसः। एवं महोरगाः सिद्धाः किन्नरा मरुतस्तथा॥७०॥

वसवो मुनयो गावो गुह्यकाश्च पतित्वणः। सप्रजापतयश्चैते तथा चाप्सरसां गणाः॥७१॥

सर्वे रामं समासाद्य दृष्ट्वा नेत्रमहोत्सवम्। स्तुत्वा पृथक् पृथक् सर्वे राघवेणाभिवन्दिताः॥७२॥

ययुः स्वं स्वं पदं सर्वे ब्रह्मरुद्रादयस्तथा। प्रशंसन्तो मुदा रामं गायन्तस्तस्य चेष्टितम्॥७३॥

ध्यायन्तस्त्वभिषेकार्द्रं सीतालक्ष्मणसंयुतम्। सिंहासनस्थं राजेन्द्रं ययुः सर्वे हृदि स्थितम्॥७४॥ खे वाद्येषु ध्वनत्सु प्रमुदितहृदयैर्देववृन्दैः स्तुवद्भिः वर्षद्भिःपुष्पवृष्टिं दिवि मुनिनिकरैरीङ्यमानः समन्तात्।

रामः इयामः प्रसन्नस्मितरुचिरमुखः सूर्यकोटिप्रकाशः सीतासौमित्रिवातात्मजमुनिहरिभिः सेव्यमानो विभाति॥७५॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पञ्चदशः सर्गः॥ १५॥

॥ षोडशः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्रे सर्वलोकसुखावहे। वसुधा सस्यसम्पन्ना फलवन्तो महीरुहाः॥१॥

गन्धहीनानि पुष्पाणि गन्धवन्ति चकाशिरे। सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा॥२॥

ददौ रातवृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो रघुनन्दनः। त्रिंशत्कोटि सुवर्णस्य बाह्मणेभ्यो ददौ पुनः॥३॥

वस्त्राभरणरत्नानि ब्राह्मणेभ्यो मुदा तथा। सूर्यकान्तिसमप्रख्यां सर्वरत्नमयीं स्रजम्॥४॥ सुग्रीवाय दुदौ प्रीत्या राघवो भक्तवत्सलः। अङ्गदाय ददौ दिव्ये ह्यङ्गदे रघुनन्दनः॥५॥ चन्द्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम्। सीतायै प्रद्दौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः॥६॥ अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी। अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः॥७॥ रामस्तामाह वैदेहीमिङ्गितज्ञो विलोकयन्। वैदेहि यस्य तुष्टाऽसि देहि तस्मै वरानने॥८॥ हनूमते दुदौ हारं पश्यतो राघवस्य च। तेन हारेण शुशुभे मारुतिगौरवेण च॥९॥ रामोऽपि मारुतिं दृष्ट्वा कृताञ्जलिमुपस्थितम्। भक्त्या परमया तुष्ट इदं वचनमब्रवीत्॥१०॥ हनूमंस्ते प्रसन्नोऽस्मि वरं वरय काङ्क्षितम्। दास्यामि देवैरपि यदुर्लमं भुवनत्रये॥११॥

हनूमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्ट्धीः। त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम॥१२॥ अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले। यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम्॥१३॥ मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकाङ्क्षितः। रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम्॥ १४॥ कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः। तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते॥१५॥ स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममऽऽज्ञया। इत्युक्तो मारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्यां प्रहृष्टधीः॥१६॥ आनन्दाश्रुपरीताक्षो भूयो भूयः प्रणम्य तौ। कृच्छाद्ययौ तपस्तप्तुं हिमवन्तं महामतिः॥१७॥ ततो गृहं समासाद्य रामः प्राञ्जलिमब्रवीत्। सखे गच्छ पुरं रम्यं शृङ्गवेरमनुत्तमम्॥१८॥ मामेव चिन्तयन्नित्यं भुङ्ख भोगान्निजार्जितान्। अन्ते ममैव सारूप्यं प्राप्त्यसे त्वं न संशयः॥१९॥

इत्युक्तवा प्रददौ तस्मै दिव्यान्याभरणानि च। राज्यं च विपुलं दत्त्वा विज्ञानं च ददौ विभुः॥२०॥ रामेणाऽऽलिङ्गितो हृष्टो ययौ स्वभवनं गृहः। ये चान्ये वानराः श्रेष्ठा अयोध्यां समुपागताः॥२१॥ अमूल्याभरणैर्वस्त्रेः पूजयामास राघवः। सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे वानराः सविभीषणाः॥२२॥ यथाईं पूजितास्तेन रामेण परमात्मना। प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथाऽऽगतम्॥२३॥ सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे किष्किन्धां प्रययुर्मुदा। विभीषणस्तु सम्प्राप्य राज्यं निहतकण्टकम्॥२४॥ रामेण पूजितः प्रीत्या ययौ लङ्कामनिन्दितः। राघवो राज्यमिवलं शशासाखिलवत्सलः॥२५॥ अनिच्छन्नपि रामेण यौवराज्येऽभिषेचितः। लक्ष्मणः परया भक्त्या रामसेवापरोऽभवत्॥२६॥ रामस्तु परमात्माऽपि कर्माध्यक्षोऽपि निर्मलः। कर्तृत्वादि विहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा॥२७॥ स्वानन्देनापि तुष्टः सन् लोकानामुपदेशकृत्। अश्वमेधादियज्ञैश्च सर्वैर्विपुलदक्षिणैः॥२८॥

अयजत्परमानन्दो मानुषं वपुराश्रितः। न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्॥२९॥

न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासित। लोके दस्युभयं नासीदनर्थो नास्ति कश्चन॥३०॥

वृद्धेषु सत्सु बालानां नासीन्मृत्युभयं तथा। रामपूजापराः सर्वे सर्वे राघवचिन्तकाः॥३१॥

ववर्षुर्जलदास्तोयं यथाकालं यथारुचि। प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः॥३२॥

औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत्प्रजाः। सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वधर्मपरायणः॥३३॥

द्शवर्षसहस्राणि रामो राज्यमुपास्त सः॥३४॥

इदं रहस्यं धनधान्यऋदिम-दीर्घायुरारोग्यकरं सुपुण्यदम्। पवित्रमाध्यात्मिकसंज्ञितं पुरा रामायणं भाषितमादिशम्भुना॥३५॥

शृणोति भक्त्या मनुजः समाहितो भक्त्या पठेद्वा परितुष्टमानसः। सर्वाः समाप्नोति मनोगताशिषो विमुच्यते पातककोटिभिः क्षणात्॥ ३६॥

रामाभिषेकं प्रयतः शृणोति यो धनाभिलाषी लभते महद्धनम्। पुत्राभिलाषी सुतमार्यसम्मतम् प्राप्नोति रामायणमादितः पठन्॥३७॥

शृणोति योऽध्यात्मिकरामसंहिताम् प्राप्नोति राजा भुवमृद्धसम्पदम्। शत्रुन् विजित्यारिभिरप्रधर्षितो व्यपेतदुःखो विजयी भवेन्नृपः॥३८॥ स्त्रियोऽपि शृण्वन्त्यिधरामसंहिताम् भवन्ति ता जीविसुताश्च पूजिताः। वन्ध्याऽपि पुत्रं लभते सुरूपिणम् कथामिमां भक्तियुता शृणोति या॥३९॥

श्रद्धान्वितो यः श्रणुयात्पठेन्नरो विजित्य कोपं च तथा विमत्सरः। दुर्गाणि सर्वाणि विजित्य निर्भयो भवेत्सुखी राघवभक्तिसंयुतः॥४०॥

सुराः समस्ता अपि यान्ति तुष्टताम् विद्वाः समस्ता अपयान्ति शृण्वताम्। अध्यात्मरामायणमादितो नृणाम् भवन्ति सर्वा अपि सम्पदः पराः॥४१॥

रजस्वला वा यदि रामतत्परा शृणोति रामायणमेतदादितः। पुत्रं प्रसूते ऋषभं चिरायुषम् पतिव्रता लोकसुपूजिता भवेत्॥४२॥ पूजियत्वा तु ये भक्त्या नमस्कुर्वन्ति नित्यशः। सर्वैः पापैर्विनिर्मुक्ता विष्णोर्यान्ति परं पदम्॥४३॥

अध्यात्मरामचरितं कृत्स्नं शृण्वन्ति भक्तितः। पठन्ति वा स्वयं वक्रात्तेषां रामः प्रसीद्ति॥४४॥

राम एव परं ब्रह्म तस्मिंस्तुष्टेऽखिलात्मिन। धर्मार्थकाममोक्षाणां यद्यदिच्छति तद्भवेत्॥४५॥

श्रोतव्यं नियमेनैतद्रामायणमखण्डितम्। आयुष्यमारोग्यकरं कल्पकोट्यघनाशनम्॥४६॥

देवाश्च सर्वे तुष्यन्ति ग्रहाः सर्वे महर्षयः। रामायणस्य श्रवणे तृप्यन्ति पितरस्तथा॥४७॥

अध्यात्मरामायणमेतद्द्भुतम् वैराग्यविज्ञानयुतं पुरातनम्। पठन्ति शृण्वन्ति लिखन्ति ये नराः तेषां भवेऽस्मिन्न पुनर्भवो भवेत्॥४८॥ आलोड्याखिलवेदराशिमसकृद्यत्तारकं ब्रह्म तद्-रामो विष्णुरहस्यमूर्तिरिति यो विज्ञाय भूतेश्वरः। उद्घृत्याखिलसारसङ्ग्रहमिदं सङ्क्षेपतः प्रस्फुटम् श्रीरामस्य निगूढतत्त्वमखिलं प्राह प्रियायै भवः॥४९॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे यद्धकाण्डे षोडश

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे षोडशः सर्गः॥ १६॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डः समाप्तः॥

॥ उत्तरकाण्डः ॥

॥प्रथमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

जयित रघुवंशितिलकः कौसल्याहृदयनन्दनो रामः। दशवदननिधनकारी दाशरिथः पुण्डरीकाक्षः॥१॥

पार्वत्युवाच

अथ रामः किमकरोत्कौसल्यानन्दवर्धनः। हत्वा मृधे रावणादीन् राक्षसान् भीमविक्रमः॥२॥ अभिषिक्तस्त्वयोध्यायां सीतया सह राघवः। मायामानुषतां प्राप्य कित वर्षाणि भूतले॥३॥ स्थितवान् लीलया देवः परमात्मा सनातनः। अत्यजन्मानुषं लोकं कथमन्ते रघूद्वहः॥४॥ एतदाख्याहि भगवन् श्रद्दधत्या मम प्रभो। कथापीयुषमास्वाद्य तृष्णा मेऽतीव वर्धते। रामचन्द्रस्य भगवन् ब्रूहि विस्तरशः कथाम्॥५॥

श्रीमहादेव उवाच

राक्षसानां वधं कृत्वा राज्ये राम उपस्थिते। आययुर्मुनयः सर्वे श्रीराममभिवन्दितुम्॥६॥

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः। करयपो वामदेवोऽत्रिस्तथा सप्तर्षयोऽमलाः॥७॥

अगस्त्यः सह शिष्यैश्च मुनिभिः सहितोऽभ्यगात्। द्वारमासाद्य रामस्य द्वारपालमथाबवीत्॥८॥

ब्रूहि रामाय मुनयः समागत्य बहिःस्थिताः। अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे आशीर्भिरभिनन्दितुम्॥९॥

प्रतीहारस्ततो राममगस्त्यवचनाद् द्रुतम्। नमस्कृत्याब्रवीद्वाक्यं विनयावनतः प्रभुम्॥१०॥ कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो मुनिभिः सह। देव त्वद्दर्शनार्थाय प्राप्तो बहिरुपस्थितः॥११॥ तमुवाच द्वारपालं प्रवेशय यथासुखम्। पूजिता विविशुर्वेश्म नानारत्नविभूषितम्॥ १२॥ दृष्ट्वा रामो मुनीन् शीघ्रं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः। पाद्यार्घ्यादिभिरापूज्य गां निवेद्य यथाविधि॥१३॥ नत्वा तेभ्यो ददौ दिव्यान्यासनानि यथाईतः। उपविष्टा प्रहृष्टाश्च मुनयो रामपूजिताः॥१४॥ सम्पृष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमबुवन्। कुरालं ते महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन॥१५॥ दिष्ट्येदानीं प्रपश्यामो हतशत्रुमरिन्दम। न हि भारः स ते राम रावणो राक्षसंश्वरः॥१६॥ सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन् विजेतुं शक्त एव हि। दिष्ट्या त्वया हताः सर्वे राक्षसा रावणादयः॥१७॥

सह्यमेतन्महाबाहो रावणस्य निबर्हणम्। असह्यमेतत्सम्प्राप्तं रावणेर्यन्निषूद्नम्॥१८॥ अन्तकप्रतिमाः सर्वे कुम्भकर्णाद्यो मुधे। अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्हतास्ते रघुसत्तम॥१९॥ दत्ता चेयं त्वयाऽस्माकं पुरा ह्यभयदक्षिणा। हत्वा रक्षोगणान् सङ्ख्ये कृतकृत्योऽद्य जीवसि॥२०॥ श्रुत्वा तु भाषितं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत्॥२१॥ रावणादीनतिकम्य कुम्भकर्णादिराक्षसान्। त्रिलोकजयिनो हित्वा किं प्रशंसथ रावणिम्॥२२॥ ततस्तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः। कुम्भयोनिर्महातेजा रामं प्रीत्या वचोऽब्रवीत्॥२३॥ शृणु राम यथा वृत्तं रावणे रावणस्य च। जन्म कर्म वरादानं सङ्खेपाद्वदतो मम॥२४॥ पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः। तपस्तप्तुं गतो विद्वान् मेरोः पार्श्वं महामतिः॥२५॥

तृणबिन्दोराश्रमेऽसौ न्यवसन्मुनिपुङ्गवः। तपस्तेपे महातेजाः स्वाध्यायनिरतः सदा॥२६॥ तत्राऽऽश्रमे महारम्ये देवगन्धर्वकन्यकाः। गायन्त्यो ननृतुस्तत्र हसन्त्यो वादयन्ति च॥२७॥ पुलस्त्यस्य तपोविघ्नं चक्रुः सर्वा अनिन्दिताः। ततः कुद्धो महातेजा व्याजहार वचो महत्॥२८॥ या मे दृष्टिपथं गच्छेत्सा गर्भं धारियष्यति। ताः सर्वाः शापसंविम्ना न तं देशं प्रचक्रमुः॥२९॥ तृणबिन्दोस्तु राजर्षेः कन्या तन्नाशृणोद्वचः। विचचार मुनेरग्रे निर्भया तं प्रपश्यती॥३०॥ बभूव पाण्डुरतनुर्व्यञ्जितान्तःशरीरजा। दृष्ट्रा सा देहवैवर्ण्यं भीता पितरमन्वगात्॥ ३१॥ तृणबिन्दुश्च तां दृष्ट्वा राजिषरमितद्युतिः। ध्यात्वा मुनिकृतं सर्वमवैद्विज्ञानचक्षुषा॥३२॥ तां कन्यां मुनिवर्याय पुलस्त्याय ददौ पिता। तां प्रगृह्याब्रवीत्कन्यां बाढिमत्येव स द्विजः॥३३॥

शुश्रूषणपरां दृष्ट्वा मुनिः प्रीतोऽब्रवीद्वचः। दास्यामि पुत्रमेकं ते उभयोर्वशवर्धनम्॥३४॥ ततः प्रासूत सा पुत्रं पुलस्त्याल्लोकविश्रुतम्। विश्रवा इति विख्यातः पौलस्त्यो ब्रह्मविन्मुनिः॥३५॥ तस्य शीलादिकं दृष्ट्वा भरद्वाजो महामुनिः। भार्यार्थं स्वां दृहितरं ददौ विश्रवसे मुदा॥३६॥ तस्यां तु पुत्रः सञ्जज्ञे पौलस्त्याल्लोकसम्मतः। पितृतुल्यो वैश्रवणो ब्रह्मणा चानुमोदितः॥३७॥ ददौ तत्तपसा तुष्टो ब्रह्मा तस्मै वरं शुभम्। मनोऽभिलिषतं तस्य धनेशत्वमखण्डितम्॥३८॥ ततो लब्धवरः सोऽपि पितरं द्रष्ट्रमागतः। पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता॥३९॥ नमस्कृत्याथ पितरं निवेद्य तपसः फलम्। प्राह मे भगवान् ब्रह्मा दत्त्वा वरमनिन्दितम्॥४०॥ निवासाय न मे स्थानं दत्तवान् परमेश्वरः। ब्रूहि मे नियतं स्थानं हिंसा यत्र न कस्यचित्॥४१॥

विश्रवा अपि तं प्राह लङ्कानाम पुरी शुभा। राक्षसानां निवासाय निर्मिता विश्वकर्मणा॥४२॥ त्यक्तवा विष्णुभयाद्दैत्या विविशुस्ते रसातलम्। पुरी दुष्प्रधर्षान्यैर्मध्येसागरमास्थिता॥४३॥ तत्र वासाय गच्छ त्वं नान्यैः साधिष्ठिता पुरा। पित्रादिष्टस्त्वसौ गत्वा तां पुरीं धनदोऽविशत्॥४४॥ स तत्र सुचिरं कालमुवास पितृसम्मतः। कस्यचित्त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः॥४५॥ रसातलान्मर्त्यलोकं चचार पिशिताशनः। गृहीत्वा तनयां कन्यां साक्षाद्देवीमिव श्रियम्॥४६॥ अपश्यद्धनदं देवं चरन्तं पुष्पकेण सः। हिताय चिन्तयामास राक्षसानां महामनाः॥४७॥ उवाच तनयां तत्र कैकसीं नाम नामतः। वत्से विवाहकालस्ते यौवनं चातिवर्तते॥४८॥ प्रत्याख्यानाच भीतैस्त्वं न वरैर्गृह्यसे शुभे। सा त्वं वरय भद्रं ते मुनिं ब्रह्मकुलोद्भवम्॥४९॥

स्वयमेव ततः पुत्रा भविष्यन्ति महाबलाः। ईटशाः सर्वशोभाढ्या धनदेन समाः शुभे॥५०॥ तथेति साऽऽश्रमं गत्वा मुनेरग्रे व्यवस्थिता। लिखन्ती भुवमग्रेण पादेनाधोमुखी स्थिता॥५१॥ तामपुच्छन्मुनिः का त्वं कन्याऽसि वरवर्णिनि। साऽब्रवीत्प्राञ्जलिर्बह्मन् ध्यानेन ज्ञातुमर्हसि॥५२॥ ततो ध्यात्वा मुनिः सर्वं ज्ञात्वा तां प्रत्यभाषत। ज्ञातं तवाभिलिषतं मत्तः पुत्रानभीप्स्यसि॥५३॥ दारुणायां तु वेलायामागताऽसि सुमध्यमे। अतस्ते दारुणौ पुत्रौ राक्षसौ सम्भविष्यतः॥५४॥ साऽब्रवीन्मुनिशार्द्रल त्वत्तोऽप्येवंविधौ सुतौ। तामाह पश्चिमो यस्ते भविष्यति महामतिः॥५५॥ महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्येकतत्परः। इत्युक्ता सा तथा काले सुषुवे दशकन्धरम्॥५६॥ रावणं विंशतिभुजं दशशीर्षं सुदारुणम्। तद्रक्षोजातमात्रेण चचाल च वसुन्धरा॥५७॥

बभूवुर्नाशहेतूनि निमित्तान्यखिलान्यपि। क्रम्भकर्णस्ततो जातो महापर्वतसन्निभः॥५८॥ ततः शूर्पणखा नाम जाता रावणसोद्री। ततो विभीषणो जातः शान्तात्मा सौम्यदुर्शनः॥५९॥ स्वाध्यायी नियताहारो नित्यकर्मपरायणः। कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा द्विजान् सन्तुष्टचेतसः॥६०॥ भक्षयन्नषिसङ्घांश्च विचचारातिदारुणः। रावणोऽपि महासत्त्वो लोकानां भयदायकः। ववृधे लोकनाशाय ह्यामयो देहिनामिव॥६१॥ राम त्वं सकलान्तरस्थमभितो जानासि विज्ञानदक् साक्षी सर्वहृदि स्थितो हि परमो नित्योदितो निर्मलः। त्वं लीलामनुजाकृतिः स्वमहिमन् मायागुणैर्नाज्यसे लीलार्थं प्रतिचोदितोऽद्य भवता वक्ष्यामि रक्षोद्भवम्॥६२॥ जानामि केवलमनन्तमचिन्त्यशक्तिम् चिन्मात्रमक्षरमजं विदितात्मतत्त्वम्। त्वां राम गूढनिजरूपमनुप्रवृत्तो मूढोऽप्यहं भवद्नुग्रहतश्चरामि॥६३॥

एवं वदन्तिमनवंशपिवत्रकीर्तिः कुम्भोद्भवं रघुपितः प्रहसन् बभाषे। मायाश्रितं सकलमेतदनन्यकत्वात् मत्कीर्तनं जगित पापहरं निबोध॥६४॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः॥ १॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

श्रीरामवचनं श्रुत्वा परमानन्दनिर्भरः। मुनिः प्रोवाच सदसि सर्वेषां तत्र शृणवताम्॥१॥

अथ वित्तेश्वरो देवस्तत्र कालेन केनचित्। आययौ पुष्पकारूढः पितरं द्रष्ट्रमञ्जसा॥२॥

दृष्ट्वा तं कैकसी तत्र भ्राजमानं महौजसम्। राक्षसी पुत्रसामीप्यं गत्वा रावणमबवीत्॥३॥ पुत्र पश्य धनाध्यक्षं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा। त्वमप्येवं यथा भूयास्तथा यत्नं कुरु प्रभो॥४॥

तच्छुत्वा रावणो रोषात् प्रतिज्ञामकरोद्रुतम्। धनदेन समो वाऽपि ह्यधिको वाऽचिरेण तु॥५॥

भविष्याम्यम्ब मां पश्य सन्तापं त्यज सुव्रते। इत्युक्तवा दुष्करं कर्तुं तपः स दशकन्धरः॥६॥

अगमत्फलसिद्धर्थं गोकर्णं तु सहानुजः। स्वं स्वं नियममास्थाय भ्रातरस्ते तपो महत्॥७॥

आस्थिता दुष्करं घोरं सर्वलोकैकतापनम्। दशवर्षसहस्राणि कुम्भकर्णोऽकरोत्तपः॥८॥

विभीषणोऽपि धर्मात्मा सत्यधर्मपरायणः। पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान्॥९॥

दिव्यवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः। पूर्णे वर्षसहस्रे तु शीर्षमग्नौ जुहाव सः। एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः॥१०॥ अथ वर्षसहस्रं तु दशमे दशमं शिरः। छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्राप्तश्चाथ प्रजापतिः। वत्स वत्स दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत॥११॥

वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि काङ्क्षितम्। दशग्रीवोऽपि तच्छुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥१२॥

अमरत्वं वृणोमीश वरदो यदि मे भवान्। सुपर्णनागयक्षाणां देवतानां तथाऽसुरैः। अवध्यत्वं तु मे देहि तृणभूता हि मानुषाः॥१३॥

तथाऽस्त्विति प्रजाध्यक्षः पुनराह दशाननम्। अग्नौ हुतानि शीर्षाणि यानि तेऽसुरपुङ्गव॥१४॥

भविष्यन्ति यथापूर्वमक्षयाणि च सत्तम॥ १५॥

एवमुक्त्वा ततो राम दशयीवं प्रजापतिः। विभीषणमुवाचेदं प्रणतं भक्तवत्सलः॥१६॥

विभीषण त्वया वत्स कृतं धर्मार्थमुत्तमम्। तपस्ततो वरं वत्स वृणीष्वाभिमतं हितम्॥१७॥

विभीषणोऽपि तं नत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत। देव मे सर्वदा बुद्धिर्धर्मे तिष्ठतु शाश्वती। मा रोचयत्वधर्मं मे बुद्धिः सर्वत्र सर्वदा॥१८॥ ततः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमथाब्रवीत्। वत्स त्वं धर्मशीलोऽसि तथैव च भविष्यसि॥१९॥ अयाचितोऽपि ते दास्ये ह्यमरत्वं विभीषण। कुम्भकर्णमथोवाच वरं वरय सुव्रत॥२०॥ वाण्या व्याप्तोऽथ तं प्राह कुम्भकर्णः पितामहम्। स्वप्स्यामि देव षण्मासान् दिनमेकं तु भोजनम्॥२१॥ एवमस्त्वित तं प्राह ब्रह्मा दृष्ट्वा दिवौकसः। सरस्वती च तद्वकान्निर्गता प्रययौ दिवम्॥२२॥ कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः। अनिभप्रेतमेवास्यात्किं निर्गतमहो विधिः॥२३॥ सुमाली वरलब्यांस्तान् ज्ञात्वा पौत्रान् निशाचरान्। पातालान्निर्भयः प्रायात् प्रहस्तादिभिरन्वितः॥२४॥ दशग्रीवं परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत्। दिष्ट्या ते पुत्र संवृत्तो वाञ्छितो मे मनोरथः॥२५॥

यद्भयाच्च वयं लङ्कां त्यक्तवा याता रसातलम्। तद्गतं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम्॥२६॥ अस्माभिः पूर्वमुषिता लङ्केयं धनदेन ते। भ्रात्राकान्तामिदानीं त्वं प्रत्यानेतुमिहाईसि॥२७॥ साम्ना वाऽथ बलेनापि राज्ञां बन्धुः कुतः सुहृत्। इत्युक्तो रावणः प्राह नार्हस्येवं प्रभाषितुम्॥२८॥ वित्तेशो गुरुरस्माकमेवं श्रुत्वा तमब्रवीत्। प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यं रावणं दशकन्धरम्॥२९॥ शृणु रावण यत्नेन नैवं त्वं वक्तुमहिसि। नाधीता राजधर्मास्ते नीतिशास्त्रं तथैव च॥३०॥ शूराणां न हि सौभ्रात्रं शृणु मे वद्तः प्रभो। कश्यपस्य सुता देवा राक्षसाश्च महाबलाः॥३१॥ परस्परमयुध्यन्त त्यक्तवा सौहृदमायुधैः। नैवेदानीन्तनं राजन् वैरं देवैरनुष्ठितम्॥३२॥ प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा दशग्रीवो दुरात्मनः। तथेति कोधताम्राक्षस्त्रिकूटाचलमन्वगात्॥३३॥

दूतं प्रहस्तं सम्प्रेष्य निष्कास्य धनदेश्वरम्। लङ्कामाक्रम्य सचिवै राक्षसैः सुखमास्थितः॥३४॥ धनदः पितृवाक्येन त्यक्त्वा लङ्कां महायशाः। गत्वा कैलासिशाखरं तपसाऽतोषयच्छिवम्॥३५॥ तेन संख्यमनुप्राप्य तेनैव परिपालितः। अलकां नगरीं तत्र निर्ममे विश्वकर्मणा॥३६॥ दिक्पालत्वं चकारात्र शिवेन परिपालितः। रावणो राक्षसैः सार्धमभिषिक्तः सहानुजैः॥३७॥ राज्यं चकारासुराणां त्रिलोकीं बाधयन् खलः। भगिनीं कालखञ्जाय ददौ विकटरूपिणीम्॥३८॥ विद्युजिह्वाय नाम्नासौ महामायी निशाचरः। ततो मयो विश्वकर्मा राक्षसानां दितेः सुतः॥३९॥ सुतां मन्दोदरीं नाम्ना ददौ लोकैकसुन्दरीम्। रावणाय पुनः शक्तिममोघां प्रीतमानसः॥४०॥ वैरोचनस्य दौहित्रीं वृत्रज्वालेति विश्रुताम्। स्वयं दत्तामुद्वहत्कुम्भकर्णाय रावणः॥४१॥

गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः। विभीषणस्य भार्यार्थे धर्मज्ञां समुदावहत्॥४२॥ सरमां नाम सुभगां सर्वलक्षणसंयुताम्। ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत्॥४३॥ जातमात्रस्तु यो नादं मेघवत्प्रमुमोच ह। ततः सर्वेऽब्रुवन्मेघनादोऽयमिति चासकृत्॥४४॥ कुम्भकर्णस्ततः प्राह निद्रा मां बाधते प्रभो। ततश्च कारयामास गृहां दीर्घां सुविस्तराम्॥४५॥ तत्र सुष्वाप मूढात्मा कुम्भकर्णो विघूर्णितः। निद्रिते कुम्भकर्णे तु रावणो लोकरावणः॥४६॥ ब्राह्मणान् ऋषिमुख्यांश्च देवदानविकन्नरान्। देवश्रियो मनुष्यांश्च निजन्ने समहोरगान्॥४७॥ धनदोऽपि ततः श्रुत्वा रावणस्याक्रमं प्रभुः। अधर्मं मा कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयत्॥४८॥ ततः कुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम्। विनिर्जित्य धनाध्यक्षं जहारोत्तमपुष्पकम्॥४९॥

ततो यमं च वरुणं निर्जित्य समरेऽसुरः। स्वर्गलोकमगात्तूर्णं देवराजजिघांसया॥५०॥ ततोऽभवन्महद्युद्धमिन्द्रेण सह दैवतैः। ततो रावणमभ्येत्य बबन्ध त्रिदशेश्वरः॥५१॥ तच्छुत्वा सहसाऽऽगत्य मेघनादः प्रतापवन्। कृत्वा घोरं महद्युद्धं जित्वा त्रिदशपुङ्गवान्॥५२॥ इन्द्रं गृहीत्वा बध्वाऽसौ मेघनादो महाबलः। मोचियत्वा तु पितरं गृहीत्वेन्द्रं ययौ पुरम्॥५३॥ ब्रह्मा तु मोचयामास देवेन्द्रं मेघनादतः। दत्त्वा वरान् बहुंस्तरमे ब्रह्मा स्वभवनं ययौ॥५४॥ रावणो विजयी लोकान् सर्वान् जित्वा क्रमेण तु। कैलासं तोलयामास बाह़भिः परिघोपमैः॥५५॥ तत्र नन्दीश्वरेणैवं शप्तोऽयं राक्षसेश्वरः। वानरैर्मानुषेश्चैव नाशं गच्छेति कोपिना॥५६॥ शप्तोऽप्यगणयन् वाक्यं ययौ हैहयपत्तनम्। तेन बद्धो दशग्रीवः पुलस्त्येन विमोचितः॥५७॥

ततोऽतिबलमासाद्य जिघांसुर्हरिपुङ्गवम्। धृतस्तेनैव कक्षेण वालिना दशकन्धरः॥५८॥ भ्रामियत्वा तु चतुरः समुद्रान् रावणं हरिः। विसर्जयामास ततस्तेन सख्यं चकार सः॥५९॥ रावणः परमप्रीत एवं लोकान् महाबलः। चकार स्ववशे राम बुभुजे स्वयमेव तान्॥६०॥ एवं प्रभावो राजेन्द्र दशग्रीवः सहेन्द्रजित्। त्वया विनिहतः सङ्ख्ये रावणो लोकरावणः॥६१॥ मेघनादश्च निहतो लक्ष्मणेन महात्मना। कुम्भकर्णश्च निहतस्त्वया पर्वतसन्निभः॥६२॥ भवान्नारायणः साक्षाज्जगतामादिकृद्विभुः। त्वत्स्वरूपमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥६३॥ त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः। अग्निस्ते मुखतो जातो वाचा सह रघूत्तम॥६४॥ बाहुभ्यां लोकपालौघाश्रक्षुभ्याः चन्द्रभास्करौ। दिशश्च विदिशश्चैव कर्णाभ्यां ते समुत्थिताः॥६५॥

घ्राणात्प्राणः समुत्पन्नश्चाश्विनौ देवसत्तमौ। जङ्घाजानूरुजघनाद्भवर्लीकाद्योऽभवन् ॥६६॥ कुक्षिदेशात्समृत्पन्नाश्चत्वारः सागरा हरे। स्तनाभ्यामिन्द्रवरुणौ वालखिल्याश्च रेतसः॥६७॥ मेढ़ाद्यमो गुदान्मृत्युर्मन्यो रुद्रस्त्रिलोचनः। अस्थिभ्यः पर्वता जाताः केशेभ्यो मेघसंहतिः॥६८॥ ओषध्यस्तव रोमेभ्यो नखेभ्यश्च खरादयः। त्वं विश्वरूपः पुरुषो मायाशक्तिसमन्वितः॥६९॥ नानारूप इवाऽऽभासि गुणव्यतिकरे सति। त्वामाश्रित्यैव विबुधाः पिबन्त्यमृतमध्वरे॥७०॥ त्वया सृष्टमिदं सर्वं विश्वं स्थावरजङ्गमम्। त्वामाश्रित्यैव जीवन्ति सर्वे स्थावरजङ्गमाः॥७१॥ त्वद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारेऽपि राघव। क्षीरमध्यगतं सर्पिर्यथा व्याप्याखिलं पयः॥७२॥ त्वद्भासा भासतेऽर्कादि न त्वं तेनावभाससे। सर्वगं नित्यमेकं त्वां ज्ञानचक्षुर्विलोकयेत्॥७३॥

नाज्ञानचक्षुस्त्वां पश्येदन्धदृग् भास्करं यथा। योगिनस्त्वां विचिन्वन्ति स्वदेहे परमेश्वरम्॥७४॥

अतन्निरसनमुखैर्वेदशीर्षैरहर्निशम् । त्वत्पादभक्तिलेशेन गृहीता यदि योगिनः॥७५॥

विचिन्वन्तो हि पश्यन्ति चिन्मात्रं त्वां न चान्यथा। मया प्रलपितं किञ्चित्सर्वज्ञस्य तवाग्रतः। क्षन्तुमर्हेसि देवेश तवानुग्रहभागहम्॥७६॥

दिग्देशकालपरिहीनमनन्यमेकम् चिन्मात्रमक्षरमजं चलनादिहीनम्। सर्वज्ञमीश्वरमनन्तगुणं व्युदस्त-मायं भजे रघुपतिं भजतामभिन्नम्॥ ७७॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥ २॥

॥ तृतीयः सर्गः॥

श्रीराम उवाच

वालिसुग्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। रवीन्द्रौ वानराकारौ जज्ञाताविति नः श्रुतम्॥१॥

अगस्त्य उवाच

स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यश्क्षे मणिप्रभे। तस्मिन् सभाऽऽस्ते विस्तीर्णा ब्रह्मणः शतयोजना॥२॥ तस्यां चतुर्मुखः साक्षात्कदाचिद्योगमास्थितः। नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमानन्दसिललं बहु॥३॥ तद्गृहीत्वा करे ब्रह्मा ध्यात्वा किञ्चित्तदृत्यजत्। भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः॥४॥ तमाह द्रुहिणो वत्स किञ्चित्कालं वसात्र मे। समीपे सर्वशोभाढ्ये ततः श्रेयो भविष्यति॥५॥ इत्युक्तो न्यवसत्तत्र ब्रह्मणा वानरोत्तमः। एवं बहुतिथे काले गते ऋक्षाधिपः सुधीः॥६॥ कदाचित्पर्यटन्नद्रौ फलमूलार्थमुद्यतः। अपश्यिद्वयसिललां वापीं मणिशिलान्विताम्॥७॥ पानीयं पातुमागच्छत्तत्र छायामयं कपिम्। दृष्ट्वा प्रतिकपिं मत्वा निपपात जलान्तरे॥८॥

तत्रादृष्ट्वा हरि शीघ्रं पुनरुत्सुत्य वानरः। अपश्यत्सुन्दरीं रामामात्मानं विस्मयं गतः॥९॥ ततः सुरेशो देवेशं पूजियत्वा चतुर्मुखम्। गच्छन् मध्याह्रसमये दृष्ट्वा नारीं मनोरमाम्॥१०॥ कन्दर्पशरविद्धाङ्गस्त्यक्तवान् वीर्यमुत्तमम्। तामप्राप्यैव तद्बीजं वालदेशेऽपतद्भवि॥११॥ वाली समभवत्तत्र शकतुल्यपराक्रमः। तस्य दत्त्वा सुरेशानः स्वर्णमालां दिवं गतः॥१२॥ भानुरप्यागतस्तत्र तदानीमेव भामिनीम्। दृष्ट्वा कामवशो भूत्वा ग्रीवादेशेऽसृजन्महत्॥१३॥ बीजं तस्यास्ततः सद्यो महाकायोऽभवद्धरिः। तस्य दत्त्वा हनूमन्तं सहायार्थं गतो रविः॥१४॥ पुत्रद्वयं समादाय गत्वा सा निद्रिता कचित्। प्रभातेऽपश्यदात्मानं पूर्ववद्वानराकृतिम्॥१५॥ फलमूलादिभिः सार्धं पुत्राभ्यां सहितः कपिः। नत्वा चतुर्मुखस्याये ऋक्षराजः स्थितः सुधीः॥१६॥ ततोऽब्रवीत्समाश्वास्य बहुशः किपकुञ्जरम्। तत्रैकं देवतादूतमाहृयामरसन्निभम्॥१७॥

गच्छ दूत मयाऽऽदिष्टो गृहीत्वा वानरोत्तमम्। किष्किन्धां दिव्यनगरीं निर्मितां विश्वकर्मणा॥१८॥

सर्वसौभाग्यवितां देवैरिप दुरासदाम्। तस्यां सिंहासने वीरं राजानमभिषेचय॥१९॥

सप्तद्वीपगता ये ये वानराः सन्ति दुर्जयाः। सर्वे ते ऋक्षराजस्य भविष्यन्ति वशेऽनुगाः॥२०॥

यदा नारायणः साक्षाद्रामो भूत्वा सनातनः। भूभारासुरनाशाय सम्भविष्यति भूतले॥२१॥

तदा सर्वे सहायार्थे तस्य गच्छन्तु वानराः। इत्युक्तो ब्रह्मणा दूतो देवानां स महामितः॥२२॥

यथाऽऽज्ञप्तस्तथा चक्रे ब्रह्मणा तं हरीश्वरम्। देवदूतस्ततो गत्वा ब्रह्मणे तन्न्यवेदयत्॥२३॥ तदादि वानराणां सा किष्किन्धाऽभून्नृपाश्रयः॥२४॥ सर्वेश्वरस्त्वमेवासीरिदानीं ब्रह्मणार्थितः। भूमेर्भारो हृतः कृत्स्नस्त्वया लीलानृदेहिना। सर्वभूतान्तरस्थस्य नित्यमुक्तचिदात्मनः॥२५॥

अखण्डानन्तरूपस्य कियानेष पराक्रमः। तथाऽपि वर्ण्यते सद्भिर्लीलामानुषरूपिणः॥२६॥

यशस्ते सर्वलोकानां पापहत्यै सुखाय च। य इदं कीर्तयेन्मर्त्यो वालिसुग्रीवयोर्महत्॥२७॥ जन्म त्वदाश्रयत्वात्स मुच्यते सर्वपातकैः॥२८॥

अथान्यां सम्प्रवक्ष्यामि कथां राम त्वदाश्रयाम्। सीता हृता यदर्थं सा रावणेन दुरात्मना॥२९॥

पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतं विभुम्। सनत्कुमारमेकान्ते समासीनं दशाननः। विनयावनतो भूत्वा ह्यभिवाद्येदमब्रवीत्॥३०॥

को न्वस्मिन् प्रवरो लोके देवानां बलवत्तरः। देवाश्च यं समाश्रित्य युद्धे शत्रुं जयन्ति हि॥३१॥ कं यजन्ति द्विजा नित्यं कं ध्यायन्ति च योगिनः। एतन्मे शंस भगवन् प्रश्नं प्रश्नविदां वर॥३२॥ ज्ञात्वा तस्य हृदिस्थं यत्तदशेषेण योगदृक्। दशाननमुवाचेदं शृणु वक्ष्यामि पुत्रक॥३३॥ भर्ता यो जगतां नित्यं यस्य जन्मादिकं न हि। सुरासुरैर्नुतो नित्यं हरिर्नारायणोऽव्ययः॥३४॥ यन्नाभिपङ्कजाज्ञातो ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः। सृष्टं येनैव सकलं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥३५॥ तं समाश्रित्य विबुधा जयन्ति समरे रिपून्। योगिनो ध्यानयोगेन तमेवानुजपन्ति हि॥३६॥ महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच दशाननः। दैत्यदानवरक्षांसि विष्णुना निहतानि च॥३७॥ कां वा गतिं प्रपद्यन्ते प्रेत्य ते मुनिपुङ्गव। तमुवाच मुनिश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम्॥३८॥ दैवतैर्निहता नित्यं गत्वा स्वर्गमनुत्तमम्। भोगक्षये पुनस्तस्माद्धष्टा भूमौ भवन्ति ते॥ ३९॥

पूर्वार्जितैः पुण्यपापैर्म्रियन्ते चोद्भवन्ति च। विष्णुना ये हतास्ते तु प्राप्नुवन्ति हरेर्गतिम्॥४०॥ श्रत्वा मुनिमुखात्सर्वं रावणो हृष्टमानसः। योत्स्येऽहं हरिणा सार्धमिति चिन्तापरोऽभवत्॥४१॥ मनःस्थितं परिज्ञाय रावणस्य महामुनिः। उवाच वत्स तेऽभीष्टं भविष्यति न संशय:॥४२॥ कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व सुखी भव दशानन। एवमुक्तवा महाबाहो मुनिः पुनरुवाच तम्॥४३॥ तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि ह्यरूपस्यापि मायिनः। स्थावरेषु च सर्वेषु नदेषु च नदीषु च॥४४॥ ओङ्कारश्चैव सत्यं च सावित्री पृथिवी च सः। समस्तजगदाधारः शेषरूपधरो हि सः॥४५॥ सर्वे देवाः समुद्राश्च कालः सूर्यश्च चन्द्रमाः। सूर्योदयो दिवारात्री यमश्चेव तथाऽनिलः॥४६॥ अग्निरिन्द्रस्तथा मृत्युः पर्जन्यो वसवस्तथा। ब्रह्मा रुद्रादयश्चैव ये चान्ये देवदानवाः॥४७॥

विद्योतते ज्वलत्येष पाति चात्तीति विश्वकृत्। क्रीडां करोत्यव्ययात्मा सोऽयं विष्णुः सनातनः॥४८॥ तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्। नीलोत्पलदलश्यामो विद्युद्वर्णाम्बरावृतः॥४९॥ शुद्धजाम्बूनदप्रख्यां श्रियं वामाङ्कसंस्थिताम्। सदानपायिनीं देवीं पश्यन्नालिज्ञा तिष्ठति॥५०॥ द्रष्टुं न शक्यते कैश्चिदेवदानवपन्नगैः। यस्य प्रसादं कुरुते स चैनं द्रष्ट्रमर्हति॥५१॥ न च यज्ञतपोभिर्वा न दानाध्ययनादिभिः। शक्यते भगवान् द्रष्ट्रमुपायैरितरैरपि॥५२॥ तद्भक्तेस्तद्गतप्राणैस्तचित्तौर्धृतकल्मषैः शक्यते भगवान् विष्णुर्वेदान्तामलदृष्टिभिः॥५३॥ अथवा द्रष्ट्रमिच्छा ते शृणु त्वं परमेश्वरम्। त्रेतायुगे स देवेशो भविता नृपविग्रहः॥५४॥ हितार्थं देवमर्त्यानामिक्ष्वाकूणां कुले हरिः। रामो दाशरथिर्भूत्वा महासत्त्वपराक्रमः॥५५॥

पितुर्नियोगात्स भ्रात्रा भार्यया दण्डके वने। विचरिष्यति धर्मात्मा जगन्मात्रा स्वमायया॥५६॥ एवं ते सर्वमाख्यातं मया रावण विस्तरात्। भजस्व भक्तिभावेन सदा रामं श्रिया युतम्॥५७॥

एवं श्रुत्वाऽसुराध्यक्षो ध्यात्वा किञ्चिद्विचार्य च। त्वया सह विरोधेप्सुर्मुमुदे रावणो महान्॥५८॥

अगस्त्य उवाच

युद्धार्थी सर्वतो लोकान् पर्यटन् समवस्थितः। एतदर्थं महाराज रावणोऽतीव बुद्धिमान्। हृतवान् जानकीं देवीं त्वयाऽऽत्मवधकाङ्क्षया॥५९॥

इमां कथां यः शृणुयात्पठेद्वा संश्रावयेद्वा श्रवणार्थिनां सदा। आयुष्यमारोग्यमनन्तसौख्यम् प्राप्नोति लाभं धनमक्षयं च॥६०॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः॥३॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच एकदा ब्रह्मणो लोकादायान्तं नारदं मुनिम्। पर्यटन् रावणो लोकान् दृष्ट्वा नत्वाऽब्रवीद्वचः॥१॥ भगवन् ब्रूहि मे योद्धं कुत्र सन्ति महाबलाः। योद्धमिच्छामि बलिभिस्त्वं ज्ञाताऽसि जगत्त्रयम्॥२॥

मुनिर्ध्यात्वाऽऽह सुचिरं श्वेतद्वीपनिवासिनः।
महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते॥३॥
विष्णुपूजारता ये वै विष्णुना निहताश्च ये।
त एव तत्र सञ्जाता अजेयाश्च सुरासुरैः॥४॥
श्रुत्वा तद्रावणो वेगान्मिन्त्रिभिः पुष्पकेण तान्।
योद्धुकामः समागत्य श्वेतद्वीपसमीपतः॥५॥
तत्प्रभाहततेजस्कं पुष्पकं नाचलत्ततः।
त्यक्तवा विमानं प्रययौ मिन्त्रणश्च द्शाननः॥६॥
प्रविशन्नेव तद्वीपं धृतो हस्तेन योषिता।
पृष्टश्च त्वं कुतः कोऽसि प्रेषितः केन वा वद्॥७॥

इत्युक्तो लीलया स्त्रीभिर्हसन्तीभिः पुनः पुनः।
कृच्छा द्वस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासां स्त्रीणां दशाननः॥८॥
आश्चर्यमतुलं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मितः।
विष्णुना निहतो यामि वैकुण्ठमिति निश्चितः॥९॥
मिय विष्णुर्यथा कुप्येत्तथा कार्यं करोम्यहम्।
इति निश्चित्य वैदेहीं जहार विपिनेऽसुरः॥१०॥
जानन्नेव परात्मानं स जहारावनीसुताम्।
मातृवत्पालयामास त्वत्तः काङ्क्षन् वधं स्वकम्॥११॥
त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं जानासि विज्ञानदग

राम त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं जानासि विज्ञानदृग् भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलनासाक्षी विकल्पोज्झितः। भक्तानामनुवर्तनाय सकलां कुर्वन् क्रियासंहतिम् त्वं शृण्वन्मनुजाकृतिर्मुनिवचो भासीश लोकार्चितः॥१२॥

> स्तुत्वैवं राघवं तेन पूजितः कुम्भसम्भवः। स्वाश्रमं मुनिभिः सार्धं प्रययौ हृष्टमानसः॥१३॥

रामस्तु सीतया सार्धं भ्रातृभिः सह मन्त्रिभिः। संसारीव रमानाथो रममाणोऽवसद्गृहे॥१४॥

अनासक्तोऽपि विषयान् बुभुजे प्रियया सह। हनुमत्त्रमुखैः सद्भिर्वानरैः परिवेष्टितः॥१५॥ पुष्पकं चागमद्राममेकदा पूर्ववत्प्रभुम्। प्राह देव कुबेरेण प्रेषितं त्वामहं ततः॥१६॥ जितं त्वं रावणेनादौ पश्चाद्रामेण निर्जितम्। अतस्त्वं राघवं नित्यं वह यावद्वसेद्भवि॥१७॥ यदा गच्छेद्रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठं याहि मां तदा। तच्छुत्वा राघवः प्राह पुष्पकं सूर्यसन्निभम्॥१८॥ यदा स्मरामि भद्रं ते तदाऽऽगच्छ ममान्तिकम्। तिष्ठान्तर्धाय सर्वत्र गच्छेदानीं ममाऽऽज्ञया॥१९॥ इत्युत्तवा रामचन्द्रोऽपि पौरकार्याणि सर्वशः। भ्रातिभर्मित्रिभिः सार्धं यथान्यायं चकार सः॥२०॥ राघवे शासित भुवं लोकनाथे रमापतौ। वसुधा सस्यसम्पन्ना फलवन्तश्च भूरुहाः॥२१॥ जना धर्मपराः सर्वे पतिभक्तिपराः स्त्रियः। नापश्यत्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे॥२२॥

समारुह्य विमानाग्र्यं राघवः सीतया सह। वानरैभ्रातिभः सार्धं सञ्चचारावनिं प्रभुः॥२३॥ अमानुषाणि कार्याणि चकार बहुशो भुवि। ब्राह्मणस्य सुतं दृष्ट्वा बालं मृतमकालतः॥२४॥ शोचन्तं ब्राह्मणं चापि ज्ञात्वा रामो महामतिः। तपस्यन्तं वने शूद्रं हत्वा ब्राह्मणबालकम्॥२५॥ जीवयामास शुद्रस्य ददौ स्वर्गमनुत्तमम्। लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः॥२६॥ कोटिशः स्थापयामास शिवलिङ्गानि सर्वशः। सीतां च रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः॥२७॥ शशास रामो धर्मेण राज्यं परमधर्मवित्। कथां संस्थापयामास सर्वलोकमलापहाम्॥२८॥ दशवर्षसहस्राणि मायामानुषविग्रहः। चकार राज्यं विधिवल्लोकवन्द्यपदाम्बुजः॥२९॥ एकपलीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा श्रुचिः। गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षयन् जनान्॥३०॥

सीता प्रेम्णानुवृत्त्या च प्रश्रयेण दुमेन च। भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा हिया भिया॥३१॥ एकदाक्रीडविपिने सर्वभोगसमन्विते। एकान्ते दिव्यभवने सुखासीनं रघूत्तमम्॥३२॥ नीलमाणिक्यसङ्काशं दिव्याभरणभूषितम्। प्रसन्नवद्नं शान्तं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम्॥३३॥ सीता कमलपत्राक्षी सर्वाभरणभूषिता। राममाह कराभ्यां सा लालयन्ती पदाम्बुजे॥३४॥ देवदेव जगन्नाथ परमात्मन् सनातन। चिदानन्दादिमध्यान्तरहिताशेषकारण॥३५॥ देव देवाः समासाद्य मामेकान्तेऽब्रुवन्वचः। बहुशोऽर्थ्यमानास्ते वैकुण्ठागमनं प्रति॥३६॥ त्वया समेतश्चिच्छक्त्या रामस्तिष्ठति भूतले। विसृज्यास्मान् स्वकं धाम वैकुण्ठं च सनातनम्॥३७॥ आस्ते त्वया जगद्धात्रि रामः कमललोचनः। अग्रतो याहि वैकुण्ठं त्वं तथा चेद्रघूत्तमः॥३८॥

आगमिष्यति वैकुण्ठं सनाथान्नः करिष्यति। इति विज्ञापिताहं तैर्मया विज्ञापितो भवान्॥३९॥ यद्युक्तं तत्कुरुष्वाद्य नाहमाज्ञापये सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा रामो ध्यात्वाऽब्रवीत्क्षणम्॥४०॥ देवि जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते। कल्पयित्वा मिषं देवि लोकवादं त्वदाशयम्॥४१॥ त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भीत इवापरः। भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकेराश्रमान्तिके॥४२॥ इदानीं दृश्यते गर्भः पुनरागत्य मेऽन्तिकम्। लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं कृत्वा शपथमाद्रात्॥४३॥ भूमेर्विवरमात्रेण वैकुण्ठं यास्यसि द्रुतम्। पश्चादहं गमिष्यामि एष एव सुनिश्चयः॥४४॥ इत्युक्तवा तां विसृज्याथ रामो ज्ञानैकलक्षणः। मन्त्रिभर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्बलमुख्यैश्च संवृतः॥४५॥ तत्रोपविष्टं श्रीरामं सुहृदः पर्युपासत। हास्यप्रौढकथासुज्ञा हासयन्तः स्थिता हरिम्॥४६॥

कथाप्रसङ्गात्पप्रच्छ रामो विजयनामकम्। पौरा जानपदा में किं वदन्तीह शुभाशुभम्॥४७॥ सीतां वा मातरं वा मे भ्रातृन्वा कैकयीमथ। न भेतव्यं त्वया ब्रूहि शापितोऽसि ममोपरि॥४८॥ इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदन्ति ते। कृतं सुदुष्करं सर्वं रामेण विदितात्मना॥४९॥ किन्तु हत्वा दशग्रीवं सीतामाहृत्य राघवः। अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्वं वेश्म प्रत्यपाद्यत्॥५०॥ कीदृशं हृद्ये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम्। या हृता विजनेऽरण्ये रावणेन दुरात्मना॥५१॥ अस्माकमपि दुष्कर्म योषितां मर्षणं भवेत्। याद्दरभवति वै राजा तादृश्यो नियतं प्रजाः॥५२॥ श्रुत्वा तद्वचनं रामः स्वजनान् पर्यपुच्छत। तेऽपि नत्वाऽब्रुवन् राममेवमेतन्न संशयः॥५३॥ ततो विसुज्य सचिवान् विजयं सुहृदस्तथा। आहूय लक्ष्मणं रामो वचनं चेदमब्रवीत्॥५४॥

लोकापवादस्तु महान् सीतामाश्रित्य मेऽभवत्। सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेराश्रमान्तिके॥५५॥ त्यक्तवा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण। वक्ष्यसे यदि वा किञ्चित्तदा मां हतवानसि॥५६॥ इत्युक्तो लक्ष्मणो भीत्या प्रातरुत्थाय जानकीम्। सुमन्त्रेण रथे कृत्वा जगाम सहसा वनम्॥५७॥ वाल्मीकेराश्रमस्यान्ते त्यक्तवा सीतामुवाच सः। लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने॥५८॥ दोषो न कश्चिन्मे मातर्गच्छाश्रमपदं मुनेः। इत्युक्तवा लक्ष्मणः शीघ्रं गतवान् रामसन्निधिम्॥५९॥ सीताऽपि दुःखसन्तप्ता विललापातिमुग्धवत्। शिष्यैः श्रुत्वा च वाल्मीकिः सीतां ज्ञात्वा स दिव्यदक्॥६०॥ अर्घ्यादिभिः पूजयित्वा समाश्वास्य च जानकीम्। ज्ञात्वा भविष्यं सकलमार्पयन् मुनियोषिताम्॥६१॥ तास्तां सम्पूजयन्ति स्म सीतां भक्त्या दिने दिने। ज्ञात्वा परात्मनो लक्ष्मीं मुनिवाक्येन योषितः। सेवां चकुः सदा तस्या विनयादिभिराद्रात्॥६२॥

रामोऽपि सीतारहितः परात्मा विज्ञानदृक्केवल आदिदेवः। सन्त्यज्य भोगानखिलान् विरक्तो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविताङ्किः॥६३॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥ ४॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना विधाय रामायणकीर्तिमुत्तमाम्। चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो राजर्षिवर्येरभिसेवितं यथा॥१॥

सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः। राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो द्विजस्य तिर्यक्तवमथाह राघवः॥२॥ कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुम् रामं रमालालितपादपङ्कजम्। सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत्॥३॥

त्वं शुद्धबोधोऽसि हि सर्वदेहिनाम् आत्मास्यधीशोऽसि निराकृतिः स्वयम्। प्रतीयसे ज्ञानदृशां महामते पादाज्ञभृङ्गाहितसङ्गसङ्गिनाम् ॥४॥

अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो भवापवर्गं तव योगिभावितम्। यथाञ्जसाऽज्ञानमपारवारिधिम् सुखं तरिष्यामि तथाऽनुशाधि माम्॥५॥

श्रुत्वाऽथ सौमित्रिवचोऽखिलं तदा प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः। विज्ञानमज्ञानतमःप्रशान्तये श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः॥६॥ आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः कृत्वा समासादितशुद्धमानसः। समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥७॥

किया शरीरोद्भवहेतुरादृता प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः। धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकम् पुनः किया चक्रवदीर्यते भवः॥८॥

अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणम् तच्चानमेवात्र विधौ विधीयते। विद्यैव तन्नाश्चविधौ पटीयसी न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम्॥९॥

नाज्ञानहानिर्न च रागसङ्खयो भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत्। ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता तस्माद्भुधो ज्ञानविचारवान् भवेत्॥१०॥ ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता तथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम्। कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता विद्यासहायत्वमुपैति सा पुनः॥११॥

कर्माकृतौ दोषमिप श्रुतिर्जगौ तस्मात्सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा। ननु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी विद्या न किञ्चिन्मनसाप्यपेक्षते॥१२॥

न सत्यकार्योऽपि हि यद्घद्ध्वरः प्रकाङ्कतेऽन्यानिप कारकादिकान्। तथैव विद्या विधितः प्रकाशितैः विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये॥१३॥

केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिन-स्तदप्यसदृष्टविरोधकारणात् । देहाभिमानादभिवर्धते क्रिया विद्या गताहङ्कतितः प्रसिद्धति॥१४॥ विशुद्धविज्ञानविरोचनाश्चिता विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते। उदेति कर्माखिलकारकादिभिः निहन्ति विद्याखिलकारकादिकम्॥१५॥

तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः सुधीः विद्याविरोधान्न समुचयो भवेत्। आत्मानुसन्धानपरायणः सदा निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥१६॥

यावच्छरीरादिषु माययात्मधी-स्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम्। नेतीति वाक्येरिक्टं निषिध्य तत् ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत्क्रियाः॥१७॥

यदा परात्मात्मविभेदभेदकम् विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम्। तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा सकारका कारणमात्मसंस्रतेः॥१८॥ श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा कथं भविष्यत्यपि कार्यकारिणी। विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयत-स्तस्माद्विद्या न पुनर्भविष्यति॥१९॥

यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते कर्ताहमस्येति मतिः कथं भवेत्। तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय विभाति केवला॥ २०॥

सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादरम् न्यासं प्रशस्ताखिलकर्मणां स्फुटम्। एतावदित्याह च वाजिनां श्रुतिः ज्ञानं विमोक्षाय न कर्म साधनम्॥२१॥

विद्यासमत्वेन तु दिर्शितस्त्वया कर्तुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः। फलैः पृथक्त्वाद्बहुकारकैः कतुः संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम्॥२२॥ सप्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधी-रज्ञप्रसिद्धा न तु तत्त्वदिर्शनः। तस्माद्धुधैस्त्याज्यमविकियात्मभिः विधानतः कर्म विधिप्रकाशितम्॥२३॥

श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतो गुरोः प्रसादादिप शुद्धमानसः। विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः सुखी भवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः॥२४॥

आदौ पदार्थावगतिर्हि कारणम् वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः। तत्त्वम्पदार्थौ परमात्मजीवका-वसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत्॥ २५॥

प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनोः विहाय सङ्गृद्य तयोश्चिदात्मताम्। संशोधितां लक्षणया च लक्षिताम् ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत्॥२६॥ एकात्मकत्वाज्जहती न सम्भवेत् तथाऽजहल्लक्षणता विरोधतः। सोऽयम्पदार्थाविव भागलक्षणा युज्येत तत्त्वम्पदयोरदोषतः॥२७॥

रसादिपश्चीकृतभूतसम्भवम् भोगालयं दुःखसुखादिकर्मणाम्। शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मजम् मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः॥२८॥

सूक्ष्मं मनोबुद्धिदशेन्द्रियैर्युतम् प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् । भोक्तः सुखादेरनुसाधनं भवेत् शरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः॥ २९॥

अनाद्यनिर्वाच्यमपीह कारणम् मायाप्रधानं तु परं शरीरकम्। उपाधिभेदात्तु यतः पृथक् स्थितम् स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात्॥३०॥ कोशेष्वयं तेषु तु तत्तदाकृतिः विभाति सङ्गात् स्फटिकोपलो यथा। असङ्गरूपोऽयमजो यतोऽद्वयो विज्ञायतेऽस्मिन् परितो विचारिते॥३१॥

बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः। अन्योन्यतोऽस्मिन् व्यभिचारतो मृषा नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे॥३२॥

देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनाम् सङ्घादजस्त्रं परिवर्तते धियः। वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणा यावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भवः॥३३॥

नेतिप्रमाणेन निराकृताखिलो हृदा समास्वादितचिद्धनामृतः। त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसम् पीत्वा यथाम्भः प्रजहाति तत्फलम्॥३४॥ कदाचिदात्मा न मृतो न जायते न क्षीयते नापि विवर्धतेऽनवः। निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः स्वयम्प्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः॥३५॥

एवंविधे ज्ञानमये सुखात्मके कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते। अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात्॥३६॥

यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमा-दध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः। असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा रज्जादिके तद्वदपीश्वरे जगत्॥३७॥

विकल्पमायारहिते चिदात्मके-ऽहङ्कार एष प्रथमः प्रकल्पितः। अध्यास एवात्मिन सर्वकारणे निरामये ब्रह्मणि केवले परे॥३८॥ इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाः सदा धियः संसृतिहेतवः परे। यस्मात्प्रसुप्तौ तदभावतः परः सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः॥३९॥

अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः। आत्मा घियः साक्षितया पृथक् स्थितो बुद्यापरिच्छिन्नपरः स एव हि॥४०॥

चिद्धिम्बसाक्ष्यात्मिधयां प्रसङ्गत-स्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत्। अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः॥४१॥

गुरोः सकाशादिप वेदवाक्यतः सञ्जातिवद्यानुभवो निरीक्ष्य तम्। स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितम् त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम्॥४२॥ प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयो-ऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलः। विशुद्ध विज्ञानघनो निरामयः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमकियः॥४३॥

सदैव मुक्तोऽहमचिन्त्यशक्तिमान् अतीन्द्रियज्ञानमविकियात्मकः। अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधैः विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः॥४४॥

एवं सदात्मानमखण्डितात्मना विचारमाणस्य विशुद्धभावना। हन्याद्विद्यामचिरेण कारकै रसायनं यद्वदुपासितं रुजः॥४५॥

विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः। विभावयेदेकमनन्यसाधनो विज्ञानदृक्षेवल आत्मसंस्थितः॥४६॥ विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनम् विलापयेदात्मिन सर्वकारणे। पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते न वेद बाह्यं न च किञ्चिदान्तरम्॥४७॥

पूर्वं समाधेरिवलं विचिन्तये-दोङ्कारमात्रं सचराचरं जगत्। तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको विभाव्यतेऽज्ञानवशान्न बोधतः॥४८॥

अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात्। प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत्॥४९॥

विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापये-दुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम्। ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसम् द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमे॥५०॥ मकारमप्यात्मिन चिद्धने परे विलापयेद्प्राज्ञमपीह कारणम्। सोऽहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिम-द्विज्ञानदृङ्मुक्त उपाधितोऽमलः॥५१॥

एवं सदा जातपरात्मभावनः स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः। आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकः साक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत्॥५२॥

एवं सदाभ्यस्तसमाधियोगिनो निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि। विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा दृश्यो भवेयं जितषङ्गुणात्मनः॥५३॥

ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनि-स्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्तबन्धनः। प्रारब्धमश्रन्नभिमानवर्जितो मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः॥५४॥ आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो भवं विदित्वा भयशोककारणम्। हित्वा समस्तं विधिवादचोदितम् भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम्॥५५॥

आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदम्
भवत्यभेदेन मयाऽऽत्मना तदा।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः
क्षीरे वियद्योम्प्रनिले यथाऽनिलः॥५६॥

इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः। निराकृतत्वाच्छुतियुक्तिमानतो यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः॥५७॥

यावन्न पश्येद्खिलं मदात्मकम् तावन्मदाराधनतत्परो भवेत्। श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो यस्तस्य दृश्योऽहमहर्निशं हृदि॥५८॥ रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसङ्ग्रहम् मया विनिश्चित्य तवोदितं प्रिय। यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान् स मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात्॥५९॥

भ्रातर्यदीदं परिदृश्यते जगन्-मायेव सर्वं परिहृत्य चेतसा। मद्भावनाभावितशुद्धमानसः सुखी भवानन्दमयो निरामयः॥६०॥

यः सेवते मामगुणं गुणात्परम् हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम्। सोऽहं स्वपादाश्चितरेणुभिः स्पृशन् पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः॥६१॥

विज्ञानमेतद्खिलं श्रुतिसारमेकम् वेदान्तवेद्यचरणेन मयैव गीतम्। यः श्रद्धया परिपठेद् गुरुभक्तियुक्तो मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषु भक्तिः॥६२॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥ ५॥

॥षष्ठः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

एकदा मुनयः सर्वे यमुनातीरवासिनः। आजग्मू राघवं द्रष्टुं भयाल्लवणरक्षसः॥१॥

कृत्वाऽग्रे तु मुनिश्रेष्ठं भार्गवं च्यवनं द्विजाः। असङ्खाताः समायाता रामादभयकाङ्क्षिणः॥२॥

तान् पूजियत्वा परया भक्त्या रघुकुलोत्तमः। उवाच मधुरं वाक्यं हर्षयन् मुनिमण्डलम्॥३॥

करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम्। धन्योऽस्मि यदि यूयं मां प्रीत्या द्रष्टुमिहागताः॥४॥

दुष्करं चापि यत्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम्। आज्ञापयन्तु मां भृत्यं ब्राह्मणा दैवतं हि मे॥५॥

तच्छुत्वा सहसा हृष्टश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत्। मधुनामा महादैत्यः पुरा कृतयुगे प्रभो॥६॥ आसीदतीव धर्मात्मा देवबाह्मणपूजकः। तस्य तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुत्तमम्॥७॥ प्राह चानेन यं हंसि स तु भस्मीभविष्यति। रावणस्यानुजा भार्या तस्य कुम्भीनसी श्रुता॥८॥ तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीमविक्रमः। आसीदुरात्मा दुर्घर्षो देवब्राह्मणहिंसकः॥९॥ पीडितास्तेन राजेन्द्र वयं त्वां शरणं गताः। तच्छुत्वा राघवोऽप्याह मा भीवों मुनिपुङ्गवाः॥१०॥ लवणं नाशयिष्यामि गच्छन्तु विगतज्वराः। इत्युक्तवा प्राह रामोऽपि भ्रातृन् को वा हनिष्यति॥११॥ लवणं राक्षसं दद्यात् ब्राह्मणेभ्योऽभयं महत्। तच्छुत्वा प्राञ्जिलः प्राह भरतो राघवाय वै॥१२॥ अहमेव हनिष्यामि देवाज्ञापय मां प्रभो। ततो रामं नमस्कृत्य शत्रुघ्नो वाक्यमबवीत्॥ १३॥

लक्ष्मणेन महत्कार्यं कृतं राघव संयुगे। निन्द्यामे महाबुद्धिर्भरतो दुःखमन्वभूत्॥१४॥ अहमेव गमिष्यामि लवणस्य वधाय च। त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ हन्यां तं राक्षसं युधि॥१५॥ तच्छुत्वा स्वाङ्कमारोप्य शत्रुघ्नं शत्रुसूद्नः। प्राहाद्यैवाभिषेक्ष्यामि मथुराराज्यकारणात्॥१६॥ आनाय्य च सुसम्भारान् लक्षमणेनाभिषेचने। अनिच्छन्तमपि स्नेहादभिषेकमकारयत्॥ १७॥ दत्त्वा तस्मै शरं दिव्यं रामः शत्रुघ्नमबवीत्। अनेन जिह बाणेन लवणं लोककण्टकम्॥१८॥ स तु सम्पूज्य तच्छूलं गेहे गच्छति काननम्। भक्षणार्थं तु जन्तूनां नानाप्राणिवधाय च॥१९॥ स तु नायाति सदनं यावद्वनचरो भवेत्। तावदेव पुरद्वारि तिष्ठ त्वं धृतकार्मुकः॥२०॥ योत्स्यते स त्वया कुद्धस्तदा वध्यो भविष्यति। तं हत्वा लवणं क्र्रं तद्वनं मधुसंज्ञितम्॥२१॥

निवेश्य नगरं तत्र तिष्ठ त्वं मेऽनुशासनात्। अश्वानां पञ्चसाहस्रं रथानां च तद्र्धकम्॥२२॥ गजानां षट् शतानीह पत्तीनामयुतत्रयम्। आगमिष्यति पश्चात्त्वमग्रे साधय राक्षसम्॥२३॥ इत्युक्तवा मूर्ध्यवघाय प्रेषयामास राघवः। शत्रुघ्नं मुनिभिः सार्धमाशीर्भिरभिनन्द्य च॥२४॥ शत्रुघ्नोऽपि तथा चके यथा रामेण चोदितः। हत्वा मधुसुतं युद्धे मथुरामकरोत्पुरीम्॥२५॥ स्फीतां जनपदां चके मथुरां दानमानतः। सीताऽपि सुषुवे पुत्रौ ह्यौ वाल्मीकेरथाश्रमे॥ २६॥ मुनिस्तयोर्नाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः। क्रमेण विद्यासम्पन्नौ सीतापुत्रौ बभूवतुः॥२७॥ उपनीतौ च मुनिना वेदाध्ययनतत्परौ। कृत्स्नं रामायणं प्राह काव्यं बालकयोर्मुनिः॥२८॥ शङ्करेण पुरा प्रोक्तं पार्वत्यै पुरहारिणा। वेदोपबृंहनार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥२९॥

क्रमारौ स्वरसम्पन्नौ सुन्दरावश्विनाविव। तन्त्रीतालसमायुक्तौ गायन्तौ चेरतुर्वने॥३०॥ तत्र तत्र मुनीनां तौ समाजे सुररूपिणौ। गायन्तावभितो दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽबुवन्॥३१॥ गन्धर्वेष्विव किन्नरेषु भुवि वा देवेषु देवालये पातालेष्वथवा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सर्वेषु च। अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं दृष्ट्वा दिशः सर्वतो नाज्ञायीदृशगीतवाद्यगरिमा नाद्रिशं नाश्रावि च॥३२॥ एवं स्तुवद्भिरखिलैर्मुनिभिः प्रतिवासरम्। आसाते सुखमेकान्ते वाल्मीकेराश्रमे चिरम्॥३३॥ अथ रामोऽश्वमेधादींश्वकार बहुदक्षिणान्। यज्ञान् स्वर्णमयीं सीतां विधाय विपुलद्युतिः॥३४॥ तस्मिन् विताने ऋषयः सर्वे राजर्षयस्तथा। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः समाजग्मुर्दिदक्षवः॥३५॥ वाल्मीकिरपि सङ्गृद्य गायन्तौ तौ कुशीलवौ। जगाम ऋषिवाटस्य समीपं मुनिपुङ्गवः॥३६॥

तत्रैकान्ते स्थितं शान्तं समाधिविरमे मुनिम्। कुशः पप्रच्छ वाल्मीकिं ज्ञानशास्त्रं कथान्तरे॥३७॥

भगवन् श्रोतुमिच्छामि सङ्क्षेपाद्भवतोऽखिलम्। देहिनः संसृतिर्बन्धः कथमुत्पद्यते दृढः॥३८॥

कथं विमुच्यते देही दृढबन्धाद्भवाभिधात्। वक्तुमर्हिस सर्वज्ञ मह्यं शिष्याय ते मुने॥३९॥ वाल्मीकिरुवाच

शृणु वक्ष्यामि ते सर्वं सङ्क्षेपाद्धन्धमोक्षयोः। स्वरूपं साधनं चापि मत्तः श्रुत्वा यथोदितम्॥४०॥

तथैवाचर भद्रं ते जीवन्मुक्तो भविष्यसि। देह एव महागेहमदेहस्य चिदात्मनः॥४१॥ तस्याहङ्कार एवास्मिन्मन्त्री तेनैव कित्पतः। देहगेहाभिमानं स्वं समारोप्य चिदात्मिन॥४२॥ तेन तादात्म्यमापन्नः स्वचेष्टितमशेषतः। विद्धाति चिदानन्दे तद्वासितवपुः स्वयम्॥४३॥

तेन सङ्कल्पितो देही सङ्कल्पनिगडावृतः। पुत्रदारगृहादीनि सङ्कल्पयति चानिशम्॥४४॥ सङ्कल्पयन् स्वयं देही परिशोचित सर्वदा। त्रयस्तस्याहमो देहा अधमोत्तममध्यमाः॥४५॥ तमः सत्त्वरजः संज्ञा जगतः कारणं स्थितेः। तमोरूपाद्धि सङ्कल्पान्नित्यं तामसचेष्टया॥४६॥ अत्यन्तं तामसो भूत्वा कृमिकीटत्वमाप्नुयात्। सत्त्वरूपो हि सङ्कल्पो धर्मज्ञानपरायणः॥४७॥ अदूरमोक्षसाम्राज्यः सुखरूपो हि तिष्ठति। रजोरूपो हि सङ्कल्पो लोके स व्यवहारवान्॥४८॥ परितिष्ठति संसारे पुत्रदारानुरञ्जितः। त्रिविधं तु परित्यज्य रूपमेतन्महामते॥४९॥ सङ्कल्पं परमाप्नोति पदमात्मपरिक्षये। दृष्टीः सर्वाः परित्यज्य नियम्य मनसा मनः॥५०॥ सबाह्याभ्यन्तरार्थस्य सङ्कल्पस्य क्षयं कुरु। यदि वर्षसहस्राणि तपश्चरिस दारुणम्॥५१॥

पातालस्थस्य भूस्थस्य स्वर्गस्थस्यापि तेऽनघ। नान्यः कश्चिदुपायोऽस्ति सङ्कल्पोपशमादते॥५२॥

अनाबाधेऽविकारे स्वे सुखे परमपावने। सङ्कल्पोपरामे यत्नं पौरुषेण परं कुरु॥५३॥

सङ्कल्पतन्तौ निखिला भावाः प्रोताः किलानघ। छिन्ने तन्तौ न जानीमः क यान्ति विभवाः पराः॥५४॥

निःसङ्कल्पो यथाप्राप्तव्यवहारपरो भव। क्षये सङ्कल्पजालस्य जीवो ब्रह्मत्वमाप्नुयात्॥५५॥

अधिगतपरमार्थतामुपेत्य प्रसभमपास्य विकल्पजालमुचैः। अधिगमय पदं तदद्वितीयं विततसुखाय सुषुप्तचित्तवृत्तिः॥५६॥ ॥इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे षष्टः सर्गः॥६॥

॥सप्तमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच

वाल्मीकिना बोधितोऽसौ कुद्याः सद्योगतभ्रमः। अन्तर्मुक्तो बहिः सर्वमनुकुर्वश्रकार सः॥१॥ वाल्मीकिरपि तौ प्राह सीतापुत्रौ महाधियौ। तत्र तत्र च गायन्तौ पुरे वीथिषु सर्वतः॥२॥ रामस्याग्रे प्रगायेतं शुश्रुषुर्यदि राघवः। न ग्राह्यं वे युवाभ्यां तद्यदि किञ्चित्प्रदास्यति॥३॥ इति तौ चोदितौ तत्र गायमानौ विचेरतुः। यथोक्तमृषिणा पूर्वं तत्र तत्राभ्यगायताम्॥४॥ तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वचर्यां ततस्ततः। अपूर्वपाठजातिं च गेयेन समभिष्ठताम्॥५॥ बालयो राघवः श्रुत्वा कौतूहलमुपेयिवान्। अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन्॥६॥ राज्ञश्चेव नरव्याघ्रः पण्डितांश्चेव नैगमान्। पौराणिकान् राब्द्विदो ये च वृद्धा द्विजातयः॥७॥ एतान् सर्वान् समाहृय गायकौ समवेशयत्। ते सर्वे हृष्टमनसो राजानो बाह्मणाद्यः॥८॥

रामं तौ दारकौ दृष्ट्वा विस्मिताः ह्यनिमेषणाः। अवोचन् सर्व एवैते परस्परमथागताः॥९॥ इमो रामस्य सहशौ बिम्बाद्विम्बमिवोदितौ। जटिलौ यदि न स्यातां न च वल्कलधारिणौ॥१०॥ विशेषं नाधिगच्छामो राघवस्यानयोस्तदा। एवं संवदतां तेषां विस्मितानां परस्परम्॥११॥ उपचक्रमतुर्गातुं तावुभौ मुनिदारकौ। ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम्॥१२॥ श्रुत्वा तन्मधुरं गीतमपराह्वे रघूत्तमः। उवाच भरतं चाभ्यां दीयतामयुतं वसु॥ १३॥ दीयमानं सुवर्णं तु न तज्जगृहतुस्तदा। किमनेन सुवर्णेन राजन्नौ वन्यभोजनौ॥१४॥ इति सन्त्यज्य सन्दत्तं जग्मतुर्मुनिसन्निधिम्। एवं श्रुत्वा तु चरितं रामः स्वस्यैव विस्मितः॥१५॥ ज्ञात्वा सीताकुमारौ तौ शत्रुघ्नं चेदमबवीत्। हनूमन्तं सुषेणं च विभीषणमथाङ्गदम्॥१६॥

भगवन्तं महात्मानं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम्। आनयध्वं मुनिवरं ससीतं देवसम्मितम्॥१७॥ अस्यास्तु पर्षदो मध्ये प्रत्ययं जनकात्मजा। करोतु रापथं सर्वे जानन्तु गतकल्मषाम्॥१८॥ सीतां तद्वचनं श्रुत्वा गताः सर्वेऽतिविस्मिताः। ऊचुर्यथोक्तं रामेण वाल्मीकिं रामपार्षदाः॥१९॥ रामस्य हृद्गतं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत्। श्वः करिष्यति वै सीता शपथं जनसंसदि॥२०॥ योषितां परमं दैवं पतिरेव न संशयः। तच्छुत्वा सहसा गत्वा सर्वे प्रोचुर्मुनेर्वचः॥२१॥ राघवस्यापि रामोऽपि श्रुत्वा मुनिवचस्तथा। राजानो मुनयः सर्वे श्णुध्वमिति चाबवीत्॥२२॥ सीतायाः शपथं लोका विजानन्तु शुभाशुभम्। इत्युक्ता राघवेणाथ लोकाः सर्वे दिदृक्षवः॥२३॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेव महर्षयः। वानराश्च समाजग्मुः कौतूहलसमन्विताः॥२४॥

ततो मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत्। अग्रतस्तमृषिं कृत्वाऽऽयान्ती किञ्चिद्वाङ्मुखी॥२५॥ कृताञ्जलिर्बाष्पकण्ठा सीता यज्ञं विवेश तम्। दृष्ट्वा लक्ष्मीमिवायान्तीं ब्रह्माणमनुयायिनीम्॥२६॥ वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादो महानभूत्। तदा मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः॥२७॥ सीतासहायो वाल्मीकिरिति प्राह च राघवम्। इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी॥२८॥ अपापा ते पुरा त्यक्ता ममाश्रमसमीपतः। लोकापवादभीतेन त्वया राम महावने॥२९॥ प्रत्ययं दास्यते सीता तदनुज्ञातुमर्हिस। इमौ तु सीतातनयाविमौ यमलजातकौ॥३०॥ सतौ त तव दुर्घषौँ तथ्यमेतद्ववीमि ते। प्रचेतसोऽहं द्शमः पुत्रो रघुकुलोद्वह॥३१॥ अनृतं न स्मराम्युक्तं तथेमौ तव पुत्रकौ। बहून् वर्षगणान् सम्यक् तपश्चर्या मया कृता॥३२॥

नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली। वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत॥३३॥ एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि सुव्रत। प्रत्ययो जनितो मह्यं तव वाक्येरिकल्बिषेः॥३४॥ लङ्कायामपि दत्तो मे वैदेह्या प्रत्ययो महान्। देवानां पुरतस्तेन मन्दिरे सम्प्रवेशिता॥३५॥ सेयं लोकभयाद्रह्मन्नपापाऽपि सती पुरा। सीता मया परित्यक्ता भवांस्तत्क्षन्तुमर्हति॥३६॥ ममैव जातौ जानामि पुत्रावेतौ कुशीलवौ। शुद्धायां जगतीमध्ये सीतायां प्रीतिरस्तु मे॥३७॥ देवाः सर्वे परिज्ञाय रामाभिप्रायमुत्सुकाः। ब्रह्माणम्यतः कृत्वा समाजग्मुः सहस्रशः॥३८॥ प्रजाः समागमन् हृष्टाः सीता कौशेयवासिनी। उदङ्मुखी ह्यधोदृष्टिः प्राञ्जलिर्वाक्यमबवीत्॥३९॥ रामादन्यं यथाहं वै मनसाऽपि न चिन्तये। तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति॥४०॥

तथा शपन्त्याः सीतायाः प्रादुरासीन्महाद्भुतम्। भूतलाद्दिव्यमत्यर्थं सिंहासनमनुत्तमम्॥४१॥ नागेन्द्रैर्घियमाणं च दिव्यदेहै रविप्रभम्। भूदेवी जानकीं दोभ्यां गृहीत्वा स्नेहसंयुता॥४२॥ स्वागतं तामुवाचैनामासने संन्यवेशयत्। सिंहासनस्थां वैदेहीं प्रविशन्तीं रसातलम्॥४३॥ निरन्तरा पुष्पवृष्टिर्दिव्या सीतामवाकिरत्। साधुवादश्च सुमहान् देवानां परमाद्भुतः॥४४॥ ऊचुश्च बहुधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः। अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः॥४५॥ वानराश्च महाकायाः सीताशपथकारणात्। केचिचिन्तापरास्तस्य केचिद्यानपरायणाः॥४६॥ केचिद्रामं निरीक्षन्तः केचित्सीतामचेतसः। मुहूर्तमात्रं तत्सर्वं तूष्णीम्भूतमचेतनम्॥४७॥ सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा सर्वं सम्मोहितं जगत्। रामस्तु सर्वं ज्ञात्वैव भविष्यत्कार्यगौरवम्॥४८॥

अजानन्निव दुःखेन शुशोच जनकात्मजाम्। ब्रह्मणा ऋषिभिः सार्धं बोधितो रघुनन्दनः॥४९॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नाचकारानन्तराः क्रियाः। विससर्ज ऋषीन् सर्वानृत्विजो ये समागताः॥५०॥ तान् सर्वान् धनरत्नाद्यैस्तोषयामास भूरिशः। उपादाय कुमारौ तावयोध्यामगमत्प्रभुः॥५१॥ तदादि निःस्पृहो रामः सर्वभोगेषु सर्वदा। आत्मचिन्तापरो नित्यमेकान्ते समुपस्थितः॥५२॥ एकान्ते ध्याननिरते एकदा राघवे सति। ज्ञात्वा नारायणं साक्षात्कौसल्या प्रियवादिनी॥५३॥ भक्त्यागत्य प्रसन्नं तं प्रणता प्राह हृष्ट्धीः। राम त्वं जगतामादिरादिमध्यान्तवर्जितः॥५४॥ परमात्मा परानन्दः पूर्णः पुरुष ईश्वरः। जातोऽसि मे गर्भगृहे मम पुण्यातिरेकतः॥५५॥ अवसाने ममाप्यद्य समयोऽभूद्रघूत्तम। नाद्याप्यबोधजः कृत्स्रो भवबन्धो निवर्तते॥५६॥

इदानीमपि मे ज्ञानं भवबन्धनिवर्तकम्। यथा सङ्खेपतो भूयात्तथा बोधय मां विभो॥५७॥ निर्वेदवादिनीमेवं मातरं मातृवत्सलः। दयालुः प्राह धर्मात्मा जराजर्जरितां शुभाम्॥५८॥ मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः पुरा मोक्षाप्तिसाधकाः। कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वतः॥५९॥ भक्तिर्विभिद्यते मातिस्त्रविधा गुणभेदतः। स्वभावो यस्य यस्तेन तस्य भक्तिर्विभिद्यते॥६०॥ यस्तु हिंसां समुद्दिश्य दम्मं मात्सर्यमेव वा। भेददृष्टिश्च संरम्भी भक्तो मे तामसः स्मृतः॥६१॥ फलाभिसन्धिर्भौगार्थी धनकामो यशस्तथा। अर्चादौ भेदबुद्या मां पूजयेत्स तु राजसः॥६२॥ परस्मिन्नर्पितं यस्तु कर्मनिर्हरणाय वा। कर्तव्यमिति वा कुर्याद्भेदबुष्या स सात्त्विकः॥६३॥ मद्गुणाश्रयणादेव मय्यनन्तगुणालये। अविच्छिन्ना मनोवृत्तिर्यथा गङ्गाम्बुनोऽम्बुधौ॥६४॥

तदेव भक्तियोगस्य लक्षणं निर्गुणस्य हि। अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिर्मिय जायते॥६५॥ सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा। ददात्यिप न गृह्णन्ति भक्ता मत्सेवनं विना॥६६॥ स एवात्यन्तिको योगो भक्तिमार्गस्य भामिनि। मद्भावं प्राप्नुयात्तेन अतिक्रम्य गुणत्रयम्॥६७॥

महता कामहीनेन स्वधर्माचरणेन च।
कर्मयोगेन शस्तेन वर्जितेन विहिंसनात्॥६८॥
महर्शनस्तुतिमहापूजाभिः स्मृतिवन्दनैः।
भूतेषु मद्भावनया सङ्गेनासत्यवर्जनैः॥६९॥
बहुमानेन महतां दुःखिनामनुकम्पया।
स्वसमानेषु मैत्र्या च यमादीनां निषेवया॥७०॥
वेदान्तवाक्यश्रवणान्मम नामानुकीर्तनात्।
सत्सङ्गेनार्जवेनैव ह्यहमः परिवर्जनात्॥७१॥
काङ्क्षया मम धर्मस्य परिशुद्धान्तरो जनः।
मह्णश्रवणादेव याति मामञ्जसा जनः॥७२॥

यथा वायुवशाद्गन्धः स्वाश्रयाद्राणमाविशेत्। योगाभ्यासरतं चित्तमेवमात्मानमाविशेत्॥७३॥ सर्वेषु प्राणिजातेषु ह्यहमात्मा व्यवस्थितः। तमज्ञात्वा विमूढात्मा कुरुते केवलं बहिः॥७४॥ क्रियोत्पन्नेर्नेकभेदेर्द्रव्येर्मे नाम्ब तोषणम्। भूतावमानिनार्चायामर्चितोऽहं न पूजितः॥७५॥ तावन्मामर्चयेद्देवं प्रतिमादौ स्वकर्मभिः। यावत्सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत्॥ ७६॥ यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्च परस्य च। भिन्नदृष्टेर्भयं मृत्युस्तस्य कुर्यान्न संशयः॥ ७७॥ मामतः सर्वभूतेषु परिच्छिन्नेषु संस्थितम्। एकं ज्ञानेन मानेन मैत्र्या चार्चेदिमन्नधीः॥७८॥ चेतसैवानिशं सर्वभूतानि प्रणमेत्सुधीः। ज्ञात्वा मां चेतनं शुद्धं जीवरूपेण संस्थितम्॥७९॥ तस्मात्कदाचिन्नेक्षेत भेदमीश्वरजीवयोः। भक्तियोगो ज्ञानयोगो मया मातरुदीरितः॥८०॥

आलम्ब्यैकतरं वाऽपि पुरुषः शुभमृच्छति। ततो मां भक्तियोगेन मातः सर्वहृदि स्थितम्॥८१॥ पुत्ररूपेण वा नित्यं स्मृत्वा शान्तिमवाप्स्यसि। श्रुत्वा रामस्य वचनं कौसल्याऽऽनन्दसंयुता॥८२॥ रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा संसारबन्धनम्। अतिक्रम्य गतीस्तिस्रोऽप्यवाप परमां गतिम्॥८३॥ कैकेयी चापि योगं रघुपतिगदितं पूर्वमेवाधिगम्य श्रद्धाभक्तिप्रशान्ता हृदि रघुतिलकं भावयन्ती गतासुः। गत्वा स्वर्गं स्फुरन्ती दशरथसहिता मोदमानावतस्थे माता श्रीलक्ष्मणस्याप्यतिविमलमतिः प्राप भर्तुः समीपम्॥८४॥ ॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः॥७॥

॥ अष्टमः सर्गः॥

श्रीमहादेव उवाच अथ काले गते कस्मिन् भरतो भीमविक्रमः। युधाजिता मातुलेन ह्याहृतोऽगात्ससौनिकः॥१॥ रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा गन्धर्वनायकान्। तिस्रः कोटीः पुरे द्वे तु निवेश्य रघुनन्दनः॥२॥

पुष्करं पुष्करावत्यां तक्षं तक्षशिलाह्वये। अभिषिच्य सुतौ तत्र धनधान्यसुहृद्वृतौ॥३॥

पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत्। ततः प्रीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं प्राह सादरम्॥४॥

उभौ कुमारौ सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम्। तत्र भिल्लान् विनिर्जित्य दुष्टान् सर्वापकारिणः॥५॥

अङ्गदश्चित्रकेतुश्च महासत्त्वपराक्रमौ। द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गजाश्वधनरत्नकैः॥६॥

अभिषिच्य सुतौ तत्र शीघ्रमागच्छ मां पुनः। रामस्याज्ञां पुरस्कृत्य गजाश्वबलवाहनः॥७॥

गत्वा हत्वा रिपून् सर्वान् स्थापियत्वा कुमारकौ। सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत्॥८॥ ततस्तु काले महित प्रयाते रामं सदा धर्मपथे स्थितं हरिम्। द्रष्टुं समागादृषिवेषधारी कालस्ततो लक्ष्मणमित्युवाच॥९॥

निवेदयस्वातिबलस्य दूतम् मां द्रष्टुकामं पुरुषोत्तमाय। रामाय विज्ञापनमस्ति तस्य महर्षिमुख्यस्य चिराय धीमन्॥१०॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयान्वितः। आचचक्षेऽथ रामाय स सम्प्राप्तं तपोधनम्॥११॥ एवं ब्रुवन्तं प्रोवाच लक्ष्मणं राघवो वचः। शीघ्रं प्रवेश्यतां तात मुनिः सत्कारपूर्वकम्॥१२॥ लक्ष्मणस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तापसम्। स्वतेजसा ज्वलन्तं तं घृतिसक्तं यथानलम्॥१३॥ सोऽभिगम्य रघुश्रेष्ठं दीप्यमानः स्वतेजसा। मुनिर्मधुरवाक्येन वर्धस्वेत्याह राघवम्॥१४॥

तस्मै स मुनये रामः पूजां कृत्वा यथाविधि। पृष्ट्वाऽनामयमव्ययो रामः पृष्टोऽथ तेन सः॥१५॥ दिव्यासने समासीनो रामः प्रोवाच तापसम्। यद्र्थमागतोऽसि त्वमिह तत्प्रापयस्व मे॥१६॥ वाक्येन चोदितस्तेन रामेणाह मुनिर्वचः। द्वन्द्वमेव प्रयोक्तव्यमनालक्ष्यं तु तद्वचः॥१७॥ नान्येन चैतच्छोतव्यं नाख्यातव्यं च कस्यचित्। शृणुयाद्वा निरीक्षेद्वा यः स वध्यस्त्वया प्रभो॥१८॥ तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमबवीत्। तिष्ठ त्वं द्वारि सौमित्रे नायात्वत्र जनो रहः॥ १९॥ यद्यागच्छति को वाऽपि स वध्यो मे न संशयः। ततः प्राह मुनिं रामो येन वा त्वं विसर्जितः॥२०॥ यत्ते मनीषितं वाक्यं तद्वदस्व ममाग्रतः। ततः प्राह मुनिर्वाक्यं शृणु राम यथातथम्॥ २१॥ ब्रह्मणा प्रेषितोऽस्मीश कार्यार्थे तेऽन्तिकं प्रभो। अहं हि पूर्वजो देव तव पुत्रः परन्तप॥२२॥

मायासङ्गमजो वीर कालः सर्वहरः स्मृतः। ब्रह्मा त्वामाह भगवान् सर्वदेविषपूजितः॥२३॥ रिक्षतुं स्वर्गलोकस्य समयस्ते महामते। पुरा त्वमेक एवासीर्लोकान् संहृत्य मायया॥ २४॥ भार्यया सहितस्त्वं मामादौ पुत्रमजीजनः। तथा भोगवतं नागमनन्तमुद्केशयम्॥२५॥ मायया जनयित्वा त्वं ह्रौ ससत्त्वौ महाबलौ। मधुकैटभकौ दैत्यौ हत्वा मेदोऽस्थिसञ्चयम्॥२६॥ इमां पर्वतसम्बद्धां मेदिनीं पुरुषर्षभ। पद्मे दिव्यार्कसङ्काशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि॥२७॥ मां विधाय प्रजाध्यक्षं मिय सर्वं न्यवेदयत्। सोऽहं संयुक्तसम्भारस्त्वामवोचं जगत्पते॥ २८॥ रक्षां विधत्स्व भूतेभ्यो ये मे वीर्यापहारिणः। ततस्त्वं कश्यपाज्जातो विष्णुर्वामनरूपधृक्॥२९॥ हृतवानिस भूभारं वधाद्रक्षोगणस्य च। सर्वासूत्सार्यमाणासु प्रजासु धरणीधर॥३०॥

रावणस्य वधाकाङ्की मर्त्यलोकमुपागतः। दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च॥३१॥ कृत्वा वासस्य समयं त्रिदशेष्वात्मनः पुरा। स ते मनोरथः पूर्णः पूर्णे चायुषि ते नृषु॥३२॥ कालस्तापसरूपेण त्वत्समीपमुपागमत्। ततो भूयश्च ते बुद्धिर्यदि राज्यमुपासितुम्॥३३॥ तत्तथा भव भद्रं ते एवमाह पितामहः। यदि ते गमने बुद्धिर्देवलोकं जितेन्द्रिय॥ ३४॥ सनाथा विष्णुना देवा भजन्तु विगतज्वराः। चतुर्मुखस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा कालेन भाषितम्॥३५॥ हसन् रामस्तदा वाक्यं कृत्स्नस्यान्तकमबवीत्। श्रुतं तव वचो मेऽद्य ममापीष्टतरं तु तत्॥३६॥ सन्तोषः परमो ज्ञेयस्त्वदागमनकारणात्। त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः॥३७॥ भद्रं तेऽस्त्वागमिष्यामि यत एवाहमागतः। मनोरथस्तु सम्प्राप्तो न मेऽत्रास्ति विचारणा॥३८॥

मत्सेवकानां देवानां सर्वकार्येषु वै मया। स्थातव्यं मायया पुत्र यथा चाह प्रजापतिः॥३९॥ एवं तयोः कथयतोर्दुर्वासा मुनिरभ्यगात्। राजद्वारं राघवस्य दर्शनापेक्षया द्रुतम्॥४०॥ मुनिर्रुक्ष्मणमासाद्य दुर्वासा वाक्यमब्रवीत्। शीघ्रं दर्शय रामं मे कार्यं मेऽत्यन्तमाहितम्॥४१॥ तच्छुत्वा प्राह सौमित्रिर्मुनिं ज्वलनतेजसम्। रामेण कार्यं किं तेऽद्य किं तेऽभीष्टं करोम्यहम्॥४२॥ राजा कार्यान्तरे व्ययो मुहूर्तं सम्प्रतीक्ष्यताम्। तच्छुत्वा क्रोधसन्तप्तो मुनिः सौमित्रिमबवीत्॥४३॥ अस्मिन् क्षणे तु सौमित्रे न दर्शयसि चेद्विभुम्। रामं सविषयं वंशं भस्मीकुर्यां न संशयः॥४४॥ श्रुत्वा तद्वचनं घोरमृषेर्दुर्वाससो भृशम्। स्वरूपं तस्य वाक्यस्य चिन्तयित्वा स लक्ष्मणः॥४५॥ सर्वनाशाहरं मेऽद्य नाशो ह्येकस्य कारणात। निश्चित्यैवं ततो गत्वा रामाय प्राह लक्ष्मणः॥४६॥

सौमित्रेर्वचनं श्रुत्वा रामः कालं व्यसर्जयत्। शीघ्रं निर्गम्य रामोऽपि ददर्शात्रेः सुतं मुनिम्॥४७॥ रामोऽभिवाद्य सम्प्रीतो मुनिं पप्रच्छ सादरम्। किं कार्यं ते करोमीति मुनिमाह रघूत्तमः॥४८॥ तच्छुत्वा रामवचनं दुर्वासा राममब्रवीत्। वर्षसहस्राणामुपवाससमापनम्॥४९॥ अतो भोजनिमच्छामि सिद्धं यत्ते रघूत्तम। रामो मुनिवचः श्रुत्वा सन्तोषेण समन्वितः॥५०॥ स सिद्धमन्नं मुनये यथावत्समुपाहरत्। मुनिर्भुत्तवाऽन्नममृतं सन्तुष्टः पुनरभ्यगात्॥५१॥ स्वमाश्रमं गते तस्मिन् रामः सस्मार भाषितम्। कालेन शोकदुःखार्तो विमनाश्चातिविह्वलः॥५२॥ अवाङ्मखो दीनमना न राशाकाभिभाषितुम्। मनसा लक्ष्मणं ज्ञात्वा हतप्रायं रघृद्वहः॥५३॥ अवाङ्मुखो बभूवाथ तूष्णीमेवाखिलेश्वरः। ततो रामं विलोक्याह सौमित्रिर्दुःखसम्प्रुतम्॥५४॥

तूष्णीम्भूतं चिन्तयन्तं गर्हन्तं स्नेहबन्धनम्। मत्कृते त्यज सन्तापं जिह मां रघुनन्दन॥५५॥ गतिः कालस्य कलिता पूर्वमेवेदशी प्रभो। त्विय हीनप्रतिज्ञे तु नरको मे भ्रुवं भवेत्॥५६॥ मिय प्रीतिर्यदि भवेद्यदानुप्राह्यता तव। त्यक्तवा शङ्कां जिह प्राज्ञ मा मा धर्मं त्यज प्रभो॥५७॥ सौमित्रिणोक्तं तच्छुत्वा रामश्रलितमानसः। आहूय मन्त्रिणः सर्वान् वसिष्ठं चेदमब्रवीत्॥५८॥ मुनेरागमनं यत्तु कालस्यापि हि भाषितम्। प्रतिज्ञामात्मनश्चैव सर्वमावेद्यत्प्रभुः॥५९॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं मन्त्रिणः सपुरोहिताः। ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राममक्षिष्टकारिणम्॥६०॥ पूर्वमेव हि निर्दिष्टं तव भूभारहारिणः। लक्ष्मणेन वियोगस्ते ज्ञातो विज्ञानचक्षुषा॥६१॥ त्यजाशु लक्ष्मणं राम मा प्रतिज्ञां त्यज प्रभो। प्रतिज्ञाते परित्यक्ते धर्मो भवति निष्फलः॥६२॥

धर्में नप्टेऽखिले राम त्रैलोक्यं नश्यति ध्रुवम्। त्वं तु सर्वस्य लोकस्य पालकोऽसि रघूत्तम॥६३॥ त्यक्तवा लक्ष्मणमेवैकं त्रैलोक्यं त्रातुमर्हिस। रामो धर्मार्थसहितं वाक्यं तेषामनिन्दितम्॥६४॥ सभामध्ये समाश्रुत्य प्राह सौमित्रिमञ्जसा। यथेष्टं गच्छ सौमित्रे मा भूद्धर्मस्य संशयः॥६५॥ परित्यागो वधो वाऽपि सतामेवोभयं समम्। एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे दुःखव्याकुलितेक्षणः॥६६॥ रामं प्रणम्य सौमित्रिः शीघ्रं गृहमगात्स्वकम्। ततोऽगात्सरयूतीरमाचम्य स कृताञ्जलिः॥६७॥ नव द्वाराणि संयम्य मूर्झि प्राणमधारयत्। यदक्षरं परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम्॥६८॥ पदं तत्परमं धाम चेतसा सोऽभ्यचिन्तयत। वायुरोधेन संयुक्तं सर्वे देवाः सहर्षयः॥६९॥ साग्नयो लक्ष्मणं पुष्पैस्तुष्ट्रवुश्च समाकिरन्। अदृश्यं विबुधेः कैश्चित्स्यारीरं च वासवः॥७०॥

गृहीत्वा लक्ष्मणं शकः स्वर्गलोकमथागमत्। ततो विष्णोश्चतुर्भागं तं देवं सुरसत्तमाः। सर्वे देवर्षयो दृष्ट्वा लक्ष्मणं समपूजयन्॥७१॥

लक्ष्मणे हि दिवमागते हरौ सिद्धलोकगतयोगिनस्तदा। ब्रह्मणा सह समागमन्मुदा द्रष्टुमाहितमहाहिरूपकम्॥७२॥ ॥इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे अष्टमः सर्गः॥८॥

॥ नवमः सर्गः॥

श्री महादेव उवाच

लक्ष्मणं तु परित्यज्य रामो दुःखसमन्वितः। मन्त्रिणो नैगमांश्चैव वसिष्ठं चेदमब्रवीत्॥१॥ अभिषेक्ष्यामि भरतमधिराज्ये महामतिम्। अद्य चाहं गमिष्यामि लक्ष्मणस्य पदानुगः॥२॥ एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे पौरजानपदास्तदा। दूमा इवच्छिन्नमूला दुःखार्ताः पतिता भुवि॥३॥ मूर्च्छितो भरतो वाऽपि श्रुत्वा रामाभिभाषितम्। गर्हयामास राज्यं स प्राहेदं रामसन्निधौ॥४॥ सत्येन च शपे नाहं त्वां विना दिवि वा भुवि। काङ्को राज्यं रघुश्रेष्ठ शपे त्वत्पाद्योः प्रभो॥५॥

इमौ कुशलवौ राजन्नभिषिञ्चस्व राघव। कोसलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु लवं तथा॥६॥ गच्छन्तु दूतास्त्वरितं शत्रुघ्नानयनाय हि। अस्माकमेतद्गमनं स्वर्वासाय शृणोतु सः॥७॥ भरतेनोदितं श्रुत्वा पतितास्ताः समीक्ष्य तम्। भयसंविय्ना रामविश्लेषकातराः॥८॥ वसिष्ठो भगवान् राममुवाच सद्यं वचः। पश्य ताताद्रात्सर्वाः पतिता भूतले प्रजाः॥९॥ तासां भावानुगं राम प्रसादं कर्तुमहिसि। श्रुत्वा वसिष्ठवचनं ताः समुत्थाप्य पूज्य च॥१०॥ सस्नेहो रघुनाथस्ताः किं करोमीति चाबवीत्। ततः प्राञ्जलयः प्रोचुः प्रजा भक्त्या रघूद्वहम्॥११॥

गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमनुगच्छामहे वयम्। अस्माकमेषा परमा प्रीतिर्धर्मोऽयमक्षयः॥१२॥ तवानुगमने राम हृद्गता नो दृढा मितः। पुत्रदारादिभिः सार्धमनुयामोऽद्य सर्वथा॥१३॥ तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन। ज्ञात्वा तेषां मनोदार्ढ्यं कालस्य वचनं तथा॥१४॥ भक्तं पौरजनं चैव बाढमित्याह राघवः। कृत्वैव निश्चयं रामस्तरिमन्नेवाहनि प्रभुः॥१५॥ प्रस्थापयामास च तौ रामभद्रः कुशीलवौ। अष्टौ रथसहस्राणि सहस्रं चैव दन्तिनाम्॥१६॥ षष्टिं चाश्वसहस्राणामेकैकस्मै ददौ बलम्। बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनावृतौ॥१७॥ अभिवाद्य गतौ रामं कृच्छ्रेण तु कुशीलवौ। शत्रुघ्नानयने दूतान् प्रेषयामास राघवः॥१८॥ ते दूतास्त्वरितं गत्वा शत्रुघ्नाय न्यवेद्यन्। कालस्यागमनं पश्चादित्रपुत्रस्य चेष्टितम्॥१९॥

लक्ष्मणस्य च निर्याणं प्रतिज्ञां राघवस्य च। पुत्राभिषेचनं चैव सर्वं रामचिकीर्षितम्॥२०॥ व्यथितोऽपि धृतिं लब्ध्वा पुत्रावाहूय सत्वरः। अभिषिच्य सुबाहुं वै मथुरायां महाबलः॥२१॥ यूपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुसूदनः। अयोध्यां त्वरितं प्रागात्स्वयं रामदिदृक्षया॥२२॥ दुद्री च महात्मानं तेजसा ज्वलनप्रभम्। दुकूलयुगसंवीतं ऋषिभिश्राक्षयैर्वृतम्॥२३॥ अभिवाद्य रमानाथं शत्रुघ्नो रघुपुङ्गवम्। प्राञ्जलिर्धर्मसहितं वाक्यं प्राह महामितः॥ २४॥ अभिषिच्य सुतौ तत्र राज्ये राजीवलोचन। तवानुगमने राजन् विद्धि मां कृतनिश्चयम्॥२५॥ त्यक्तं नार्हिस मां वीर भक्तं तव विशेषतः। रात्रुघ्नस्य दढां बुद्धिं विज्ञाय रघुनन्दनः॥२६॥ सज्जीभवतु मध्याह्रे भवानित्यब्रवीद्वचः। अथ क्षणात्समुत्पेतुर्वानराः कामरूपिणः॥२७॥

ऋक्षाश्च राक्षसाश्चैव गोपुच्छाश्च सहस्रराः। ऋषीणां देवतानां च पुत्रा रामस्य निर्गमम्॥ २८॥ श्रुत्वा प्रोचू रघुश्रेष्ठं सर्वे वानरराक्षसाः। तवानुगमने विद्धि निश्चितार्थान् हि नः प्रभो॥२९॥ एतस्मिन्नन्तरे रामं सुग्रीवोऽपि महाबलः। यथावद्भिवाद्याह राघवं भक्तवत्सलम्॥३०॥ अभिषिच्याङ्गदं राज्ये आगतोऽस्मि महाबलम्। तवानुगमने राम विद्धि मां कृतनिश्चयम्॥३१॥ श्रुत्वा तेषां दृढं वाक्यं ऋक्षवानररक्षसाम्। विभीषणमुवाचेदं वचनं मृदु साद्रम्॥३२॥ धरिष्यति धरा यावत्प्रजास्तावत्प्रशाधि मे। वचनाद्राक्षसं राज्यं शापितोऽसि ममोपरि॥३३॥ न किञ्चिद्त्तरं वाच्यं त्वया मत्कृतकारणात्। एवं विभीषणं तूत्तवा हनूमन्तमथाब्रवीत्॥३४॥ मारुते त्वं चिरञ्जीव ममाज्ञां मा मृषा कृथाः। जाम्बवन्तमथ प्राह तिष्ठ त्वं द्वापरान्तरे॥३५॥

मया सार्धं भवेद्युद्धं यत्किञ्चित्कारणान्तरे। ततस्तान् राघवः प्राह् ऋक्षराक्षसवानरान्। सर्वानेव मया सार्धं प्रयातेति द्यान्वितः॥३६॥

ततः प्रभाते रघुवंशनाथो विशालवक्षाः सितकञ्जनेत्रः। पुरोधसं प्राह वसिष्ठमार्यम् यान्त्वग्निहोत्राणि पुरो गुरो मे॥३७॥

ततो वसिष्ठोऽपि चकार सर्वम् प्रास्थानिकं कर्म महद्विधानात्। क्षौमाम्बरो दर्भपवित्रपाणिः महाप्रयाणाय गृहीतबुद्धिः॥३८॥

निष्कम्य रामो नगरात्सिताभ्रा-च्छशीव यातः शशिकोटिकान्तिः। रामस्य सव्ये सितपद्महस्ता पद्मा गता पद्मविशालनेत्रा॥३९॥

पार्श्वेऽथ दक्षेऽरुणकञ्जहस्ता श्यामा ययौ भूरिप दीप्यमाना। शास्त्राणि शस्त्राणि धनुश्च बाणा जग्मुः पुरस्ताद्भृतविग्रहास्ते॥४०॥ वेदाश्च सर्वे धृतविग्रहाश्च ययुश्च सर्वे मुनयश्च दिव्याः। माता श्रुतीनां प्रणवेन साध्वी ययौ हरि व्याहृतिभिः समेता॥४१॥ गच्छन्तमेवानुगता जनास्ते सपुत्रदाराः सह बन्धुवर्गैः। अनावृतद्वारमिवापवर्गम् रामं व्रजन्तं ययुराप्तकामाः॥४२॥ सान्तःपुरः सानुचरः सभार्यः शत्रुघ्नयुक्तो भरतोऽनुयातः

राग्तानुर राजु पर राजाप राजुमपुराम परताउर् गच्छन्तमालोक्य रमासमेतम् श्रीराघवं पौरजनाः समस्ताः। सबालवृद्धाश्च ययुर्द्विजाच्याः सामात्यवर्गाश्च समन्त्रिणो ययुः॥४३॥ सर्वे गताः क्षत्रमुखाः प्रहृष्टा वैश्याश्च शूद्राश्च तथा परे च। सुग्रीवमुख्या हरिपुङ्गवाश्च स्नाता विशुद्धाः शुभशब्दयुक्ताः॥४४॥

न कश्चिदासीद्भवदुःखयुक्तो दीनोऽथवा बाह्यसुखेषु सक्तः। आनन्दरूपानुगता विरक्ता ययुश्च रामं पशुभृत्यवर्गैः॥४५॥

भूतान्यदृश्यानि च यानि तत्र ये प्राणिनः स्थावरजङ्गमाश्च। साक्षात्परात्मानमनन्तशक्तिम् जग्मुर्विमुक्ताः परमेकमीशम्॥४६॥

नासीदयोध्यानगरे तु जन्तुः कश्चित्तदा राममना न यातः। शून्यं बभूवाखिलमेव तत्र पुरं गते राजनि रामचन्द्रे॥४७॥ ततोऽतिदूरं नगरात्स गत्वा दृष्ट्वा नदीं तां हरिनेत्रजाताम्। ननन्द् रामः स्मृतपावनोऽतो ददर्श चाशेषमिदं हृदिस्थम्॥४८॥

अथागतस्तत्र पितामहो महान् देवाश्च सर्वे ऋषयश्च सिद्धाः। विमानकोटीभिरपारपारम् समावृतं खं सुरसेविताभिः॥४९॥

रविप्रकाशाभिरभिस्फुरत्स्वम् ज्योतिर्मयं तत्र नभो बभूव। स्वयम्प्रकाशैर्महतां महद्भिः समावृतं पुण्यकृतां वरिष्ठैः॥५०॥

ववुश्च वाताश्च सुगन्धवन्तो ववर्ष वृष्टिः कुसुमावलीनाम्। उपस्थिते देवमृदङ्गनादे गायत्सु विद्याधरकिन्नरेषु॥५१॥ रामस्तु पन्धां सरयूजलं सकृत् स्पृष्ट्वा परिकामदनन्तशक्तिः। ब्रह्मा तदा प्राह कृताञ्जलिस्तम् रामं परात्मन् परमेश्वरस्त्वम्॥५२॥

विष्णुः सदानन्दमयोऽसि पूर्णो जानासि तत्त्वं निजमैशमेकम्। तथाऽपि दासस्य ममाखिलेश कृतम् वचो भक्तपरोऽसि विद्वन्॥५३॥

त्वं भ्रातृभिर्वेष्णवमेवमाद्यम् प्रविश्य देहं परिपाहि देवान्। यद्वा परो वा यदि रोचते तम् प्रविश्य देहं परिपाहि नस्त्वम्॥५४॥

त्वमेव देवाधिपतिश्च विष्णुः जानन्ति न त्वां पुरुषा विना माम्। सहस्रकृत्वस्तु नमो नमस्ते प्रसीद देवेश पुनर्नमस्ते॥५५॥ पितामहप्रार्थनया स रामः परयत्सु देवेषु महाप्रकाराः। मुष्णंश्च चक्षूंषि दिवौकसां तदा बभूव चकादियुतश्चतुर्भुजः॥५६॥

शेषो बभूवेश्वरतत्पभूतः सौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी। बभूवतुश्चकदरौ च दिव्यौ कैकेयिसूनुर्लवणान्तकश्च ॥५७॥

सीता च लक्ष्मीरभवत्पुरेव रामो हि विष्णुः पुरुषः पुराणः। सहानुजः पूर्वशरीरकेण बभूव तेजोमयदिव्यमूर्तिः॥५८॥

विष्णुं समासाद्य सुरेन्द्रमुख्या देवाश्च सिद्धा मुनयश्च दक्षाः। पितामहाद्याः परितः परेशम् स्तवैर्गृणन्तः परिपूजयन्तः॥५९॥ आनन्दसम्स्रावितपूर्णचित्ता बभूविरे प्राप्तमनोरथास्ते। तदाह विष्णुर्द्वहिणं महात्मा एते हि भक्ता मयि चानुरक्ताः॥६०॥

यान्तं दिवं मामनुयान्ति सर्वे तिर्यक्षरीरा अपि पुण्ययुक्ताः। वैकुण्ठसाम्यं परमं प्रयान्तु समाविशस्वाशु ममऽऽज्ञया त्वम्॥६१॥

श्रुत्वा हरेर्वाक्यमथाब्रवीत्कः सान्तानिकान् यान्तु विचित्रभोगान्। लोकान्मदीयोपरि दीप्यमानान् त्वद्भावयुक्ताः कृतपुण्यपुञ्जाः॥६२॥

ये चापि ते राम पवित्रनाम गृणन्ति मर्त्या लयकाल एव। अज्ञानतो वाऽपि भजन्तु लोकान् तानेव योगैरपि चाधिगम्यान्॥६३॥ ततोऽतिहृष्टा हरिराक्षसाद्याः स्पृष्ट्वा जलं त्यक्तकलेवरास्ते। प्रपेदिरे प्राक्तनमेव रूपम् यदंशजा ऋक्षहरीश्वरास्ते॥६४॥

प्रभाकरं प्राप हरिप्रवीरः सुग्रीव आदित्यजवीर्यवत्त्वात्। ततो विमग्नाः सरयूजलेषु नराः परित्यज्य मनुष्यदेहम्॥६५॥

आरुह्य दिव्याभरणा विमानम् प्रापुश्च ते सान्तनिकाख्यलोकान्। तिर्यक्प्रजाता अपि रामदृष्टा जलं प्रविष्टा दिवमेव याताः॥६६॥

दिदृक्षवो जानपदाश्च लोका रामं समालोक्य विमुक्तसङ्गाः। स्मृत्वा हरि लोकगुरुं परेशम् स्पृष्ट्वा जलं स्वर्गमवापुरञ्जः॥६७॥ एतावदेवोत्तरमाह शम्भुः श्रीरामचन्द्रस्य कथावशेषम्। यः पादमप्यत्र पठेत्स पापाद्-विमुच्यते जन्मसहस्रजातात्॥६८॥

दिने दिने पापचयं प्रकुर्वन्
पठेन्नरः श्लोकमपीह भक्त्या।
विमुक्तसर्वाघचयः प्रयाति
रामस्य सालोक्यमनन्यलभ्यम्॥ ६९॥

आख्यानमेतद्रघुनायकस्य कृतं पुरा राघवचोदितेन। महेश्वरेणाप्तभविष्यदर्थम् श्रुत्वा तु रामः परितोषमेति॥७०॥

रामायणं काव्यमनन्तपुण्यम् श्रीशङ्करेणाभिहितं भवान्यै। भक्त्या पठेद्यः श्रणुयात् स पापैः विमुच्यते जन्मशतोद्भवैश्च॥७१॥ अध्यात्मरामं पठतश्च नित्यम् श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः। अतिप्रसन्नश्च सदा समीपे सीतासमेतः श्रियमातनोति॥७२॥ रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यम् ब्रह्मादिभिः सुरवरैरिप संस्तुतं च। श्रद्धान्वितः पठित यः शृणुयात्तु नित्यम् विष्णोः प्रयाति सदनं स विशुद्धदेहः॥७३॥

॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे नवमः सर्गः॥९॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उत्तरकाण्डः समाप्तः॥ इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणं सम्पूर्णम॥

